इकाई – 1 प्रार्थना की अवधारणा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 प्रार्थना का अर्थ एवं परिभाषा
1.3.1 प्रार्थना का अर्थ
1.3.2 प्रार्थना की परिभाषा
1.4 प्रार्थना के स्वरूप
1.5 प्रार्थना का तात्त्विक विष्लेषण
1.5.1 प्रार्थना का प्रथम तत्त्व – विश्वास एवं श्रद्धा
1.5.2 प्रार्थना का द्वितीय तत्त्व – एकाग्रता
1.5.3 प्रार्थना का तृतीय तत्त्व – सृजनात्मक ध्यान
1.5.4 प्रार्थना का चतुर्थ तत्त्व – आत्म निवेदन
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रार्थना ईश्वर,गुरु अथवा ईष्ट के प्रति की गई अन्तर की आकुल पुकार है। यह मनुष्य की गहनतम इच्छा की अभिव्यक्ति है। प्रायः प्रार्थना किसी संकट विपत्ति से रक्षा हेतु, किसी कामना की पूर्ति हेतु की जाती है और सबसे उच्चतर रूप में अपने प्रभु से संवाद की प्रक्रिया है, जिसमें प्रार्थी की अन्तरात्मा बोलती है और उपास्य देव सुनते हैं, सुनते ही नहीं प्रत्युत उत्तर भी देते हैं। इसे ह्रदय की गहन नीरवता में अनुभूत किया जाता है। सभी धर्मों में प्रार्थना का समान रूप से महत्त्व मिला है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि धर्म–भावना का उद्भव ही प्रार्थना से हुआ है। बिना प्रार्थना के धर्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हिन्दु, मुसलिम, इसाई, सिख, शिंतो आदि समस्त धर्मों में प्रार्थना का विधान है। प्रस्तुत इकाई में प्रार्थना के अर्थ एवं विभिन्न धर्म ग्रन्थों के परिभाषाओं से परिचित होंगे। प्रार्थना के बृहद् स्वरूप का अवलोकन होगा तथा प्रार्थना के तात्त्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें प्रार्थना का निर्माण करने वाले पृथक–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि प्रार्थना के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको प्रार्थना के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

- प्रार्थना के शाब्दिक व गूढ़ अर्थो का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।

- प्रार्थना के विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न धर्म ग्रन्थों में प्रार्थना के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
- प्रार्थना के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

1.3 प्रार्थना का अर्थ एवं परिभाषा

अस्तित्व के गहनतम तल से, हृदय के गुह्यतम क्षेत्र से उभरने वाली आत्मा की पुकार ही प्रार्थना के रूप में प्रकट होती है और अपने ईष्ट की परमचेतना से अपना अनन्य एकात्म संबंध स्थापित करती हुई अभीष्ट प्रयोजन के सिद्ध करती है। यद्यपि विभिन्न धर्मों में प्रार्थना के स्वरूपों में अंतर है। तथापि प्रार्थना के अंतरस्वर सभी में एक ही हैं। महात्मा गांधी कहते थे कि प्रार्थना धर्म की निचोड़ है। इसी संदर्भ में जर्मन दार्शनिक लुडविग फ्यूरवेच का मानना था कि धर्म का उच्चतम सार उसकी सबसे सरल क्रिया द्वारा व्यक्त होता है, जो है– प्रार्थना।

प्रार्थना और स्तुति प्रगति के प्रथम सोपान है। प्रार्थना में हृदय बोलता है और उसे विश्व हृदय सुनता है। इसमें शब्दों की महत्ता गौण है। 'ब्रुक्स' के शब्दों में –'' यदि हृदय मूक है तो ईश्वर भी बहरा ही होगा।'' सचमुच हृदय की कोई प्रत्यक्ष भाषा नहीं होती, उसकी वाणी तो वह परोक्ष सत्ता ही सुन व समझ सकती है। सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है।

जब दोस्त, परिवार, शुभचिंतक और चिकित्सक आदि सहायता करने में निःसहाय हो जाते हैं तब मानव के पास एकमात्र आशा व आश्रय होते हैं– ईश्वर। जब बाहर के सभी मार्ग बंद प्रतीत होते हैं, नयी संभावनाएँ नजर नहीं आती तब भावनाओं का तीव्र प्रवाह उभरता है। यही भाव ईश्वरोन्मुख होकर प्रार्थना बन जाता है। डिवाइन लाइफ सोसाइटी ऋषिकेश के संस्थापक स्वामी शिवानंद कहते हैं– ''ऐसी कोई समस्या नहीं जिसे प्रार्थना नहीं सुलझा सकती, कोई दुःख ऐसा नहीं जिसका निवारण प्रार्थना में नहीं, कोई मुश्किल ऐसा नहीं जिसे प्रार्थना से जीता नहीं जा सकता और न ही कोई बुराई ऐसी है जिसे प्रार्थना से पार नहीं किया जा सकता।''

चाह की अनुभूति ही सच्ची प्रार्थना है, शब्द नहीं। प्रार्थना अक्सर तब की जाती है जब किसी के समक्ष कोई विषम परिस्थिति या समस्या उत्पन्न हो गई हो जिसका समाधन न सूझ रहा हो तब ईश्वर की याद आती है और गुहार से लेकर मनुहार तक किया जाता है। पर प्रभु यीशु कहा करते थे कि यह तो प्रार्थना का बहुत ही निम्नस्तरीय रूप है। प्रार्थना वास्तव में श्रेष्ठता के लिए होनी चाहिए। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं–''लोकहित के निमित्त होने वाली कोई भी ऐसी याचना प्रार्थना के अंतर्गत आती है। जहाँ स्वार्थ सम्मिलित है वहाँ प्रार्थना नहीं है।'' अपने स्वार्थ हित मांगना याचना है प्रार्थना नहीं।

प्रार्थना के प्रभाव को वैज्ञानिक चिकित्सक व अन्वेषक भी मानने लगे हैं। इससे जीवन की जटिल समस्याएँ हल होती हैं और रोग–शोक भी। परिजन, चिकित्सक आदि हमारी बाहरी परेशानी या बीमारी को तो देख, समझ सकते हैं किन्तु जिन पूर्व संस्कारों अर्थात कर्माशयों (जैसा कि महर्षि पतंजलि ने वर्णित किया है) के कारण मानव को सुख–दुःखादि मिलते हैं, उन्हें तो परम परमात्मा ही जानता है।

वर्तमान में मानव जीवन में सर्वाधिक अभाव है तो भावनाओं, संवेदनाओं व प्रेम का। इसीलिए वह समस्त सुख–सुविधा–साधन से सम्पन्न होने पर भी तनावग्रस्त है जिसका कि परिणाम रोग आदि के रूप में होता है। उसे अपनी संवेदनाओं को प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिये

विषय भी चाहिए, व उसे उसकी हृदय की भाषा समझने वाला आदर्श भी चाहिए, अतः जहाँ सभी चिकित्सायें असफल, सभी भाषाएँ मौन, सारे शब्द शांत हो जाते हैं वहाँ ईश्वर से वार्तालाप प्रारम्भ होता है जिसका कि नाम प्रार्थना है। आज भीतर से संतप्त मानव को, उसकी टूटी संवेदनाओं को परमात्मा से जोड़ने हेतु प्रार्थना की कड़ी की आवश्यकता है। '' यह वाणी का वाक्जाल नहीं, जिह्वा की करुणामयी भाषा है जिसे सुनकर भला भावप्रवण भगवान कैसे मौन रह सकते है? कलयुग की कालिका से छाई खामोशी को प्रार्थना के मधुर स्वरों से ही भेदा जा सकता है। श्री अरविंद के शब्दों में –''यह एक ऐसी महान क्रिया है जो मनुष्य को शक्ति के स्रोत पराचेतना से जोड़ती है और इस आधार पर चलित जीवन की समस्वरता, सफलता एवं उत्कृष्टता वर्णनातीत होती है।''

1.3.1 प्रार्थना का अर्थ –

प्रार्थना मनुष्य की जन्मजात सहज प्रवृत्ति है। संस्कृत शब्द प्रार्थना तथा आंग्ल (इंगलिश) भाषा के Prayer शब्द, इन दोनों में अर्थ का दृष्टि से पूरी तरह से समानता है :

1) संस्कृत में ''प्रकर्षेण अर्धयते यस्यां सा प्रार्थना'' अर्थात प्रकर्ष रूप से की जाने वाली अर्थना (चाहना अभ्यर्थना)

2) आंग्ल भाषा का Prayer यह शब्द Preier, precari, prex, prior इत्यादि धातुओं से बना है, जिनका अर्थ होता है चाहना या अभ्यर्थना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म, भाषा, देश इत्यादि सीमाएँ प्रार्थना या Prayer के समान अर्थों को बदल नहीं पाई हैं।

''प्रार्थना शब्द की रचना 'अर्थ उपाया×चायाम' धातु में 'प्र' उपसर्ग एवं 'क्त' प्रत्यय लगाकर शब्दशास्त्रीयों ने की है। इस अर्थ में अपने से विशिष्ट व्यक्ति से दीनतापूर्वक कुछ मांगने का नाम प्रार्थना है। वेदों में कहा गया है–**''पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।''** त्रिपाद एवं एकपाद नाम से ब्रह्म के एश्वर्य का संकेत है। अतः जीव के लिये जितने भी आवश्यक पदार्थ हैं, सबकी याचना परमात्मा से ही करनी चाहिए, अन्य से नहीं।

प्रार्थना का तात्पर्य यदि सामान्य शब्दों में बताया जाए तो कह सकते है। कि प्रार्थना मनुष्य के मन की समस्त विश्रृंखलित एवं अनेक दिशाओं में बहकने वाली प्रवृत्तियों को एक केन्द्र पर एकाग्र करने वाले मानसिक व्यायाम का नाम है। चित्त की समग्र भावनाओं को मन के केन्द्र में एकत्र कर चित्त को दृढ़ करने की एक प्रणाली का नाम 'प्रार्थना' है।

अपनी इच्छाओं के अनुरूप अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त कर लेने की क्षमता मनुष्य को (प्रकृति की ओर से) प्राप्त है। भगवतगीता 17/3 के अनुसार –

यच्छ्रद्धः स एव सः

अर्थात– जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही बन जाता है।

ईसाई धर्मग्रंथ बाईबिल में कहा गया है –

जो माँगोगे वह आपको दे दिया जाऐगा।
जो खोजोगे वह तुम्हें प्राप्त हो जाएगा।
खटखटाओगे तो आपके लिए द्वार खुल जाएगा।।

स्पष्ट है कि प्रार्थना के द्वारा जन्मजात प्रसुप्त आध्यत्मिक शक्तियाँ मुखर की जा सकती है। इन शक्तियों को यदि सदाचार तथा सद्विचार का आधार प्राप्त हो तब व्यक्ति संतवृत्ति (साधुवृत्ति) का बन जाता है। इसके विरूद्ध इन्हीं शक्तियों का दुरूपयोग कर व्यक्ति दुष्ट वृत्ति का बन सकता हैं। शैतान और भगवान की संकल्पना इसीलिए तो रूढ़ है। मनुष्य में

इतनी शक्ति है कि स्वयं का उद्धार स्वयं का सकता है। गीता 6/5 में भी यही कहा गया है –

''उद्धरेत् आत्मना आत्मानम्''

इस प्रकार यह स्वयमेव सिद्ध हो जाता है कि प्रार्थना भिक्षा नहीं, बल्कि शक्ति अर्जन का माध्यम है, प्रार्थना करने के लिए सबल सक्षम होना महत्व रखता है।

प्रार्थना परमात्मा के प्रति की गई एक **आर्तपुकार** है। जब यह पुकार द्रौपदी, मीरा, एवं प्रहलाद के समान हृदय से उठती है तो भावमय भगवान दौड़े चले आते हैं। जब भी हम प्रार्थना करते हैं तब हर बार हमें अमृत की एक बूंद प्राप्त होती है जो हमारी आत्मा को तृप्त करती है। गाँधी जी ने जीवन में प्रार्थना को अपरिहार्य मानते हुए इसे आत्मा का खुराक कहा है। प्रार्थना ऐसा कवच या दुर्ग है जो प्रत्येक भय से हमारी रक्षा करता है। यही वह दिव्य रथ है जो हमें सत्य, ज्योति और अमृत की प्राप्ति कराने में समर्थ है।

हमारा जीवन हमारे विश्वासों का बना हुआ है। यह समस्त संसार हमारे मन का ही खेल है– ''जैसा मन वैसा जीवन''। प्रार्थना एक महान ईच्छा, आशा और विश्वास है। यह शरीर, मन व वाणी तीनों का संगम है। तीनों अपने आराध्य देव की सेवा में एकरूप होते हैं, प्रार्थना करने वालों का रोम–रोम प्रेम से पुलकित हो उठता है।

1.3.2 प्रार्थना की परिभाषा –

हितोपदेश :– ''स्वयं के दुगुर्णों का चिंतन व परमात्मा के उपकारों का स्मरण ही प्रार्थना है। सत्य क्षमा, संतोष, ज्ञानधारण, शुद्ध मन और मधुर वचन एक श्रेष्ठ प्रार्थना है।''

पैगम्बर हजरत मुहम्मद – ''प्रार्थना (नमाज) धर्म का आधार व जन्नत की चाबी है।''

श्री माँ – ''प्रार्थना से क्रमशः जीवन का क्षितिज सुस्पष्ट होने लगता है, जीवन पथ आलोकित होने लगता है और हम अपनी असीम संभावनाओं व उज्ज्वल नियति के प्रति अधिकाधिक आश्वस्त होते जाते हैं।''

महात्मा गांधी – ''प्रार्थना हमारी दैनिक दुर्बलताओं की स्वीकृति ही नहीं, हमारे हृदय में सतत् चलने वाला अनुसंधान भी है। यह नम्रता की पुकार है, आत्मशुद्धि एवं आत्मनिरीक्षण का आह्वाहन है।''

श्री अरविंद घोष – ''यह एक ऐसी महान क्रिया है जो मनुष्य का सम्बन्ध शक्ति के स्त्रोत पराचेतना से जोड़ती है और इस आधार पर चलित जीवन की समस्वरता, सफलता एवं उत्कृष्टता वर्णनातीत होती है जिसे अलौकिक एवं दिव्य कहा जा सकता है।''

सोलहवीं शताब्दी के स्पेन के **संत टेरेसा** के अनुसार प्रार्थना –''प्रार्थना सबसे प्रिय सत्य (ईश्वर) के साथ पुनर्पुनः प्रेम के संवाद तथा मैत्री के घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।''

सुप्रसिद्ध विश्वकोश Brittanica के अनुसार प्रार्थना की परिभाषा – सबसे पवित्र सत्य (ईश्वर) से सम्बन्ध बनाने की इच्छा से किया जाने वाला आध्यात्मिक प्रस्फूटन (या आध्यात्मिक पुकार) प्रार्थना कहलाता है।

अतः कहा जा सकता है कि हृदय की उदात्त भावनाएँ जो परमात्मा को समर्पित हैं, उन्हीं का नाम प्रार्थना है। अपने सुख–सुविधा–साधन आदि के लिये ईश्वर से मांग करना याचना है प्रार्थना नहीं। बिना विचारों की गहनता, बिना भावों की उदात्तता, बिना हृदय की विशालता व बिना पवित्रता एंव परमार्थ भाव वाली याचना प्रार्थना नहीं की जा सकती।

वर्तमान में प्रार्थना को गलत समझा जा रहा है। व्यक्ति अपनी भौतिक सुविधओं व स्वयं को विकृत मानसिकता के कारण उत्पन्न हुए उलझावों से बिना किसी आत्म सुधार व प्रयास के

ईश्वर से अनुरोध करता है। इसी भाव को वह प्रार्थना समझता है जो कि एक छल है, भ्रम है अपने प्रति भी व परमात्म सत्ता के लिये भी। अतः स्वार्थ नहीं परमार्थ, समस्याओं से छुटकारा नहीं उनका सामना करने का सामर्थ्य, बुद्धि नहीं हृदय की पुकार, उथली नहीं गहन संवेदना के साथ जब उस परमपिता परमात्मा को उसका साथ पाने के लिए आवाज लगायी जाती है उस स्वर का नाम प्रार्थना है।

गांधी जी कहते थे – ''हम प्रभु से प्रार्थना करें– करुणापूर्ण भावना के साथ और उसने एक ही याचना करें कि हमारी अन्तरात्मा में उस करुणा का एक छोटा सा झरना प्रस्फुटित करें जिसमें वे प्राणिमात्र को स्नान कराके उन्हें निरंतर सुखी, समृद्ध और सुविकसित बनाते रहते हैं।''

अभ्यास प्रश्न – क

1. प्रार्थना परमात्मा के प्रति की गई एक ..... है।
2. ''प्रार्थना धर्म का आधार व जन्नत की चाबी है।'' यह उक्ति है –

क. श्रीकृष्ण ख. अरविंद

ग. महात्मा गांधी घ. पैगम्बर हजरत मुहम्मद

1.4 प्रार्थना के स्वरूप

प्रार्थना ईश्वर के बहाने अपने आप से ही की जाती है। ईश्वर सर्वव्यापी और परमदयालु है, उस हर किसी की आवश्यकता तथा इच्छा की जानकारी है। वह परमपिता और परमदयालु होने के नाते हमारे मनोरथ पूरे भी करना चाहता है। कोई सामान्य स्तर का सामान्य दयालु पिता भी अपने बच्चों की इच्छा आवश्यकता पूरी करने के लिए उत्सुक एवं तत्पर रहता है। फिर परमपिता और परमदयालु होने पर वह क्यों हमारी आवश्यकता को जानेगा नहीं। वह कहने पर भी हमारी बात जाने और प्रार्थना करने पर ही कठिनाई को समझें, यह तो ईश्वर के स्तर को गिराने वाली बात हुई। जब वह कीड़े–मकोड़ों और पशु–पक्षियों का अयाचित आवश्यकता भी पूरी करता है। तब अपने परमप्रिय युवराज मनुष्य का ध्यान क्यों न रखेगा ? वस्तुतः प्रार्थना का अर्थ याचना ही नहीं। याचना अपने आप में हेय है क्योंकि वही दीनता, असमर्थता और परावलम्बन की प्रवृत्ति उसमें जुड़ी हुई है जो आत्मा का गौरव बढ़ाती नहीं घटाती ही है।चाहे व्यक्ति के सामने हाथ पसारा जाय या भगवान के सामने झोली फैलाई जाय, बात एक ही है। चाहे चोरी किसी मनुष्य के घर में की जाय, चाहे भगवान के घर मन्दिर में, बुरी बात तो बुरी ही रहेगी। स्वावलम्बन और स्वाभिमान को आघात पहुँचाने वाली प्रक्रिया चाहे उसका नाम प्रार्थना ही क्यों न हो मनुष्य जैसे समर्थ तत्व के लिए शोभा नहीं देती।

वस्तुतः प्रार्थना का प्रयोजन आत्मा को ही परमात्मा का प्रतीक मानकर स्वयं को समझना है कि वह इसका पात्र बन कि आवश्यक विभूतियाँ उसे उसकी योग्यता के अनुरूप ही मिल सकें। यह अपने मन की खुशामद है। मन को मनाना है। आपे को बुहारना है। आत्म–जागरण है आत्मा से प्रार्थना द्वारा कहा जाता है, कि हे शक्ति–पुंज तू जागृत क्यों

नहीं होता। अपने गुण कर्म स्वाभाव को प्रगति के पथ पर अग्रसर क्यों नहीं करता। तू संभल जाय तो सारी दुनिया संभल जाय। तू निर्मल बने तो सारे संसार की निर्बलता खिंचती हुई अपने पास चली जाए। अपनी सामर्थ्य का विकास करने में तत्पर और उपलब्धियों का सदुपयोग करने में संलग्न हो जाए, तो दीन–हीन, अभावग्रस्तों को पंक्ति में क्यों बैठना पड़े। फिर समर्थ और दानी देवताओं से अपना स्थान नीचा क्यों रहें।

प्रार्थना के माध्यम से हम विश्वव्यापी महानता के साथ अपना घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने हैं। आदर्शों को भगवान की दिव्य अभिव्यक्ति के रूप में अनुभव करते हैं और उसके साथ जुड़ जाने की भाव–विव्हलता को सजग करते हैं। तमसाच्छन्न मनोभूमि में अज्ञान और आलस्य ने जड़ जमा ली है। आत्म विस्मृति ने अपने स्वरूप एवं स्तर ही बना लिया है। जीवन में संव्याप्त इस कुत्सा और कुण्ठा का निराकरण करने के लिए अपने प्रसुप्त अन्तःकरण से प्रार्थना की जाय, कि यदि तन्द्रा और मूर्छा छोड़कर तू सजग हो जाय, और मनुष्य को जो सोचना चाहिए वह सोचने लगे, जो करना चाहिए सो करने लगे तो अपना बेड़ा ही पार हो जाए। अन्तःज्योति की एक किरण उग पड़े तो पग–पग पर कठोर लगने के निमित्त बने हुए इस अन्धकार से छुटकारा ही मिल जाए जिसने शोक–संताप की बिडम्बनाओं को सब ओर से आवृत्त कर रखा है।

परमेश्वर यों साक्षी, दृष्टा, नियामक, उत्पादक,संचालक सब कुछ है। पर उसक जिस अंश की हम उपासना प्रार्थना करते हैं वह सर्वात्मा एवं पवित्रात्मा ही समझा जाना चाहिए। व्यक्तिगत परिधि को संकीर्ण रखने और पेट तथा प्रजनन के लिए ही सीमाबद्ध रखने वाली वासना, तृष्णा भरी मूढ़ता को ही माया कहते हैं। इस भव बन्धन से मोह, ममता से छुड़ाकर आत्म–विस्तार के क्षेत्र को व्यापक बना लेना यही आत्मोद्धार है। इसी को आत्म–साक्षात्कार कहते हैं। प्रार्थना में अपने उच्च आत्म स्तर से परमात्मा से यह प्रार्थना की जाती है कि वह अनुग्रह करे और प्रकाश की ऐसी किरण प्रदान करे जिससे सर्वत्र दीख पड़ने वाला अन्धकार –दिव्य प्रकाश के रूप में परिणत हो सके।

लघुता को विशालता में, तुच्छता को महानता में समर्पित कर देने की उत्कण्ठा का नाम प्रार्थना है। नर को नारायण–पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने का संकल्प प्रार्थना कहलाता है। आत्मा को आबद्ध करने वाली संकीर्णता जब विशाल व्यापक बनकर परमात्मा के रूप में प्रकट होती है तब समझना चाहिए प्रार्थना का प्रभाव दीख पड़ा, नर–पशु के स्तर से नीचा उठकर, जब मनुष्य देवत्व की ओर अग्रसर होने लगे तो प्रार्थना की गहराई का प्रतीक और चमत्कार माना जा सकता है। आत्म समर्पण को प्रार्थना का आवश्यक अंग माना गया है। किसी के होकर ही हम किसी से कुछ प्राप्त कर सकते हैं। अपने को समर्पण करना ही हम ईश्वर के हमार प्रति समर्पित होने की विवशता का एक मात्र तरीका है। 'शरणागति' भक्ति का प्रधान लक्षण माना गया है। गीता में भगवान ने आश्वासन दिया है कि जो सच्चे मन से मेरी शरणा में आता है, उनके योग क्षेम की सुख–शान्ति और प्रगति की जिम्मेदारी मैं उठाता हूँ। सच्चे मन और झूठे मन की शरणागति का अन्तर स्पष्ट है। प्रार्थना के समय तन–मन–धन सब कुछ भगवान के चरणों में समर्पित करने की लच्छेदार भाषा का उपयोग करना और जब वैसा करने का अवसर आवे तो पल्ला झाड़कर अलग हो जाना झूठे मन की प्रार्थना है आज इसी का फैशन है।

महात्मा गाँधी ने अपने एक मित्र को लिखा था –''राम नाम मेरे लिए जीवन अवलम्बन है जो हर विपत्ति से पार करता है।'' जब तुम्हारी वासनाएँ तुम पर सवार हो रही हों तो नम्रतापूर्वक भगवान को सहायता के लिए पुकारो, तुम्हें सहायता मिलेगी।

भगवान को आत्मसमर्पण करने की स्थिति में जीव कहता है– तस्यैवाहम् (मैं उसी का हूँ) तवैवाहम् (मैं तो तेरा ही हूँ) यह कहने पर उसी में इतना तन्मय हो जाता है – इतना घूल–मिल जाता है कि अपने आपको विसर्जन, विस्मरण ही कर बैठता है औ अपने को परमात्मा का स्वरूप ही समझने लगता है। त बवह कहता है – त्वमेवाहम् (मैं ही तू हूँ) शिवोहम् (मैं ही शिव हूँ) ब्रह्माऽस्मि (मैं ही ब्रह्मा हूँ)।

भगवान को अपने में और अपने को भगवान में समाया होने की अनुभूति की, जब इतनी प्रबलता उत्पन्न हो जाए कि उसे कार्य रूप में परिणित किए बिना रहा ही न जा सके तो समझना चाहिए कि समर्पण का भाव सचमुच सजग हो उठा। ऐसे शरणागति व्यक्ति को प्रार्थना द्रुतगति से देवत्व की ओर अग्रसर करती है और यह गतिशीलता इतनी प्रभावकारी होती है कि भगवान को अपनी समस्त दिव्यता समेत भक्त के चरणों में शरणागत होना पड़ता है। यों बड़ा तो भगवान ही है पर जहाँ प्रार्थना, समर्पण और शरणागति की साधनात्मक प्रक्रिया का सम्बन्ध है, इस क्षेत्र में भक्त को बड़ा और भगवान को छोटा माना जायगा क्योंकि अक्सर भक्त के संकेतों पर भगवान को चलते हुए देखा गया है। हमें सदैव पुरुषार्थ और सफलता के विचार करने चाहिए, समृद्धि और दयालुता का आदर्श अपने सम्मुख रखना चाहिये। किसी भी रूप में प्रार्थना का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। जो कार्य शरीर और मस्तिष्क के करने के हैं उनको पूरे उत्साह और पूरी शक्ति के साथ करना चाहिये। ईश्वर आटा गूंथने, न आयेगा पर हम प्रार्थना करेंगे तो वह हमारी उस योग्यता को जागृत कर देगा। वस्तुतः प्रार्थना का प्रयोजन आत्मा को ही परमात्मा का प्रतीक मानकर स्वयं को समझना है। इसे 'आत्म साक्षात्कार' भी कह सकते है। लघुता को विशालता में, तुच्छता को महानता में समर्पित कर देने की उत्कण्ठा का नाम प्रार्थना है। मनोविज्ञानवेत्ता डॉ. एमेली केडी ने लिखा है– 'अहंकार को खोकर समर्पण की नम्रता स्वीकार करना और उद्धत मनोविकारों को ठुकराकर परमेश्वर का नेतृत्व स्वीकार करने का नाम प्रार्थना है।'

अंग्रेज कवि टैनीसन ने कहा है कि ''बिना प्रार्थना मनुष्य का जीवन पशु–पक्षियों जैसा निर्बोध है। प्रार्थना जैसी महाशक्ति जैसी महाशक्ति से कार्य न लेकर और अपनी थोथी शान में रहकर सचमुच हम बड़ी मूर्खता करते हैं। यही हमारी अंधता है।''

प्रभु के द्वार में की गई आन्तरिक प्रार्थना तत्काल फलवती होती है। महात्मा तुकाराम, स्वामी रामदास, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि भक्त संतों एवं महांत्माओं की प्रार्थनाएँ जगत्प्रसिद्ध हैं। इन महात्माओं की आत्माएँ उस परम तत्व में विलीन होकर उस देवी अवस्था में पहुँच जाती थीं जिसे ज्ञान की सर्वोच्च भूमिका कहते हैं। उनका मन उस पराशक्ति से तदाकार हो जाता था। जो समस्त सिद्धियों एवं चमत्कारों का भण्डार है। उस दैवी जगत में प्रवेश कर आत्म श्रद्धा द्वारा वे मनोनीत तत्व आकर्षित कर लेते थे। चेतन तत्व से तादात्म्य स्थापित कर लेने के ही कारण वे प्रार्थना द्वारा समस्त रोग, शोक, भय व्याधियाँ दूर कर लिया करते थे। भगवत् चिन्तन में एक मात्र सहायक हृदय से उद्वेलित सच्ची प्रार्थना ही है। हृदय में जब परम प्रभु का पवित्र प्रेम भर जाता है, तो मानव–जीवन के समस्त व्यापार, कार्य–चिन्तन इत्यादि प्रार्थनामय हो जाता है। सच्ची प्रार्थना में मानव हृदय का संभाषण दैवी आत्मा से होता है। प्रार्थना श्रद्धा, शरणागति तथा आत्म समर्पण का ही रूपान्तर है।

यह परमेश्वर से वार्तालाप करने की एक आध्यात्मिक प्रणाली है। जिसमें हृदय बोलता व विश्व हृदय सुनता है। यह वह अस्त्र है जिसके बल का कोई पारावार नहीं है। जिस महाशक्ति से यह अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न लालित–पालित हो रहा है, उससे संबंध स्थापित

करने का एक रूप हमारी प्रार्थना ही है। प्रार्थना करन जिसे आता है उसे बिना जप, तप, मन्त्रजप आदि साधन किए ही पराशक्ति से तदाकार हो सकता है।

अपने कर्तव्य को पूरा करना प्रार्थना की पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी जो विपत्तियाँ सामने आएँ उनसे कायरों की भांति न तो डरें, न घबराएँ वरन् प्रभु से प्रार्थना करें कि वह हमें सबका सामना करने का साहस व धैर्य दें। तीसरा दर्जा प्रेम का है। जैसे–जैसे आत्मा प्रेमपूर्वक भावों द्वारा परमात्मा के निकट पहुँच जाती है वैसे ही वैसे आनंद का अविरल स्त्रोत प्राप्त होता है। प्रेम में समर्पण व विनम्रता निहित हैं। राष्ट्रकवि मैथलीषरण गुप्त कहते हैं–

''हृदय नम्र होता है नहीं जिस नमाज के साथ।
ग्रहण नहीं करता कभी उसको त्रिभुवन नाथ।।''

गीता का महा–गीत, वह सर्वश्रेष्ठ गीत प्रार्थना भक्ति का ही संगीत है। भक्त परमानन्द स्वरूप परमात्मा से प्रार्थना के सुकोमल तारों से ही संबंध जोड़ता है। इन संतों की प्रार्थनाओं में भक्ति का ही संगीत है। जरा महाप्रभु चैतन्य के हृदय को टटोलो, मीराबाई अपने हृदयाधार श्रीकृष्ण के नामोच्चारण से ही अश्रु धारा बहा देते थे, प्रार्थना से मनुष्य ईश्वर के निकट से निकटतम पहुँच जाता है। संसार की अतुलित सम्पत्ति में भी वह आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। सच्चे भावुक प्रार्थी को, जब वह अपना अस्तित्व विस्मृत कर केवल आत्मस्वरूप में ही लीन हो जाता है, उस क्षण जो आनन्द आता है उसका अस्तित्व एक भुक्तभोगी को ही हो सकता है।

प्रार्थना विश्वास की प्रतिध्वनि है। रथ के पहियों में जितना अधिक भार होता है, उतना ही गहरा निशान वे धरती में बना देते हैं। प्रार्थना की रेखाएँ लक्ष्य तक दौड़ी जाती हैं, और मनोवांछित सफलता खींच लाती हैं। विश्वास जितना उत्कृष्ट होगा परिणाम भी उतने ही प्रभावशाली होंगे।

प्रार्थना आत्मा की आध्यात्मिक भूख है। शरीर की भूख अन्न से मिटती है, इससे शरीर को शक्ति मिलती है। उसी तरह आत्मा की आकुलता को मिटाने और उसमें बल भरने की सत् साधना परमात्मा की ध्यान–आराधना ही है। इससे अपनी आत्मा में परमात्मा का सूक्ष्म दिव्यत्व झलकने लगता है और अपूर्व शक्ति का सदुपयोग आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति कर सकते हैं। निष्ठापूर्वक की गई प्रार्थना कभी असफल नहीं हो सकती।

प्रार्थना प्रयत्न और ईश्वरत्व का सुन्दर समन्वय है। मानवीय प्रयत्न अपने आप में अधूरे हैं क्योंकि पुरुषार्थ के साथ संयोग भी अपेक्षित है। यदि संयोग सिद्ध न हुए तो कामनाएँ अपूर्ण ही रहती है। इसी तरह संयोग मिले और प्रयत्न न करे तो भी काम नहीं चलता। प्रार्थना से इन दोनों में मेल पैदा होता है। सुखी और समुन्नत जीवन का यही आधार है कि हम क्रियाशील भी रहें और दैवी विधान से सुसम्बद्ध रहने का भी प्रयास करें। धन की आकांक्षा हो तो व्यवसाय और उद्यम करना होता है साथ ही इसके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ भी चाहिए ही। जगह का मिलना, पूँजी लगाना, स्वामिभक्त और ईमानदार, नौकर, कारोबार की सफलता के लिए चाहिए ही। यह सारी बातें संयोग पर अवलम्बित हैं। प्रयत्न और संयोग का जहाँ मिलाप हुआ वहीं सुख होगा, वहीं सफलता भी होगी।

आत्मा–शुद्धि का आवाहन भी प्रार्थना ही है। इससे मनुष्य के अन्तःकरण में देवत्व का विकास होता है। विनम्रता आती है और सद्गुणों के प्रकाश में व्याकुल आत्मा का भय दूर होकर साहस बढ़ने लगता है। ऐसा महसूस होने लगता है, जैसे कोई असाधारण शक्ति सदैव हमारे साथ रहती है। हम जब उससे अपनी रक्षा की याचना, दुःखों से परित्राण और

अभावों की पूर्ति के लिए अपनी विनय प्रकट करते हैं तो सद्व प्रभाव दिखलाई देता है और आत्म–सन्तोष का भाव पैदा होता है।

असंतोष और दुःख का भाव जीव को तब परेशान करता है, जब तक वह क्षुद्र और संकीर्णता में ग्रस्त है। मतभेदों की नीति ही सम्पूर्ण अनर्थों की जड़ है। प्रार्थना इन परेशानियों से बचने की रामबाण औषधि है। भगवान की प्रार्थना में सारे भेदों को भूल जाने का अभ्यास हो जाता है। सृष्टि के सारे जीवों के प्रति ममता आती है इससे पाप की भावना का लोप होता है।

जब अपनी असमर्थता समझ लेते है और अपने जीवन के अधिकार परमात्मा को सौंप देते हैं तो यही समर्पण का भाव प्रार्थना बन जाता है। दुर्गुणों का चिन्तन और परमात्मा के उपकारों का स्मरण रखना ही मनुष्य की सच्ची प्रार्थना है। महात्मा गाँधी कहा करते थे – मैं कोई काम बिना प्रार्थना के नहीं करता। मेरी आत्मा के लिए प्रार्थना उतनी ही अनिवार्य है, जितना शरीर के लिए भोजन।

प्रार्थना एक उच्चस्तरीय आध्यात्मिक क्रिया है जिसमें सही भाव के साथ क्रम होना चाहिए। इसे पॉच चरणों में समझा जा सकता है–

1. विनम्रता
2. आत्मसजगता
3. कल्पना का उपयोग
4. परमार्थ का भाव
5. उत्साह एवं आनंद।

स्वामी रामतीर्थ के अनुसार प्रतिदिन प्रार्थना करने से अंतःकरण पवित्र बनता है। स्वभाव में परिवर्तन आता है। हताशा व निराशा समाप्त हो उत्साह भर जाता है और जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। प्रार्थना आत्मविश्वास को जगाने का अचूक उपाय है।

अंतः की अकुलाहट को विश्वव्यापी सत्ता के समक्ष प्रकट कर देना ही तो प्रार्थना है। शब्दों की इस बाह्य स्थूल जगत में आवश्यकता होती है, परमात्मा से जुड़ना हो तो भाव चाहिये। प्रार्थना में हृदय बोलता है, शब्दो की महत्ता गौंण है। इसी कारण लूथर ने कहा था– **''जिस प्रार्थना में बहुत अल्प शब्दा हों, वही सर्वोत्तम प्रार्थना है।''**

प्रार्थना उस व्यक्ति की ही फलित होती है जिसका अंतःकरण शुद्ध है और जो सदाचारी है। इसी कारण संत मैकेरियस ने ठीक ही कहा है– ''जिसकी आत्मा शुद्ध व पवित्र है, वही प्रार्थना कर सकता है क्योंकि अशुद्ध हृदय से वह पुकार ही नहीं उठेगी जो परमात्मा तक पहुँच सके। ऐसे में केवल जिह्वा बोलती है और हृदय कुछ कह ही नहीं पाता।'' जब एक साधारण व्यक्ति नाम मात्र की भिक्षा देते हुए, भिक्षापात्र की सफाई देख लेता है तो वह ईश्वर तो दिव्य अनुदान देने वाला है। वह भी देखेगा कि याचक उसके आदर्शों पर चलने वाला है या नहीं। सुप्रसिद्ध कवि होमर के शब्दों में – **''जो ईश्वर की बात मानता है, ईश्वर भी उनकी ही सुनता है।''**

अतः प्रार्थना में एकाग्रता, निर्मलता, शांत मनःस्थिति, श्रद्धा–विश्वास और समर्पण का भाव होना चाहिये। यह परमात्म सत्ता से जुड़ने का एक भावनात्मक माध्यम है। पैगम्बर हजरत मुहम्मद के अनुसार– ''प्रार्थना (नमाज) धर्म का आधार व जन्नत की चाबी है।''

अभ्यास प्रश्न – ख

1. अहंकार को खोकर ..... की नम्रता स्वीकार करना और उद्धत ..... को ठुकराकर परमेश्वर का नेतृत्व स्वीकार करने का नाम प्रार्थना है।
2. प्रार्थना आत्मा की भूख है –
   क. भौतिक ख. आध्यात्मिक
   ग. शारीरिक घ. वासनात्मक

1.5 प्रार्थना का तात्त्विक विश्लेषण

प्रार्थना का निर्माण करने वाले कौन–कौन पृथक्–पृथक् तत्व हैं ? किन–किन वस्तुओं से प्रार्थना विनिर्मित होती है ? यह प्रश्न अनायास ही मन में उत्पन्न होता है।

1.5.1 प्रार्थना का प्रथम तत्त्व – विश्वास एवं श्रद्धा –

प्रार्थना की आत्मा उच्चतर सत्ता में अखण्ड विश्वास है। छान्दोग्योपनिषद् में निर्देश किया गया है **श्यदैक श्रद्धयाजुहोति तदेव वीर्यवत्तरं भवेति,** अर्थात् श्रद्धापूर्वक की गई प्रार्थना ही फलवती होती है। प्रार्थना में साधक का जीता–जागता विश्वास होना अनिवार्य है। ''सारा संसार ब्रह्ममय है तथा उस ब्रह्म का केन्द्र मेरे मन अन्तःकरण में वर्तमान् है। मैं विश्वव्याप्त परमात्मा में सम्बन्ध रखता हूँ और प्रार्थना द्वारा उस संबंध को अधिक चमका देता हूँ'' – ऐसा विश्वास रखकर हमें प्रार्थना में प्रवृत्ति करनी चाहिए। प्रार्थना स्वतः कोई शक्ति नहीं होती किन्तु विश्वास में वह महान शक्तिशालिनी मनोनीति फल प्रदान करने वाली बनती है। पहले अदृश्य शक्ति, परमात्मा की अपार शक्ति में भरोसा करो, पूर्ण विश्वास करो तब प्रार्थना फलीभूत होती है। प्रार्थना की शक्ति विश्वास से उत्तेजित हो उठती है। मन, वचन तथा कर्म तीनों ही आत्मश्रद्धा से परिपूर्ण हो उठें, प्रत्येक अणु–अणु साधक के विश्वास से रंजित हो उठें, तब ही उसे अभीष्ठ फल की प्राप्ति होती है।

प्रार्थना का मर्म है – विश्वास, जीता–जागता विश्वास, प्रार्थना में श्रद्धा सबसे मूल्यवान तथ्य है। श्रद्धा की अखण्ड धारा रोम–रोम में, कण–कण में, अणु–अणु में भ लो, तब प्रार्थना आरम्भ करो। श्रद्धा प्रत्येक वस्तु को असीम, आंतरिक शक्ति प्रचुरता से अनुप्राणित करती हुई अग्रसर होती है। श्रद्धाभाव के बिना समस्त वस्तुएँ प्राणहीन, जीवनहीन, निरर्थक एवं व्यर्थ हैं। श्रद्धा से युक्त प्रार्थना बुद्धि को प्रधानता नहीं देती प्रत्युति इसे उच्चतर धारणा शक्ति की ओर बढ़ाती है जिससे हमारा मनोराज्य विचार और प्राण के अनन्त साम्राज्य के साथ एकाकार हो जाता है। इस गुण से प्रत्येक प्रार्थी की बुद्धि में अभिनव शक्ति एवं सौन्दर्य आ जाते हैं तथा उसकी चेतना उस अनन्त ऐश्वर्य की ओर उन्मुक्त हो जाती है, जो वान्छां कल्पतरु' है तथा जिसके बल पर मनुष्य मनोवांछित फल पा सकता है। स्वास्थ्य, सुख, उन्नति, आयु जो कुछ भी हम प्राप्त करना चाहे वह श्रद्धा के द्वारा ही मिल सकते हैं। श्रद्धा उस अलौकिक साम्राज्य का राजमार्ग है। श्रद्धा से ही प्रार्थना में उत्पादक शक्ति, रचनात्मक बल का संचार होता है।

1.5.2 प्रार्थना का द्वितीय तत्त्व – एकाग्रता

प्रार्थना एक प्रकार का मानसिक व्यायाम है। यह एकाग्रता तथा ध्यान के नियमों पर कार्य करता है। जितनी ही प्रार्थना में एकाग्रता होगी, निष्ठा होगी और जितन एक रसता से

ध्यान लगाया जाएगा, उतनी ही लाभ की आशा करनी चाहिए। एकाग्रता पर ऐसी अद्भूत मौन–शक्ति है जो मन की समस्त शक्तियों को एक मध्यबिन्दु पर केन्द्रित कर देती है। सूर्य रश्मियाँ छिन्न–भिन्न रहकर कुछ गर्मी उत्पन्न नहीं करतीं किन्तु शीशे द्वारा उन रश्मियों को जब एक केन्द्र पर डाला जाता है, तो उनमें अद्भूत शक्ति का संचार होता है। इसी प्रकार एकाग्र प्रार्थना से मन की समस्त बिखरी हुईं शक्तियाँ एक केन्द्र बिन्दु पर एकाग्र होती है।

प्रार्थना का रहस्य मन की एकाग्रता पर है। प्रार्थना पर, प्रार्थना के लक्ष्य पर, मन की समस्त चित्तवृत्तियों को लगा देना, इधर–उधर विचलित न होने देना, निरन्तर उसी स्थान पर दृढतापूर्वक लगाये रखने की एकाग्रता है। जहाँ साधारण व्यक्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ से खड़े रह जाते हैं, वहाँ एकाग्रचित वाला साधक थोड़ी सी प्रार्थना के बल पर अद्भूत चमत्कारों का प्रदर्शन करता है।

1.5.3 प्रार्थना का तृतीय तत्त्व – सृजनात्मक ध्यान

प्रार्थना का तृतीय तत्व सृजनात्मक ध्यान है। एकाग्रता में ध्यान शक्ति की अभिवृद्धि होती है। महान पुरुष का निश्चित लक्षण उत्तम साधन ही है। ध्यान वह तत्व है जिससे स्मृति का ताना–बाना विनिर्मित होता है। सर आइजक न्यूटन ने तो यहाँ तक निर्देश किया है यदि विज्ञान की उन्नति का कोई रहस्य है, तो वह गंभीर ध्यान ही है। डॉ. लेटसन लिखते हैं कि ''ध्यान ही एकाग्रता शक्ति की प्रधान कुंजी है। ध्यान के अभाव में प्रार्थना द्वारा कोई भी महान् कार्य सम्पादन नहीं किया जा सकता। अत्यन्त पूर्ण इन्द्रिय बोध, उत्तम धारणा शक्ति, सृजनात्मक कल्पना बिना गंभीर ध्यान के कुछ भी सम्पादन नहीं कर सकते।

ध्यान अन्तःकरण की मानसिक क्रिया है। इसमें केवल मनःशान्ति की आवश्यकता है। यहाँ बाह्य मिथ्याडम्बरों की आवश्यकता नहीं। ध्यान तो अन्तर की वस्तु है–करने की चीज है, इसमें दिखावा कैसा ? चुपचाप ध्यान में संलग्न हो जाइए, दिन–रात परमप्रभु का आलिंगन करते रहो। भगवान के दिव्य मूर्ति को अन्तःकरण के कमरे में बन्द कर लो, तथा बाह्य जगत को विस्मृत कर दो। वस्तुतः ऐसे दिव्य साक्षात्कार के समक्ष बाह्य जगत् की स्मृति आती ही किसे है ? ऐसा ध्यान अमर शान्ति प्रसार करने वाला है।

ध्यान करते समय नेत्र बन्द करना आवश्यक है। नेत्र मूँदने से यह प्रपंचमय विश्व अदृश्य हो जाता है। विश्व को दूर हटा देना और ध्येय पर सब मनःशक्तियों को केन्द्रित कर देना ही ध्याान का प्रधान उद्देश्य है, परन्तु केवल बाहर का दृश्य अदृश्य होने से पूर्ण नहीं होता जब तक हमारा मन भीतर नवीन दृश्य निर्माण करता रहे। अतः भीतर के नेत्र भी बन्द कीजिए। इस प्रकार जब स्थूल और सूक्ष्म दोनों जगत् अदृश्य हो जाते हैं, तभी तत्काल और तत्क्षण एकाग्रता हो जाती है। ध्यान करने की विधि का उल्लेख सांख्य तथा योग दोनों ने ही बताया है पर सांख्य का **'ध्यानं निर्विषयं मनः'** अर्थात मन को निर्विषय बनाना, ब्लैंक बनाना महा कठिन है, परन्तु योग का ध्यान सबकी पहुँच के भीतर है। किसी वस्तु या मनुष्य का मानस–चित्र निर्माण कर उसके प्रति एकता, एकाग्रता करना व उसके साथ पूर्ण तदाकार हो जाना इसी का नाम योग शास्त्र का ध्यान है। ऐसे ही ध्यान के अभ्यास से प्रार्थना में शक्ति का संचार होता है।

1.5.4 प्रार्थना का चतुर्थ तत्त्व – आत्म निवेदन

यह प्रार्थना का अंतिम तत्त्व है। अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक प्रेम से आप अपना निवेदन प्रभु के दरबार में कीजिए। आपकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी। जहाँ कहीं भक्तों ने दीनता से

प्रार्थना की है उस समय उनका अन्तःकरण उनका चित्त प्रभु प्रेम में सराबोर हो गया है, उस प्रशान्त स्थिति में गद्‌गद् होकर उन्हें आत्मसुख की उपलब्धि हुई है। एक भक्त का आत्म निवेदन देखिए। वह कहता है, हे दयामय प्रभु ! मैं संसार में अत्यन्त त्रसित हूँ, अत्यन्त भयाकुल हो रहा हूँ। आपकी अपार दया से ही मेरे विचार आपके चरणों में खिंचे हैं। मैं अत्यन्त निर्बल हूँ– आप मुझे सब प्रकार का बल दीजिए और भक्ति में लगा दीजिए। गिड़गिड़ा कर प्रभु के प्रेम के लिए, भक्ति के लिए आत्म–निवेदन करना सर्वोत्तम है।

आपका आत्म–निवेदन आशा से भरा हो, उसमें उत्साह की उत्तेजना हो, आप यह समझे कि जो कुछ हम निवेदन कर रहे हैं वह हमें अवश्य प्राप्त होगा। आप जो कुछ निवेदन करें वह अत्यन्त प्रेमभाव से होना चाहिए। उत्तम तो यह है कि जो निवेदन किया गया हो वह सब प्राणियों के लिए हो, केवल अपने लिए नहीं।

अभ्यास प्रश्न – ग

1. प्रार्थना में सबसे मूल्यवान तथ्य क्या है ?
2. प्रार्थना का रहस्य निहित है। मन की –
   क. चिन्ता ख. एकाग्रता
3. प्रार्थना का अन्तिम तत्त्व है –
   क. आत्मनिवेदन ख. एकाग्रता

1.6 सारांश –

यह परमेश्वर से वार्तालाप करने की एक आध्यात्मिक प्रणाली है। अस्तित्व के गहनतम तल से, हृदय के गुह्यतम क्षेत्र से उभरने वाली आत्मा की पुकार ही प्रार्थना है प्रार्थना के अंतरस्वर सभी में एक ही हैं। प्रार्थना धर्म की निचोड़ है। इसमें हृदय बोलता है और उसे विश्व हृदय सुनता है। इसमें शब्दों की महत्ता गौण होती है। हृदय की कोई प्रत्यक्ष भाषा नहीं होती, उसकी वाणी तो वह परोक्ष सत्ता ही सुन व समझ सकती है।

चाह की अनुभूति ही सच्ची प्रार्थना है, शब्द नहीं। वर्तमान में मानव जीवन में सर्वाधिक अभाव है तो भावनाओं, संवेदनाओं व प्रेम का। इसीलिए वह समस्त सुख–सुविधा–साधन से सम्पन्न होने पर भी तनावग्रस्त है जिसका कि परिणाम रोग आदि के रूप में होता है। आज भीतर से संतप्त मानव को, उसकी टूटी संवेदनाओं को परमात्मा से जोड़ने हेतु प्रार्थना की कड़ी की आवश्यकता है। कलयुग की कालिका से छाई खामोशी को प्रार्थना के मधुर स्वरों से ही भेदा जा सकता है। श्री अरविंद के शब्दों में –''यह एक ऐसी महान क्रिया है जो मनुष्य को शक्ति के स्रोत पराचेतना से जोड़ती है और इस आधार पर चलित जीवन की समस्वरता, सफलता एवं उत्कृष्टता वर्णनातीत होती है।''

1.7 शब्दावली

वाक्‌जाल – वाणी की चिकनी–चुपड़ी मीठे शब्द।
आत्म–जागरण – अपने स्व स्वरूप की पहचान ।
'शरणागति' – सब कुछ छोड़कर प्रभुशरण में आ जाना।
मनोविकारों – एक प्रकार का मानसिक रोग, मन की क्षुब्ध अवस्था।
वान्छां कल्पतरु – मनोकूल फल प्रदान करने वाला।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. आर्तपुकार 2. पैगम्बर हजरत मुहम्मद
अभ्यास प्रश्न – ख	1. समर्पण, मनोविकारों 2. आध्यात्मिक
अभ्यास प्रश्न – ग	1. श्रद्धा 2. एकाग्रता 3. आत्मनिवेदन

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. उपासना समर्पण योग (वाङमय) – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
2. योग और मानसिक स्वास्थ्य – प्रो. आर.एस. भोगल
3. अखण्ड ज्योति पत्रिका – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
4. अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रार्थना क्या है ? प्रार्थना के आध्यात्मिक स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
2. प्रार्थना के अर्थ एवं विभिन्न परिभाषाओं का सविस्तार वर्णन करें ?
3. विभिन्न धर्मों में प्रार्थना का स्थान सुस्पष्ट करें ?
4. प्रार्थना के मूल तत्त्वों का तात्त्विक विश्लेषण कीजिए ?

इकाई – 2 प्रार्थना की विभिन्न विधियाँ या पद्धतियाँ

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रार्थना के विविध रूप
2.3.1 आकर्षक प्रार्थना
2.3.2 प्रवाहक प्रार्थना
2.4 आकर्षक प्रार्थना की तीन अवस्थाएँ
2.5 समूह प्रार्थना के प्रकार
2.5.1 सकाम प्रार्थना
2.5.2 निष्काम प्रार्थना
2.5.3 सामुदायिक प्रार्थना
2.5.4 आशावादी प्रार्थना
2.6 व्यक्तिगत प्रार्थना के प्रकार
2.6.1 याचिका
2.6.2 स्वेच्छा स्वीकार (**Confession**)
2.6.3 सिफारिशी प्रार्थना
2.6.4 प्रशंसा तथा धन्यवाद अभिव्यक्ति
2.6.5 चरमानुभूति (**Ecstasy**)
2.6.6 अत्यन्त प्रेमभाव
2.6.7 ईश्वर को सादर निमन्त्रण
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पूर्व के इकाई में आपने पढ़ा कि प्रार्थना ईश्वर, गुरु अथवा इष्ट के प्रति की गई अन्तर की आकुल पुकार है। यह मनुष्य की गहनतम इच्छा की अभिव्यक्ति है। प्रार्थना अपने प्रभु से संवाद की प्रक्रिया है, जिसमें प्रार्थी की अन्तरात्मा बोलती है और उपास्य देव सुनते हैं, सुनते ही नहीं प्रत्युत उत्तर भी देते हैं। इसे हृदय की गहन नीरवता में अनुभूत किया जाता है। सभी धर्मों में प्रार्थना का समान रूप से महत्त्व मिला है। धर्म–भावना का उद्भव ही प्रार्थना से हुआ है। बिना प्रार्थना के धर्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हिन्दु, मुसलिम, इसाई, सिख, शिंतो आदि समस्त धर्मों में प्रार्थना का विधान है।

प्रस्तुत इकाई में प्रार्थना के विविध स्वरूप जैसे आकर्षक व प्रवाहक प्रार्थनाएँ, प्रार्थना की अवस्थाएँ तथा प्रार्थना के विभिन्न व्यक्तिगत व समूह में की जाने वाली अनेक रूपों से

परिचित होंगे। प्रार्थना के इन दिव्य रूपों का अवलोकन होगा तथा प्रार्थना के प्रकारों का सूक्ष्मता से ज्ञान प्राप्त होगा।

हमें उम्मींद है कि प्रार्थना के इन विभिन्न प्रकारों का अध्ययन कर आपको प्रार्थना के विषय में सूक्ष्मता से ज्ञान व उनकी रहस्यमयी प्रक्रियाओं व विधाओं से परिचित होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई से आप –

1. प्रार्थना के विविध रूपों का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
2. प्रार्थना की अवस्थाओं से परिचित हो सकेंगे।
3. विभिन्न धर्मों में समूह में की जाने वाली प्रार्थना के स्वरूपों की जानकारी हो सकेंगे।
4. प्रार्थना के व्यक्तिगत प्रकार व विधियों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे।

2.3 प्रार्थना के विविध रूप –

वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि प्रत्येक चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं– नेगेटिव तथा पॉजिटिव। धन ध्रु एवं ऋण ध्रुव की भांति प्रार्थना को भी दो कोटियाँ मानी जा सकती है।

(1) आकर्षक प्रार्थना

(2) प्रवाहक प्रार्थना

2.3.1 आकर्षक प्रार्थना :– आकर्षक प्रार्थना वह आध्यात्मिक प्रयोग है जिनके द्वारा विश्व के अनंत शक्ति भंडार से वायुमण्डल में विकीर्ण थरथराने वाली ओज या दिव्य शक्ति के महासागर से दृढ़ संकल्प के अनुसार आत्म शक्ति खींचते हैं। कुछ समय के निमित्त मन एक सचेतन चुम्बक बन जाता है। ''मैं शक्ति हूँ, मैं आत्म–शक्ति को आकर्षित करने वाला चुम्बक हूँ।'' इस सत्ता से अनुप्राणित एवं सद्बुध मस्तिष्क रूपी यन्त्र वायुमण्डल से ओजस् शक्ति खींचता है और महाशक्ति पुंज बनता है। 'मैं शक्तिपुंज हूँ'। महान आकर्षण केन्द्र हूँ। ऐसा उच्चारण करते ही एकदम एक विशेष विचार–अनुक्रम उत्पन्न होता है। ज्यों ही तुम ध्यान में एकाग्र होते हो, झट गति की थरथराहटें उत्पन्न होने लगती हैं। आकर्षक प्रार्थना आध्यात्मिक शक्तियों के उस प्रयोग को कहते हैं जिसके द्वारा विश्व व्याप्त अनन्त शक्ति भण्डार से बुद्धि शक्ति व प्रेम की तरंगों को आकर्षण होता है।

2.3.2 प्रवाहक प्रार्थना :– प्रवाहक प्रार्थना आकर्षक प्रार्थना द्वारा प्राप्त मानसिक तरंगों को कार्य में लगाया जाता है। अनेक साधक महात्मा आध्यात्मिक चिकित्सक रोगी को बिना देखे रोगी चाहे कितने भी हजार मील की दूरी पर हो, इसी प्रार्थना से इलाज किया जाता है। गरीब, दरिद्र, दिवालिए और बेरोजगारों की समृद्धि के लिए प्रवाहक प्रार्थना का ही विशेष उपयोग किया जाता है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक कठिनाईयों को इसी प्रार्थना के असीम बल से दूर किया जाता है। इस प्रार्थना में व्यक्त सद्भावनाएँ, लहरों के रूप में ईथर पदार्थ के अप्रत्यक्ष माध्यम द्वारा बिना रोक–टोक के हजारों रुकावटों को पार करती हुई यथास्थान पर पहुँचती हैं। एकत्रित विचारों के सूक्ष्म परमाणुओं द्वारा आकाश में एक शक्तिशाली वायुमंडल विनिर्मित होता है और प्रार्थी की इच्छाशक्ति एवं एकाग्रता के अनुसार इच्छानुकूल सिद्धि प्राप्त होती है।

उदाहरण – संसार में सबका भला हो। सबकी खैर हो सर्वत्र एक्य मंगल का प्रसार हो। आरोग्य, आनन्द, शान्ति, प्रेम, सुख–समृद्धि की वर्षा हो। हे करुणानिधान! आपकी मंगल कामना पूर्ण हो। ऐसी मंगलकारी प्रार्थना से आसपास के वायुमंडल में सुख–शान्ति, आरोग्य

भातृ–भाव तथा प्रेम के विशुद्ध परमाणु विकीर्ण होते हैं। दरिद्रता, व्याधि, रोग, शोक, लड़ाई–झगड़े का दूषित वातावरण नष्ट होकर प्रेम तथा भातृ–भाव का साम्राज्य फैलता है।

2.4 आकर्षक प्रार्थना की तीन अवस्थाएँ – इसकी तीन अवस्थायें हैं–

1. **परमात्मा से निःसंकोच आवश्यक शक्ति की याचना** – इस मत के अनुसार साधक को एकान्त स्थान में शान्तचित्त से लेटकर अपने अंग–प्रत्यंगों को शिथिल कर अथवा सुखासन से सीधे बैठकर परमपिता से अभीप्सित शक्ति की याचना करनी चाहिए। यदि आप शुद्ध एवं सच्चे हृदय से तन्मय होकर प्रार्थना करोगे तो परमेश्वर आपकी पुकार अवश्य सुनेंगे और ठीक उसी प्रकार सुनेंगे जिस प्रकार आप किसी के शब्दों को सुनते हैं, यह प्रथमावस्था हुई।
2. **वांछित शक्ति को अपने में पूर्णतः लबालब भरना** – आपको ऐसा मानसिक चित्र बनाना चाहिए जिसमें आप अपने आपको दीप्तबल से उद्वेलित होता हुआ देखें। कल्पना को उत्तेजित कीजिए और उसके द्वारा मन में एक ऐसा शक्तिशाली स्वरूप बनाइए जिसमें आप अपने आपको उस दिव्य शक्ति से भरा–पूरा देखे। नेत्र मूंदकर आप ऐसे ध्यान मग्न हो जाइए जैसे बहुत दूर एक ज्योतिपुंज है और सूर्य जैसी उसकी किरणें सृष्टि में बिखरी चली जा रही हैं। कल्पना कीजिए कि ये किरणें मेरी हैं। वे मेरे ही लिए आई हैं। वह सारी की सारी ज्योत्सना मेरी है। मेरे ही लिए है। ज्योत्सना चिन्तन का अभ्यास क्रमशः उत्तरोत्तर बढता जाना चाहिए। आप में शक्ति का प्रवाह भरता है या नहीं– इस विषय में दूसरे से न कहें। निसर्ग को अपना कार्य करने दें। इस अवस्था में आप परम पिता की गोद में खेलते हैं।
3. **अनुभव की अवस्था** – जिस शक्ति या बुद्धि की आपने याचना की होगी, क्रमशः वह आपको प्राप्त होने लगेगी। उसका कुछ–कुछ अनुभव भी होगा। आप इस धारणा को लेकर अपने नित्य के काम धन्धे में प्रवृत्त हों कि आपको मनोवांछित फल मिल गया हों, आप अपने आदर्श को धीरे–धीरे प्राप्त करते जा रहे हैं। आप में 'दीप्तबल' आ रहा है। नेत्रों में, मुख मण्डल में, अंग–प्रत्यंगों में दीप्त बल भर गया है। संक्षेप में जिन वस्तुओं की आपने प्रार्थना की है उन्हें अपने में आता हुआ देखो। इस प्रकार नव शक्ति से सम्पन्न होकर आप प्रवाहक प्रार्थना से कार्य ले सकते हैं। क्रमशः तुम्हें सत्य का प्रकाश दृष्टिगोचर होने लगेगा।

अभ्यास प्रश्न – क

1 आकर्षक प्रार्थना आध्यात्मिक शक्तियों के किन तत्वों को अपने ओर आकर्षित करता है ?
2 ''आकर्षक प्रार्थना की प्रथम अवस्था कौन सी है ?

2.5 समूह प्रार्थना के प्रकार –

प्रार्थना के अन्य भेदों में सकाम तथा निष्काम प्रार्थना है। इन दोनों में कौन सी अधिक महत्त्वपूर्ण है यह निर्णय करने से पूर्व हमें इनका विभिन्न स्वरूप समझना चाहिए। पाश्चात्य देशों में सर्वत्र सकाम प्रार्थना का प्रचार है। इसके विपरीत प्राचीन आर्यों में निष्काम प्रार्थना का ही अधिक महत्व था।

2.5.1 सकाम प्रार्थना :– नाम से ही स्पष्ट है कि किसी इच्छा, कामना की पूर्ति हेतु जब ईश्वर को याद किया जाता है, वह सकाम प्रार्थना है। आज इसी का प्रचलन अधिक है। सकाम प्रार्थना से कामनाएँ पूर्ण होती है, जिन वस्तुओं के लिए आग्रह किया जाता है, उनकी प्राप्ति होती है। इस बात को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण समय–समय पर 'युनिटी' नामक अमेरिकन पत्रिका में प्रकाशित होते रहते हैं। यदि इन सब प्रार्थनाओं का संग्रह किया जाए, तो एक स्वतन्त्र पुस्तक तैयार हो सकती है। अतएव हम यही निर्देश करेंगे कि जिस वस्तु के लिए विधिपूर्वक, सच्चे हृदय से प्रार्थना की जाती है वह अवश्यमेव प्राप्त होती है।

ईश्वर प्रार्थना सुनते हैं तथा उसे पूर्ण करते हैं। इसमें किंचित भी संदेह नहीं है। टेलिफोन के रिसीवर की तरह प्रार्थना साधन से सैकड़ों मील की दूरी पर बैठे हुए किसी हृदय से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। प्रार्थना के लिए सच्ची निष्ठा, पूर्ण श्रद्धा एवं जीता–जागता विश्वास अपेक्षित है। साकार या निराकार, सगुण अथवा निर्गुण के व्यर्थ बकवास में मत पड़ो। सच्चे आत्म–निवेदन द्वारा तुम आत्म–निवेदन के योग्य बन सकते हो। उसी के द्वारा तुम अपने शरीर की सीमाओं को उल्लंघन करके अध्यात्म मार्ग पर आरूढ़ हो सकोगे और परमात्मा का सजीव स्पर्श कर सकोगे। ईश्वर द्वारा हमें प्रत्येक वस्तु मिलेगी यह विश्वास हमारी प्रार्थना को अनुप्राणित करता रहे। यह विश्वास ही मनुष्य की आत्मा की चिर–सम्पत्ति है। बिना इन श्रद्धा के हमारी आवश्यक पोषण नहीं पा सकती।

2.5.2 निष्काम प्रार्थना :– हमारे प्राचीन मनीषियों, ऋषियों, आर्यों ने निष्काम प्रार्थना को ही सर्वोत्तम माना है तथा उसकी महिमा का गुणगान किया है। ईश्वर के शरणागत होकर निष्काम (अर्थात बिना किसी इच्छा अथवा कामना के) और प्रेम भव से उसके नाम का अभ्यास करना, बिल्कुल स्वार्थ रहित होकर मानस पूजा करना उनकी दृष्टि में बड़ा उत्तम है। वे अपने जीवन निर्वाह की समस्त चिन्ताएँ ईश्वर पर छोड़ देते थे। निष्काम प्रार्थना में ही वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है। सकाम प्रार्थना में तो यह इच्छा बनी रहती हैकि कुछ प्राप्ति होगी, फल मिलेगा, यह होगा वह होगा, किन्तु निष्काम में मन शान्त हो जाता है। निष्काम भाव से और गुप्त रीति से की हुई प्रार्थना का फल अल्पकाल में ही मिल जाता है। साधक अहंकार रहित होकर अपना स्वार्थ भगवान का समर्पित कर देता है अर्थात अपनी इच्छाओं को उनमें विलीन कर देता है। जिस प्रार्थी ने कामना, इच्छा, स्वार्थ को तिलांजलि देकर निष्काम प्रार्थना का आश्रय ग्रहण किया है, वह जब प्रार्थना में ध्यानावस्थित होता है, तो अपने भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उसके वास्तविक रूप में देखता है। उस समय उसे आत्मा की पूर्णता का भी ज्ञान हो जाता है और वह ईश्वरीय नियम की समता को भी देखता है। उसे विदित हो जाता है कि ईश्वर ने मनुष्य तथा सृष्टि को सर्वांगपूर्ण बनाया है।

निष्काम प्रार्थना से मनुष्य को आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है, मन की कल्मष धुलती है, दैवी सम्पदा की वृद्धि होती है, आत्मबल बढ़ता है, तथा आत्म–ज्ञान प्राप्त होता है। आत्म–ज्ञान ही मनुष्य के जीवन का सर्वोच्च फल है किन्तु मोहवश मनुष्य सकाम प्रार्थना में ही अटका रहता है और अन्त समय उसे बड़ा पश्चाताप होता है।

एकान्त में बैठकर करुण भाव से और गद्‌गद् वाणी से भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे परमेश्वार! मैं आपकी हृदय से समृति चाहता हूँ। जब सर्वशक्तिमान् सर्वाधार, सर्वलकमहेश्वर भगवान् सबके प्रेरक सर्वान्तर्यामी और सबके परम सुहृद हैं, तो आप मेरे भी

सब कुछ हैं। मैं अपने मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रिय, प्राण और समस्त धनादि को आपको अर्पण करना चाहता हूँ। हे देवाधिदेव! वही मुझे प्रदान कीजिए। तात्पर्य यह है कि इस सिद्धान्त के अनुसार प्रार्थी किसी भी जीव से न तो द्वेष रख सकता है, न स्वार्थ में अन्धा होकर संकुचित ही रह सकता है, ममता एवं अहंकार की दुर्द्धर्ष विभीषिकाओं से भी बच सकता है।

2.5.3 सामुदायिक प्रार्थना :– सम्पूर्ण विश्व के साथ हम हैं, उसकी भलाई, उसकी प्रसन्नता ही सर्वोपरि है– यह भाव लेकर की गई प्रार्थना सामुदायिक प्रार्थना है, इसके परिणाम बहुत सकारात्मक होते हैं। प्रार्थना व्यक्तिगत एवं सामुदायिक दोनों प्रकार से की जा सकती है। व्यक्तिगत प्रार्थना से हम केवल अपनी भलाई की भावनाएँ प्रकट करते हैं। अपने तक ही सब कुछ परिमित रखते हैं, यह दृष्टिकोण कुछ संकुचित सा है। अकेले–अकेले केवल अपनी भलाई के लिए प्रार्थना करने में वह शक्ति नहीं जो सामूहिक प्रार्थना में होती है। वेदों में जहाँ भी प्रार्थना संबंधी ऋचाएँ और मन्त्र दिए गए हैं, उक्त वैदिक प्रार्थनाओं में एक व्यक्ति के लिए नहीं, किन्तु समुदाय के लिए, सब समाज के लिए, राष्ट्र के अभ्युत्थान के निमित्त, विश्व के कल्याण के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं। विश्व की भलाई में हमारी भलाई सम्मिलित है। सम्पूर्ण विश्व के साथ हम हैं यह भाव लेकर की गई प्रार्थना उच्चता है। वेदों का मूल मन्त्र गायत्री है। उस गायत्री मन्त्र में **''धियो यो नः प्रचोदयात्''** का अर्थ वही है कि जिस सर्वश्रेष्ठ आनन्ददायक तेज से सब विश्वव्याप्त हो रहा है उस अत्यन्त आनन्ददायक तेज का हम ध्यान करते हैं। वह 'हमें सद्बुद्धि दे, हमारे मन में शुभ विचार उत्पन्न करे।'

हममें से प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व जागृत हो कुछ अपने हृदयस्थ आत्मा से परमपिता परमात्मा का साक्षात्कार करे और अपना रोम–रोम पवित्र कर ले। शान्ति को प्रवाहित होने दे। विशुद्ध हृदय से महाप्रभु के अनन्त उपकारों का आभार मान कर समग्र प्राणीमात्र के जीवन, आनन्द, सुख वृद्धि के लिए प्रार्थना करे। इस निर्मल विशुद्ध उपासना से परमात्मा का दिव्य स्पर्श आपकी आत्मा को होगा। आपके समस्त मनस्ताप और क्लेश भस्मीभूत होकर नवजीवन और नवीन बल प्राप्त होगा और जीवन परम शान्ति और सुखी होगा। यह क्लेशों से मुक्ति का सुगम उपाय है। यही प्रार्थना का रहस्य है।

2.5.4 आशावादी प्रार्थना :– जो लोग यह कहते हैं – ''मैं मूरख खल कामी'' मैं मूर्ख हूँ, मैं पाप में पड़ा हूँ, मुझे पाप–पंक से निकालिए। वह बड़ी भूल करते हैं। ऐसे प्रार्थियों का विश्वास पाप में है। पाप में परमात्मा कब मिला है ? आपको तो प्रार्थना में कहना चाहिए '' हे परमेश्वर आप तेज पुंज हो, आप बुद्धि के सागर हो, शक्ति के अथाह उदधि हो। मुझे भी तेज से परिपूरित कीजिए। बुद्धि उड़ेल दीजिए शक्ति से अंग–अंग भर दीजिए। प्रार्थना हमेशा आशावादी होनी चाहिए। मन में आशावादी भावना धारण कीजिए और कहिए–'तेजोऽसि तेजोमयि देहि।'' हे तेज ! पुंज के पुंज, मुझे भी तेज युक्त कीजिए, करना आशावादी प्रार्थना है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1 समूह प्रार्थना के प्रकार हैं –
क. चरमानुभूति ख. निष्काम प्रार्थना

2 'तेजोऽसि तेजोमयि देहि'' प्रार्थना है –
क. निष्काम प्रार्थना ख. आशावादी प्रार्थना

2.6 व्यक्तिगत प्रार्थना के प्रकार

वैसे प्रार्थना भावना से सम्बन्धित है, इसी के आधार पर इसे विभिन्न रूपों में बताया गया है जिसे प्रार्थना के प्रकार कह सकते हैं जो अग्रलिखित है–

2.6.1 याचिका :–

1. महाकवि रविन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं – हे ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दो, जिससे मैं दुखों और कठिनाइयों का सामना कर सकूँ।
2. स्वस्तिपन्थाम् अनुचरेम् सूर्यचंद्रमसाविव। ऋग्वेद
   हे ईश्वर सूर्य और चन्द्र की भांति कल्याणकारी मार्ग अपना सकूँ ऐसी शक्ति मुझे दें।
3. विद्यार्थी और शिक्षक समवेत रूप से प्रार्थना करते हैं। –
   सहनाववतु – हे ईश्वर हम दोनों (शिक्षक और विद्यार्थी) की रक्षा कर
   सहनौ भुनक्तु – हम दोनों का परिपालन कर
   सहवीर्यं करवावहै – (ताकि) हम दोनों वीरतापूर्वक कार्य साथ–साथ कर सकें।
   तेजस्विनावधीतमस्तु – हम दोनों का ज्ञानार्जन तेजस्विता से परिपूर्ण हो।
   मा विद्विषावहै –(तथा) हम एक दूसरे के प्रति द्वेष भाव न रखें।
4- अमरत्व की प्रार्थना निम्नलिखित प्रार्थनाओं में दिखाई पड़ती है –
   असतो मा सद्गमय – हे ईश्वर मुझे तु असत्य से सत्य की ओर ले चल।
   तमसो मा ज्योर्तिगमय – अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल।
   मृत्योर्मा अमृतंगमय – मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चल।
5. ऊँ त्र्यम्बकं यजामहे – मैं तीन नेत्रों वाले ईश्वर की आराधना करता हूँ।
   सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् – मैं सुगंध सौष्ठव से पुष्ट होकर मृत्यु के बंधन से उसी प्रकार मुक्त हो जाऊँ ऊर्वारूकमिव बन्धनात् – जैसे उर्वारूक फल परिपक्व होकर वृक्ष से अलग हो जाता है।
   मृत्योर्मुक्षीय मा अमृतात् – (साथ ही) अमृतत्व से मैं कभी अलग नही हो सकूँ।

2.6.2 स्वेच्छा स्वीकार (Confession) – ईश्वर के सम्मुख अवांछनीय कार्यों को स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार करने से ईश्वर के प्रति हमारी निष्ठा की पुष्टि होती है। उक्त प्रकार की प्रार्थना सभी प्रमुख धर्म ग्रन्थों में पाई जाती है। उदा. – ईसाई, हिन्दु, बौद्ध इत्यादि। गौतम बुद्ध के जीवन काल में तो बौद्ध सन्यासी अपने अवांछनीय कार्यों का भरी सभा में दो बार स्वेच्छा – स्वीकार किया करते थे।

2.6.3 सिफारिशी प्रार्थना :– निःस्वार्थ भाव से दूसरों के लाभ के अर्थ से की जाने वाली प्रार्थना – मूसा ईश्वर से कहते थे – तुम्हारे अपने ही लोगों को तुम माफ कर दो अन्यथा मुझे जीवन की किताब से मिटा दो।

2.6.4 प्रशंसा तथा धन्यवाद अभिव्यक्ति :– अफ्रीकी पिग्मी बौने ईश्वर को धन्यवाद देते हुए कहते हैं – वाका (ईश्वर) तूने मुझे यह भैंस दी, यह शहद दिया, यह मद्य दिया। भोजन के समय की जाने वाली प्रार्थना में प्रशंसा तथा धन्यवाद दोनों दिखाई पडते हैं।

2.6.5 चरमानुभूति (Ecstasy) :– कुछ सम्प्रदायों तथा जातियों में भक्तगण तब तक नाचते गाते रहते हैं जब तक कि ईश्वर की चरमानुभूति नहीं हो जाती।

2.6.6 अत्यन्त प्रेमभाव :– इस्लाम धर्म में ऐसी प्रार्थना का बहुत महत्व है। ईश्वर के साथ संवाद तथा उत्कट प्रेम यह तो सूफी सम्प्रदाय की अपनी पहचान है।

2.6.7 ईश्वर को सादर निमन्त्रण :–ऋग्वेद में एक प्रार्थना –
''हे सोम गुणों से सम्पन्न परमेश्वर, तू हमारे हृदय में ऐसे रमण कर जैसे कि गौवें हरी भरी घास में रमण करतीं हैं। और जैसे मनुष्य अपने घर में रमण करता है।'' सभी धर्म–सम्प्रदायों में प्रार्थना का यह रूप दिखाई देता है।

अभ्यास प्रश्न – ग

1 सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सह ..... करवावहै।
2 इसाई धर्म में की जाने वाली प्रार्थना को कहा जाता है।

क. याचिका ख. स्वेच्छा स्वीकार

2.7 सारांश –

ईश्वर प्रार्थना सुनते हैं तथा उसे पूर्ण करते हैं। वे टेलिफोन के रिसीवर की तरह प्रार्थना साधन से सैकड़ों मील की दूरी पर बैठे हुए किसी हृदय से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। प्रार्थना के लिए सच्ची निष्ठा, पूर्ण श्रद्धा एवं जीता–जागता विश्वास अपेक्षित है। सच्चे आत्म–निवेदन द्वारा तुम आत्म–निवेदन के योग्य बन सकते हो। उसी के द्वारा तुम अपने शरीर की सीमाओं को उल्लंघन करके अध्यात्म मार्ग पर आरूढ़ हो सकोगे और परमात्मा का सजीव स्पर्श कर सकोगे। यह विश्वास ही मनुष्य की आत्मा की चिर–सम्पत्ति है। बिना इन श्रद्धा के हमारी आवश्यक पोषण नहीं पा सकती।
निष्काम प्रार्थना से मनुष्य को आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है, मन की कल्मष धुलती है, दैवी सम्पदा की वृद्धि होती है, आत्मबल बढ़ता है, तथा आत्म–ज्ञान प्राप्त होता है। आत्म–ज्ञान ही मनुष्य के जीवन का सर्वोच्च फल है किन्तु मोहवश मनुष्य सकाम प्रार्थना में ही अटका रहता है और अन्त समय उसे बड़ा पश्चाताप होता है।
एकान्त में बैठकर करुण भाव से और गद्‌गद् वाणी से भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे भगवन् सबके प्रेरक सर्वान्तर्यामी और सबके परम सुहृद हैं, तो आप मेरे भी सब कुछ हैं। मैं अपने मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रिय, प्राण और समस्त धनादि को आपको अर्पण करना चाहता हूँ। हे देवाधिदेव! वही मुझे प्रदान कीजिए। तात्पर्य यह है कि इस सिद्धान्त के अनुसार प्रार्थी किसी भी जीव से न तो द्वेष रख सकता है, न स्वार्थ में अन्धा होकर संकुचित ही रह सकता है, ममता एवं अहंकार की दुर्द्धर्ष विभीषिकाओं से भी बच सकता है।

2.8 शब्दावली

चरमानुभूति – आनन्द की पराकाष्ठा।
दीप्तबल – परमात्मा की दिव्य शक्तियाँ ।
पश्चाताप – स्वयं के द्वारा किए गए गलती पर पछतावा।
हृदयस्थ – हृदय में विद्यमान परमात्मा का स्वरूप।
अवांछनीय – न करने योग्य कार्य, जिसे समाज मान्यता न दें। त्यागने योग्य।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. बुद्धि शक्ति व प्रेम 2. परमात्मा से निःसंकोच आवश्यक शक्ति की याचना

अभ्यास प्रश्न – ख 1. निष्काम प्रार्थना 2. आशावादी प्रार्थना

अभ्यास प्रश्न – ग 1. वीर्य 2. स्वेच्छा स्वीकार

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ –

उपासना समर्पण योग (वाङमय) – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
योग और मानसिक स्वास्थ्य – प्रो. आर.एस. भोगल
अखण्ड ज्योति पत्रिका – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1 आकर्षक प्रार्थना के तीनों अवस्थाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ?
2 प्रार्थना के विभिन्न प्रकारों पर सोदाहारण प्रकाश डालिए ?
3 समूह प्रार्थना एवं व्यक्तिगत प्रार्थना में अन्तर स्पष्ट कीजिए ?
4 व्यक्तिगत प्रार्थना के प्रकार का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए ?

इकाई – 3 प्रार्थना का महत्व व लाभ

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विभिन्न धर्मों में प्रार्थना
3.4 प्रार्थना के लिए सर्वोत्तम समय
3.5 प्रार्थना की आवश्यकता
3.6 प्रार्थना के लाभ
3.6.1 आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रार्थना का स्थान
3.6.2 प्रार्थना के कुछ महत्वपूर्ण लाभ
3.7 प्रार्थना की वैज्ञानिकता एवं मनोविज्ञान
3.7.1 प्रार्थना की वैज्ञानिकता
3.7.2 प्रार्थना का मनोविज्ञान
3.8 प्रार्थना चिकित्सा
3.9 प्रार्थना का दैनिक जीवन में महत्त्व
3.10 प्रार्थना में असफलता के कारण
3.11 सारांश
3.12 शब्दावली
3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रार्थना परमात्मा के प्रति की गई एक **आर्तपुकार** है। जब यह पुकार द्रौपदी, मीरा, एवं प्रहलाद के समान हृदय से उठती है तो भावमय भगवान दौड़े चले आते हैं। जब भी हम प्रार्थना करते हैं तब हर बार हमें अमृत की एक बूंद प्राप्त होती है जो हमारी आत्मा को तृप्त करती है। गाँधी जी ने जीवन में प्रार्थना को अपरिहार्य मानते हुए इसे आत्मा का खुराक कहा है। प्रार्थना ऐसा कवच या दुर्ग है जो प्रत्येक भय से हमारी रक्षा करता है। यही वह दिव्य रथ है जो हमें सत्य, ज्योति और अमृत की प्राप्ति कराने में समर्थ है।

प्रस्तुत इकाई में प्रार्थना का विभिन्न धर्मों में स्थान, महत्त्व व प्रार्थना के सही समय का ज्ञान प्राप्त करेंगे। साथ ही प्रार्थना से लाभ व प्रार्थना के वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक स्वरूपों का विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्त में प्रार्थना चिकित्सा के साथ प्रार्थना का दैनिक जीवन में उपयोगिता व प्रार्थना में असफलता के कारणों का विश्लेषणात्मक वर्णन किया गया है।

हमें पूर्ण विश्वास हैं कि प्रार्थना के इन विभिन्न पहलूओं का अध्ययन कर आपको प्रार्थना के विषय में सही ज्ञान व प्रार्थना के सम्बन्ध में फैली भ्रान्तियों का निराकरण हो सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

विभिन्न धर्मों में प्रार्थना व उसके समय का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।

प्रार्थना की जीवन में आवश्यकता व लाभ से परिचित हो सकेंगे।
प्रार्थना के वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूपों की जानकारी हो सकेंगे।
प्रार्थना के चिकित्सकीय पक्ष से अवगत हो सकेंगे।
दैनिक जीवन में प्रार्थना का महत्त्व व प्रार्थना में असफलता के कारणों से रूबरू हो सकेंगे।

3.3 विभिन्न धर्मों में प्रार्थना :–

प्रार्थना धर्म की सबसे पुरानी और सरल अभिव्यक्ति है। शायद ही कोई संस्कृति या समाज होगा जहाँ प्रार्थना नहीं पाई जाती। ईसा, सेंटपॉल, संत आगस्टाइन सभी प्रार्थना के बल पर ही सिद्ध महापुरुष बने थे। दादू, रज्जब, नानक, कबीर, रैदास जैसे संतों का तो जैसे यह जीवन का आधार ही था। गांधी, टैगोर, महादेवी की प्रार्थनाओं से भला कौन अपरिचित है। विभिन्न धर्म ग्रंन्थों में अलग–अलग तरह से प्रार्थनाएँ शामिल हैं।

प्राचीन काल में वैदिक आर्य अपने–अपने ईश्वर से भरपूर प्रार्थना किया करते थे। उस समय यह प्रार्थना सांसारिक सुख की प्राप्ति जैसे अच्छी फसल, अच्छा स्वास्थ्य, युद्ध में विजय, संकट में सफलता, संतान प्राप्ति आदि के लिये की जाती थी। इसके साथ ही सुख–शांति, अच्छा चरित्र और आध्यात्मिक समृद्धि की भी अपेक्षा करते थे। आधुनिक हिंदू धर्म में आरती और स्तुति के जरिये ईश्वर की आराधना की जाती है। 'अरदास' सिक्ख धर्म के तीन मूल तत्वों में से एक है। मुस्लिम अल्लाह से 'दुआ' करते हैं, नमाज अदा करते हैं। ईसाई यीशु या मदर मैरी से प्रार्थना करते हैं, उनकी सामूहिक प्रार्थनाँ भी आयोजित होती है। हिन्दू अपने ईष्टदेव को पूजते हैं। हालांकि बौद्ध धर्म ईश्वरवाद को नहीं मानता फिर भी इसके अनुयायी खूब प्रार्थना करते हैं। बौद्ध मंदिरों में प्रार्थना चक्र को घुमाना आम दृश्य है। आधुनिक पीढ़ी अपने से उच्च शक्ति से प्रार्थना करती है। अतः सभी किसी न किसी रूप रूप में शक्ति को स्वीकारते हैं।

3.4 प्रार्थना के लिए सर्वोत्तम समय :–

प्रकृति की ओर से ध्यान देने से विदित होता है कि प्रातःकाल से ही सम्पूर्ण रस भरा हुआ है, भजन, प्रार्थना के लिए यह अमृत बेला सर्वोत्कृष्ट है। ऋषिवर इसी ब्रह्ममुहुर्त में उठकर प्रार्थना में संलग्न होते थे। साधक को सूर्योदय से पूर्व ही उठ शौचादि कर्म से निवृत्त हो, स्नान आदि करने के पश्चात् शान्त चित्त हो ध्यान में प्रविष्ट होना चाहिए। ब्रह्ममुर्हुत में प्रार्थना करना उत्तम एवं स्वास्थ्यप्रद है। निर्देश है कि–

''ब्राह्मे मूहुर्ते बुध्यते स्वास्थ्यो रक्षार्थ मायुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थे स्मरोदि मधुसूदनम्।।

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन की रक्षा के लिये ब्रह्म–मुर्हूत में शैया त्यागकर उठ जायें तथा दुःखनाश के लिये भगवान की प्रार्थना करें। सूर्योदय का आगमन जीवन–ज्योति के आगमन का परिचायक है।

प्रार्थना तीनों कालों में की जाती है– प्रातःकाल मध्यान्ह तथा सायंकाल। प्रातःकाल की प्रार्थना सर्वोत्कृष्ट श्रमित फलदायिनी है। उत्तम प्रार्थना ब्राह्ममुहूर्त की अमृत बेला में होती है। यह वह समय है जब प्रातःकाल के आक्रोश में तारे झिल–मिलाते रहते हैं। सूर्य उदय से लगभग डेढ़ घण्टे पूर्व यह पुनीत समय प्रारम्भ होता है। जिस समय तारे लुप्त हो जाएँ, उस समय की प्रातः संध्या मध्यम श्रेणी में परिणित हो जाएगी। सूर्योदय के पश्चात की प्रार्थना में वह तीव्रता नहीं रहती। अतएव उसे कनिष्ठ कहते हैं।

इसी प्रकार सायं संध्या के भी तीन विभेद हैं – सूर्य अस्त होने से पूर्व जो संध्या की जावे, यह उत्तम कहलाती है और सूर्यास्त होने के पश्चात व तारों के निकलने से पूर्व जो संध्या की जावे, वह मध्यम कहलाती है। तारों के झिलमिलाने के पश्चात् जो संध्या की जाती है, वह कनिष्ठ कहलाती है।

रात्रि में सोने से पूर्व प्रार्थना करना आवश्यक है। रात्रि के समय निद्रावस्था में प्रत्येक मनुष्य स्थूल जगत से नाता तोड़ अपने निज लोक में प्रविष्ट हो ईष्टगुरु से ज्ञान प्राप्त करता है। उस समय जीवात्मा की संधि परमात्मा से स्वयमेव ही होती है। सोने से पूर्व की गई शुभ भावना संस्कारित हो चित्त में समाहित हो जाती है व अपना कार्य करती है। सोना व जागना जिंदगी की सबसे बड़ी प्रक्रियाएँ हैं। जो होशपूर्वक सोता है वह होश पूर्वक जागता है, जो होशपूर्वक जीता है, वह होशपूर्वक मरता है। सारांश व सरल रूप में हम कह सकते हैं कि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही प्रार्थनामय होना चाहिये। समयावधि का होना अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है लेकिन धार्मिक व आध्यात्मिक व्यक्ति का प्रत्येक क्षण प्रभु को समर्पित होता है। ऐसे में वह जिस समय जो भी करता है वह प्रार्थना है। गांधीजी कहते हैं कि कुछ लोगों को इसके लिये एक मिनट भी पर्याप्त होता है तो कुछ को 24 घंटे भी कम लग सकते हैं। उन लोगों के लिये जो ईश्वर के अस्तित्व को अनुभव कर रहे हैं, केवल मेहनत–मजदूरी करना भी प्रार्थना हो सकती है परन्तु जो पाप कर्म कर रहे हैं, वे चाहे जितना भी चाहे जो (ब्रह्ममुर्हूत आदि) समय लगाएँ, सफल नहीं होंगे।

उपरोक्त शास्त्रीय संध्याकाल ब्रह्माण्ड और पिण्ड पर परस्पर निर्भर है। पृथ्वी एक बड़ा भारी चुम्बक है। उस पर सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रभाव भिन्न–भिन्न काल में भिन्न– भिन्न होता है। इसी प्रकार मनुष्य भी एक चुम्बक है। उसके स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से है। शरीर रूपी चुम्बक का उत्तर सिरा मस्तिष्क , दक्षिाण सिरा नाभि स्थान तथा मध्य स्थान हृदय है। चन्द्रमा का सम्बन्ध चित्त से है तथा सूर्य का आत्मा से और भिन्न–भिन्न समयों में की गई प्रार्थनाओं का भिन्न–भिन्न फल होता है। उपरोक्त काल इन्हीं वैज्ञानिक नियमों के अनुसार नियत किए गए हैं। सूर्योदय पर समस्त शक्तियाँ उत्तेजित रहती हैं, रात्रि के समय ब्रह्माण्ड की सर्व शक्तियाँ सो जाती हैं, अतःशरीर की समस्त शक्तियाँ भी सोई हुई सी रहती हैं। ब्रह्ममुहूर्त में की गई प्रार्थना प्रत्येक दृष्टि से उत्तम है।

अतः निद्रा से जागृत होते ही साधक को चाहिए कि गुरुदेव का ध्यान करे और उनकी मूर्ति को अपनी मानसिक दृष्टि के सम्मुख समाधिस्थ प्रत्यक्षाकार करे, ऐसा करने से उसका चित्र एकाग्र होने लगेगा। उस समय जीवन के उच्च लक्ष्य पर चित्त को एकाग्र करे और श्रीगुरु से प्रार्थना करें कि वे इस कार्य में सहायता प्रदान करें।तत्पश्चात् मलमूत्र शौचादि से निवृत्त हो दातुन और स्नान से शुद्ध होवे और शुद्ध वस्त्र धारण कर नियत स्थान पर ब्रह्ममुहूर्त में प्रार्थना करें।

3.5 प्रार्थना की आवश्यकता :–

प्रार्थना अक्सर तब की जाती है जब किसी के समक्ष कोई विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गई हो। जब कि वास्तव में मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही प्रार्थनामय होना चाहिए। उसमें कुछ मांगना नहीं पड़ता अपितु जीवन को परमात्मा का परम प्रसाद समझकर ग्रहण करना होता है। उस जीवन को परमात्मा की सृष्टि को और सुन्दर बनाने के लिए अर्पित करना होता है, उस समर्पण की शक्ति के लिये प्रभु से प्रार्थना की आवश्यकता है। प्रभु का समर्थ अवलम्बन न केवल मानव की क्षुद्रता को पूर्ण करता है बल्कि उसके कार्यों को अधिक

सौन्दर्यशाली बना देता है। संसार में और मानव जीवन में अनेकों ऐसी परिस्थितियाँ, घटनाएँ घटित होती हैं जहाँ समाान्य मानव बुद्धि घुटने टेक देती है। हमारी राह में इनता सघन अंधकार प्रतीत होता है न तो मार्ग की प्रतीति होती है और न ही मंजिल की। तब ऐसे सुदृढ़ आश्रय की आवश्यकता होती है जो हमें संभाल सके, यह आश्रय प्राप्त करने की आवश्यकता जब ईश्वरोन्मुख हो जाती है तब वह प्रार्थना बन जाती है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रार्थना का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह ईश्वर से वार्तालाप करने की आध्यात्मिक प्रणाली है जिस महाशक्ति से यह अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न, लालित–पालित हो रहा है उससे सम्बन्ध स्थापित करने का एक रूप हमारी प्रार्थना है। अतः इस क्षेत्र में यह अनिवार्य है। मनोविज्ञान की दृष्टि में प्रार्थना की अवस्था में शरीर ढीला पड़ जाता है और जितनी भी हमारी तन्मयता एवं विश्वास होता है, उतनी ही अधिक हमें अंतर की प्रवृत्तियों तक पहुँचने तथा अपनी इष्ट भावना के बीजारोपण में सुगमता होती है।

आज जनमानस आधुनिकता की आपाधापी से ऊब चुका है। आज भारत ही नहीं सारे संसार की बड़ी भयावह स्थिति होती गई है। संसार एक ऐसे बिन्दु के समीप पहुँच गया है जहाँ पर किसी समय भी उसका ध्वंस हो सकता है। आज संसार को भयानक ध्वंस से बचाने के लिये वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रार्थनाओं की परम आवश्यकता है। अतः प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक पहलू से व विविध आयामों से देखने, सोचने व महसूस करने पर हम कह सकते हैं कि प्रार्थना की हर स्थिति में आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न – क

1 सिक्ख धर्म के तीन मूल तत्वों में से एक तत्त्व कौन सी है जो प्रार्थना से सम्बन्धी है ?

2 प्रार्थना के लिए सर्वोत्कृष्ट श्रमित फलदायिनी कौन सी है ?

3.6 प्रार्थना के लाभ :

जिस प्रकार जप, पूजन, अर्चन, पाठ, हवन, अनुष्ठान, मन–संयम, आत्म–संयम एवं मनोजय के विभिन्न मार्ग हैं उसी प्रकार प्रार्थना भी एक प्रकार का सुव्यवस्थित आध्यात्मिक व्यायाम है। जिस प्रकार दण्ड, मुदगर, डम्बल इत्यादि की प्रक्रियाओं से शरीर पुष्ट होता है, अंग–प्रत्यंग सुदृढ़ होकर निरोगता, सौन्दर्य, परिश्रम की क्षमता, उपार्जन, उत्पादन आदि की समृद्धियाँ हाथ लगती हैं, उसी प्रकार प्रार्थना के आध्यात्मिक व्यायाम से मनुष्य का मनोबल सुदृढ़ होता है। आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, इच्छाशक्ति विकसित होती है, कलुषित मन धुलकर स्वच्छ एवं पूर्ण पवित्र हो जाता है प्रार्थना से चित्त में सुव्यवस्था, मन में एकाग्रता, बुद्धि में तीक्ष्णता तथा विवके की जागृति में असाधारण उन्नति होती है।

प्रार्थना तो एक प्रकार का प्रायश्चित है। विभिन्न प्रकार के स्वार्थों, चिन्ताओं, व्याकुलताओं, रोगों, व्याधियों, दुर्बलताओं को प्रक्षालित करने के लिए यह एक सर्वसुलभ साधन है। हमारे अभिमान के मिथ्यात्व को मिटा देने वाली महौषधि है। प्रार्थना में जो सम्भावनाएँ, जो उत्तम इच्छाएँ प्रकाशित की जाती हैं, उनसे एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रवाह फैलने लगता है। प्रार्थी के इर्द–गिर्द का समस्त वातावरण पवित्रता, शांति तथा विश्व प्रेम की पुष्ट धाराओं से घनीभूत हो उठता है।

जीवन के साथ आरम्भ होने वाली प्रार्थना एक आशीर्वाद है, और जीवन की समाप्ति के साथ की जाने वाली प्रार्थना उस आशीर्वाद के प्रति हार्दिक कृतज्ञता है। इन दोनों के मध्य

में जीवन का कार्यक्षेत्र है। प्रार्थना के जल से अभिसिंचित होकर हमारी प्रार्थना तलवार के पानी की तरह हमारी कलाइयों के बल सहायता देती है, वह प्रशिक्षण श्वांसों के संचार के साथ हमें बल प्रदान करती रहती है। जब पवित्र तथा दिव्यता के ये सुमधुर क्षण क्रम–क्रम से हमारी एक–एक पुकार के साथ हृदय में नक्षत्रों की तरह चमकने लगते हैं, तब अंधकार भी हमें सुहावना प्रतीत होने लगता है। उस समय निराशा का तिमिर भी हमारे लिए सौन्दर्यमय हो जाता है। हमारी साधना जीवन के घोर अंधकार में उस दिव्यता का दर्शन पाने के लिए व्याकुल हो उठती है। तब एक क्षण आता है, हमारी निराशा यकायक चमक उठती है, तब चन्द्र दर्शन होता है। वह हमारी प्रार्थना की शुभ ज्योति है, वह हमारी साधना का फल है। हम कृतज्ञता भरी आंखों से जिधर निगाह डालते हैं एक हास्य, एक उल्लास और एक शोभा हमें दीख पड़ती है।

3.6.1 आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रार्थना का स्थान – अंग्रेजी कवि टैनीसन ने कहा है कि 'बिना प्रार्थना मनुष्य का जीवन पशु पक्षियों जैसा निर्बोध है। प्रार्थना जैसी महाशक्ति से कार्य न लेकर और अपनी थोथी शान में रहकर सचमुच हम बड़ी मूर्खता करते हैं। यही हमारी अंधता है।' प्रार्थना तो परमेश्वर से वार्तालाप करने का एक आध्यात्मिक प्रणाली है। प्रार्थना में हृदय बोलता है विश्व हृदय सुनता है। जिस महाशक्ति से यह अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न लालित–पालित हो रहा है, उससे संबंध स्थापित करने का एक रूप हमारी प्रार्थना ही है। प्रार्थना करना जिसे आता है उसे बना जप,तप, मन्त्रजाप आदि साधन किए ही पराशक्ति से तदाकार हो सकता है।

आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में प्रार्थना का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस अंधकारावृत्त संसार में मनस्तापा, कष्ट, दुःख,पश्चाताप की जो कलुषित वासनाएँ मस्तिष्क में वास करती हैं, उनसे छुटकारा पाने का अमृतोपम उपाय प्रार्थना ही है। आन्तरिक हृदय के गुप्त प्रदेश मे निकली हुई सद्प्रार्थना से हृदय की दीनता दूर होती है, सद्ज्ञान का उदय होता है जिससे संसारी मानव ईश्वर के अनुग्रहों को पहिचानता है तथा आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता है। परमात्म तत्व से तादात्म्य स्थापित करना ही सच्ची प्रार्थना का मूल अभिप्राय है। परमात्मा महासागर है। तर्क से, बहस से, बड़े–बड़े विवाद करने से इसकी थाह कदापि नहीं मिल सकती। प्रार्थना के मापदण्ड से अथाह जलराशि को मापा जा सकता है। स्वार्थपरता, भिक्षावृत्ति को लेकर जो प्रार्थना में प्रवृत्त होते हैं उनकी आराधनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। वे भगवान् से अबाध संबंध स्थिर नहीं हो पाते। उनकी प्रार्थना से चिन्ताओं एवं क्लेशों का नाश नहीं होता।

यदि परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने की कोई विधि मनुष्य के हाथ में है, तो वह प्रार्थना ही है। यह वह ब्रह्मास्त्र है जिसके बल का पारावार नहीं। अंतःप्रेक्षण के द्वारा प्रार्थना ढूँढ़कर हमारी कमजोरियों , दुर्बलताओं का मूलोच्छेदन करती है और नवीन अन्तर्मन का निर्माण होता है। अहंकार, पाप, दुःख को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय प्रार्थना की शक्ति ही है। यह हमें पाप एवं दुःखों की आंधियों से बाहर निकालती है इससे हमारे मनोविकार परिष्कृत, शुद्ध, बुद्ध होकर निखर आते हैं। पवित्र प्रार्थना जीवन की प्रेरक शक्ति है। मन को साधन और शिक्षित करने की सबसे पहली सीढ़ी प्रार्थना ही है।

प्रार्थना मनुष्य के मन की समस्त विश्रृंखलित एवं अनेक दिशाओं में बहकने वाली प्रवृत्तियों को एक केन्द्र पर एकाग्र करने वाले मानसिक व्यायाम का नाम है। चित्त की समग्र भावनाओं को मन के केन्द्र में एकत्र कर चित्त को दृढ़ करने की एक प्रणाली का नाम

प्रार्थना है। जब मनुष्य के मन में किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती है, वह संसार के व्यतिवम, दुरभिसंधि, प्रवंचना से क्लान्त हो जाता है, कोई आशय नहीं दृष्टिगोचर होता, तब सब प्रकार से विवश होकर वह शक्ति व साहस के एक कल्पित आदर्श की मन में स्थापना करके आश्रय तथा सहायक की खोज में अपने ही आंतरिक जगत में प्रवेश करता है। उसके अंतःकरण में परमात्मा की अमित शक्ति अद्भूत सामर्थ्य एवं अतुलित बल की एक प्रतिमा निवास करती है। इस मानस चित्र की सृष्टि उसकी व्यक्तिगत श्रद्धा, आत्मविश्वास एवं आस्तिकता के बल पर विनिर्मित होती है। यह उसके वर्षों के संचित शुभ संस्कारों का स्थूल स्वरूप है। उसके संस्कार ज्यों–ज्यों परिवर्तित होते हैं, त्यों– त्यों यह मानस चित्र बदलता और पुनः विनिर्मित होता है। यह हमारे अपने दृष्टिकोण के अनुसार परमेश्वर का सर्वशक्ति सम्पन्न, अमित फलदाता परमेश्वर का चित्र है। यह हमारी श्रद्धा की मूर्ति है। प्रार्थना से हम इसी आंतरिक शक्ति केन्द्र की ओर उन्मुख होते हैं, यहीं से एक प्रकार का ऐसा बल उत्साह प्राप्त करते हैं। यहीं से एक प्रकार का ऐसा बल उत्साह प्राप्त करते हैं, जो मन में किसी गुप्त सामर्थ्य के भण्डार को यकायक खोल देता है। मन का यह आन्तरिक गुप्त सामर्थ्य शरीर के अणु–अणु में अद्भूत बल का संचार करता है। आशा की ज्योति जगमगा उठती है, पुरुषार्थ शक्ति से मन विभोर हो उठता है। वहाँ से ऐसी शान्तिदायक विचार धाराएँ प्रस्फूटित होती हैं, जो प्रार्थी को अभय और सावधान बना देती हैं।

गीता का महा–गीत, वह सर्वश्रेष्ठ गीत प्रार्थना–भक्ति का ही संगीत है। भक्त परमानन्द स्वरूप परमात्मा से प्रार्थना के सुकोमल तारों से ही संबंध जोड़ता है। इन संतों की प्रार्थनाओं में भक्ति का ही संगीत है। जरा महाप्रभु चैतन्य के हृदय को टटोलो, मीराबाई की प्रार्थनाओं को मापो, महाप्रभु चैतन्य तथा मीराबाई अपने हृदयाधार श्रीकृष्ण के नामोच्चारण से ही अश्रु धारा बहा देते थे, प्रार्थना से मनुष्य ईश्वर के निकट से निकटतम पहुँच जाता है। संसार की अतुलित सम्पत्ति मे भी वह आनन्द प्राप्त नहीं होसकता। सच्चे भावुक प्रार्थी को, जब वह अपना अस्तित्व विस्मृत कर केवल आत्मस्वरूप में ही लीन हो जाता है, उस क्षण जो आनन्द आता है उसके अस्तित्व एक भुक्तभोगी को ही हो सकता है।

एक तत्वदर्शी का कथन है कि प्रार्थना का सम्बन्ध मानव के परम पुनीत तत्व आत्मा से है। आत्मा अनन्त शक्तिमान है। सर्वगुण सम्पन्न, निर्विकार, निर्लेप है। उसमें पवित्र शक्ति का अज्ञेय खजाना है। मन इसके समीप निवास करता है। मन अन्य सब अंगों की अपेक्षा सूक्ष्म एवं शक्तिशाली है। वस्तुतः जिस समय मन की शक्तियाँ आत्मविश्वास से आंतरिक केन्द्र पर एकाग्र हो जाती हैं, तब इस पर आत्मा को प्रतिबिम्ब पड़ता है जो मन को अद्भुत सामर्थ्य से सम्पन्न कर देता है। इसे दैवी प्रेरणा के नाम से अभिहित किया जा सकता है। आंतरिक दैवी प्रेरणा प्राप्त करने का नाम ही प्रार्थना है।

3.6.2 प्रार्थना के कुछ महत्वपूर्ण लाभ –

1. हृदय का शुद्धिकरण – प्रार्थना में जाने अनजाने में हम शुद्ध, पवित्र और उदात्त भावनाओं को प्रश्रय देते है। इन विचारों, भावनाओं के सातत्य के कारण हमारे विचारों को सकारात्मक दिशा मिलती है। कह भी गया है कि sow thought reap action, sow action reap habit.
2. मानसिक स्वास्थ्य लाभ – प्रार्थना की प्रारंभिक अवस्थाओं में हमारे अवचेतन मन में दबे हुए विचार, भावनाएँ, इच्छाएँ मन के ऊपरी सतह पर आने लगतीं हैं। मन के इन व्यापारों

को अभिव्यक्ति मिलने के कारण धीरे–धीरे मनुष्य उनसे छुटकारा पर सकता है। मन की यही शुद्धि मानसिक स्वास्थ्य का प्रथम सोपान माना जाता है।

3. प्रार्थना करते समय हम विचारों की शुद्धता, हृदय की विशालता, तेजस्वी कार्य करने की इच्छा, इत्यादि को स्वाभाविक रूप से आमंत्रित करते हैं। परिणाम स्वरूप हम
    1. क्षुद्र विचारों को स्थगित रखते हैं।
    2. क्षुद्र विचारों से छुटकारा भी पा सकते हैं। महर्षि पतंजलि ने क्षुद्र विचारों से मुक्ति पाने का ऐसा ही मार्ग सुझाया है, **'वितर्क बाधने प्रतिपक्षभावनम्'।**
4. प्रार्थना द्वारा नए संस्कारों के बीजारोपण का मार्ग साफ होता है, क्योंकि प्रार्थना से धीरे–धीरे हमारे पूर्वाग्रह, दूसरों के प्रति दुर्भावनाएँ तथा हमारा अडियल रवैया परिवर्तित हो सकता है। नई चीजें सीखने में यह बात आवश्यक मानी जाती है।
5. ध्यान केन्द्रित करने की हमारी क्षमता में बहुत ही स्वाभाविक तथा सुविधापूर्ण तरीके से वृद्धि होती है।
6. प्रार्थना द्वारा योगशास्त्र वर्णित चित्तशुद्धि तथा प्राणशुद्धि दोनों साध्य हैं। भावनाओं तथा विचारों की शुद्धि के फलस्वरूप चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण होने लगता है तथा मनोमय कोश सही ढंग से क्रियाशील हो जाता है। योग वासिष्ठ में वर्णित तर्क के अनुसार मनोमयकोश के समुचित स्वास्थ्य लाभ के फलस्वरूप अन्नमय कोश या स्थूल शरीर उत्तम स्थिति को प्राप्त हो जाता है। शरीर की इस उत्तम स्थिति के कारण विभिन्न नाड़ियों में प्राण का नियमन बहुत ही सुकर हो जाता है। इस प्रकार प्राण शुद्धि हो जाती है।
7. श्रीमद्भगवत गीता में भक्तियोग को अत्यन्त प्रभावी तथा आसान साधना मार्ग के रूप में मान्यता प्राप्त है। अत्यन्त सहज प्राकृतिक तथा प्रभावी ढ़ंग से, प्रार्थना द्वारा व्यक्तित्व का समाकलन सम्भव है। यही कारण है कि सामान्य व्यक्ति के लिए सर्वांगिण प्रगति का एकमेव मार्ग प्रार्थना है। ऐसा कहना तर्क–असंगत नहीं होगा।

लोगों की प्रार्थना के प्रति दृष्टि –आजकल प्रार्थना का गलता समझा जा रहा है। इक्कीसवीं सदीं के युवकों की सुशिक्षित दृष्टि में प्रार्थना एक ढकोसला, एक बिडम्बना, खाने–पकाने, ठगने–ठगाने का एक धंधा है। जीवन की क्रियाशील वीरता मन की एक सूक्ष्म प्रतिक्रिया में विश्वास नहीं करती। हवाई जहाज में इंजिन चलाने वाला हाथ, या परमाणु बस द्वारा विध्वंस करने देने वाला हृदय किसी के प्रति विनीत रूप से भिक्षा अथवा दया के प्रतीक बनकर नहीं उठ सकते। नवीन रक्त स्वभावतः विद्रोही होता है। वह क्रांति चाहता है, प्रत्येक दिशा में क्रान्ति, परिवर्तन, नई सृष्टि। वह नए सिरे से सब कुछ जमाना चाहते हैं और मन्दिर, गिरजे या गुरुद्वारे में बेकार का बखेड़ा नहीं फैलाना चाहते। ईश्वर दैवी शक्ति या परम आत्मा जैसी कोई शक्ति हुआ करें, वह स्वयं अपने आपको इतना मजबूत समझते हैं कि प्रार्थना द्वारा कुछ भी याचना नहीं करना चाहते। प्रार्थना उनकी दृष्टि में व्यर्थ प्रलाप है।

यह प्रार्थना का सम्पूर्ण चित्र नहीं है। यह नास्तिकों की मिथ्या शेखी ही कही जायगी। इसमें दम्भ है, अभिमान है, और धूल में मिला देने वाला स्वार्थ। प्रार्थना का अभिप्राय ही गलत समझा जा रहा है। कुछ का कुछ समझ लिया गया है। लोग समझते हैं कि प्रार्थना करके हम परमेश्वर को फुसला सकते हैं, बच्चों की तरह मीठी–मीठी बातें करके लुभा सकते हैं। प्रार्थना मन का मोदक नहीं है। जो व्यक्ति बिना परिश्रम के मुफ्त का माल उड़ाने की फिक्र में है उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि ईश्वर उनके गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने

या भीख माँगने की ओर ध्यान नहीं देता। जो प्रार्थना को ढपोरशंख मानते हैं, वे भयंकर भूल करते हैं।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. प्रार्थना परमेश्वर से वार्तालाप करने का कौन सा प्रणाली है ?
2. योगशास्त्र में प्रार्थना के लाभ को किस रूप में वर्णित किया गया है ?
3. श्रीमद्भगवतगीता में प्रार्थना को किस योग के अन्तर्गत लिया गया है ?

3.7 प्रार्थना की वैज्ञानिकता एवं मनोविज्ञान :

3.7.1 प्रार्थना की वैज्ञानिकता :–प्रार्थना न तो अंधविश्वास है और न ही यह अवैज्ञानिक प्रक्रिया है। डॉ लैरीडांसी चिकित्साशास्त्र में प्रार्थना के उपयोग को लेकर एक जाना–माना नाम है। वे अमेरिका की सर्वोच्च संस्था 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हैल्थ के 'ऑफिर ऑफ आल्टरनेटिव मेडिसिन' की चेयरमैन हैं। 'Helling words, the power of prayer and the practise of medicion' इस विषय पर लिखी उनकी तमाम किताबों में से एक है। वे उत्सुकता से कहते हैं– ''करीब एक सौ तीस ऐसे अध्ययन होंगे जिनमें देखा जा सकता है कि यदि आप प्रार्थना को नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोगशाला तक लेकर जाते हैं तो वह कुछ अद्भुत चमत्कार करती है। सिर्फ मनुष्यों के लिये ही नहीं बल्कि बैक्टीरिया, फंगस, बीज, चूहे आदि के लिये भी।''

न्यूयार्क की कोलंबिया यूनिवर्सिटी के 'स्कूल ऑफ मेडिसिन विभाग' के डॉक्टरों ने इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रयोग भी किये हैं और प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि प्रार्थना का असर न सिर्फ सामान्य क्षणों में होता है अपितु उन क्षणों में तो प्रार्थना का ही असर होता है, जब कोई दूसरा उपाय कारगर न हो। डॉक्टरों ने बिना बताए कुछ बांझ महिलाओं की गर्भधारण प्रक्रिया के दौरान उनके लिये प्रार्थना का अवलंम्बन लिया। इस अध्ययन दल ने विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में प्रार्थनाएँ आयोजित करवाई, जिनके परिणाम चौंकाने वाले अर्थात् अत्यन्त सकारात्मक थे। जिन महिलाओं के लिये प्रार्थनाएँ की गई थीं उनमें शारीरिक स्थितियाँ ज्यादा अनुकूल बनीं। 'जनरल ऑफ रिप्रोडक्टिव हेल्थ' के अनुसार प्रार्थना–उपचार के पूर्व उन सभी की शारीरिक क्षमताएँ समान थीं। इस प्रकार सामुहिक के साथ वैयक्तिक प्रार्थनाएँ भी सफल व विज्ञान की दृष्टि से सिद्ध, प्रामाणित होती देखी गई हैं। विज्ञान बुद्धि की उपज है और इसकी एक निश्चित सीमा व सीमित दायरा होता है, सबके बाद सबसे परे परम शक्तिशाली व पूर्ण परम पिता परमात्मा है जिसकी सत्ता व सामर्थ्य को विज्ञान स्वीकारता है।

3.7.2 प्रार्थना का मनोविज्ञान : मनोवैज्ञानिक तो प्रार्थना को अव्यक्त मन से उठे हुए एक चेतना मात्र कहेगा। मनुष्य की अज्ञात चेतना परम लीलामयी है। उसमें एक से एक आश्चर्यजनक सामर्थ्यो का भण्डार है। हमारी प्रार्थना को ध्यान चेतन मन की ओर से गुप्त मन की ओर आकर्षित कर देती है। हमारी समस्त शक्तियाँ एक बार भी मानसिक सामर्थ्य के उस विशाल क्षेत्र की ओर जिसका कि हमारे चेतन मन की कभी भान भी नहीं होता, अग्रसर हो जाती हैं। यह अज्ञात चेतन प्रदेश हमारे जीवन का मूल स्रोत है जिसकी सूक्ष्म

धाराएँ हमें अपने दैनिक जीवन में निरन्तर प्रवाहित होती हुई अनुभव होती हैं यद्यपि हम इन धाराओं के मूल स्थान अव्यक्त मन को समझ नहीं पाते हैं। अचेतन जगत मन के अव्यक्त प्रदेश, का अन्वेषण अत्यन्त दुःसाध्य है। बुद्धि, सद्भाव, आंतरिक सामर्थ्य तथा आन्तरिक शक्ति का केन्द्र यही गुप्त मन है। गुप्त मन के सन्मुख चेतन मन की कोई गणना नहीं हो सकती। गुप्त मन सदैव दिन रात निर्विघ्न रूप से कार्य करता है किन्तु रात्रि में निद्रा के समस्त गुप्त मन का कार्य और भी क्षिप्र गति से सम्पन्न होता है। तुलनात्मक दृष्टि से यह देखा जाय तो अनन्त शक्ति मनुष्य के इसी गुप्त मन में है। निर्बल से निर्बल मनुष्य की शक्ति का भी वास्तविक केन्द्र गुप्त मन ही है।

क्या कारण है कि पापी एकदम पुण्यात्मा बन जाता है, डरपोक मनुष्य दृढतापूर्वक टिकने लगता है। साधारण व्यक्ति अनायास ही प्रतिभा सम्पन्न हो उठता है ? कारण यह ही है कि उनके गुप्त मन का कोई अज्ञात केन्द्र एक दम खुल जाता है और अदृश्य शक्तियाँ अत्यन्त वेग से प्रवाहित हो उठती हैं, बड़े से बड़ा पापी इन रन्ध्रों के खुल जाने से अकस्मात पुण्यात्मा बन जाता है। गुप्त मन के संस्कारों से संवेगों में परिवर्तन होने के कारण मनुष्यों के व्यवहारों में भी परिवर्तन हो जाते हैं।

गुप्त मन की प्रतिक्रियाएँः 'गुप्तमन' मन की शक्ति केन्द्र है। शक्ति, प्रवाह, प्रेरणा,बल उसी में भरा है। शक्ति मनुष्य के अन्तर में वास करती है। आन्तरिक सामर्थ्यों का स्रोत 'गुप्त मन' ही है। वही शान्ति, सुख और आनन्द का कन्ट्रोलर है। वही हमारा रक्षक या भक्षक है। जिस प्रकार प्रत्येक चेतन वस्तु का अचेतन जगत में सर्वप्रथम सूत्रपात होता है, उसी प्रकार प्रत्येक चेतन भावना, उस अचेतन जगत में पदार्पण कर हमारे व्यक्तित्व की एक स्थाई वृत्ति बनकर उसे प्रवाहित करती है। इस प्रकार वह मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक संगठन कार्य में समुचित भाग लेती है। यदि वह स्वास्थ्य शक्ति, बल, सामर्थ्य, बुद्धि या अन्य किसी उत्कृष्ट भाव सम्बन्धी भावना हुई हो तो हमें अन्दर से एक प्रकार का उत्कर्ष तथा साहस मिलता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रार्थना एक प्रकार का 'आत्म संकेत' अथवा आत्मसूचना' ही है। जीवन में संकेत तथा सूचनाएँ हमें परिचालित करती हैं उदाहरणार्थ, आप खिन्न मन होकर मार्ग में चले जा रहे हैं कि अकस्मात् किसी प्रफुल्लवदन मित्र से आपकी भेंट हुई। उसकी मुस्कान तथा उत्साहवर्द्धक वचन आप पर बलप्रद औषधि का कार्य करते हैं और आपकी निराशा विलीन हो जाती है। यह है संकेत या सूचना का प्रभाव। ऐसी ही एक विशेष प्रकार की सूचनाएँ आपकी प्रार्थनाएँ भी हैं। आपकी अपनी ही भावनाएँ आपके मुख श्री से उद्वेलित होकर शब्द समूह अचेतन (गुप्तमन) में पहुँची तो वह परिणित होकर मानसिक स्तर का एक भाग बन गईं। प्रार्थना का मनोवैज्ञानिक आधार गुप्त मन ही है। जिन विचारों का प्रभाव जितना ही शीघ्र गुप्त मन पर पहुँचाया जा सकता है, जितनी दृढ़ता एवं श्रद्धा से पहुँचाया जा सकता है, उतनी ही शीघ्र प्रार्थना फलवती होती है। प्रार्थना करते समय प्रकट मन की अवस्था अचल एवं कुछ निष्क्रिय सी होकर मंद पड़ जाती है। अतः उस समय एकाग्रता होने से सूचनाओं का प्रवाह सीधा गुप्त मन में प्रवेश कर जाता है। हमारे अन्तर की अचेतन वृत्तियाँ उन सूचनाओं को ग्रहण कर लेती हैं। विरोधी भावनाएँ नहीं उठतीं। स्वअवस्था, निद्रावस्था, मधुर राग, सरस कविता के श्रवण इन सभी मानसिक दशाओं में अन्तर नव वृत्ति खूब ग्रहण कर सकता है। प्रार्थना की अवस्था में शरीर ढ़ीला पड़ जाता है और जितनी भी हमारी तन्मयता एवं विश्वास होता है, उतनी ही अधिक हमें अन्तर की प्रवृत्तियों तक पहुँचने तथा अपनी ईष्ट भावना के बीजारोपण में सुगमता होती है।

यह एक दिलचस्प तथ्य है कि हर सहानुभूतिपूर्ण, हर सद्भावपूर्ण या कल्याणकारी कार्य से हम सभी को एक विशिष्ट प्रकार का समाधान और आनन्द प्राप्त होता है। प्रकृति की विशालता और भव्यता हममें एक विशेष प्रकार की आंतरिक जिज्ञासा, आश्चर्य तथा आत्मानुभूति भर देती है। किसी समय आदिम मनुष्य को जब ऐसी अनुभूतियॉ हुई होंगी तब उसने सोचा होगा कि क्यों न हम अधिक से अधिक वैसा ही आनन्द अनेक बार प्राप्त करते रहें। क्यों न हमेशा के लिए शाश्वत आनन्द प्राप्त कर लें। इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में उसे संयोगवशात् अनुभवजन्य तरीकों से, प्रार्थना की अधिक से अधिक उपयोगिता दिखलाई पड़ी। कालान्तर में बुद्धिमान मनुष्यों ने अनेक प्रकार की प्रार्थनाओं का निर्माण और प्रचलन प्रसार किया। वैसे साधारण मनुष्य 1. खतरे से बचाव की इच्छा से, 2. मृत्यु के भय से, 3. असुरक्षा की भावना पर विजय पाने की इच्छा से, 4. बौद्धिक जिज्ञासावश, 5. अपनी क्षमताओं की सीमाओं पर विजय पाने के उद्धेश्य से, प्रार्थना की ओर आकृष्ट होता है।

प्रार्थना की क्रिया में स्वयं सूचना की स्वाभाविक प्रक्रिया होती है, क्योंकि हम विशालतम तथा उच्चतम शक्ति की कामना करते हैं तथा इस प्रकार स्वयं में विशालता तथा उच्चतम शक्ति का अनुभव करने लगते हैं। परिणामतः स्वाभाविक रूप से स्वयं में उत्तरोत्तर परिवर्तन होने लगता है। ये सुपरिणाम सामने आने के कारण हम प्रार्थना की ओर अधिक से अधिक आकर्षित, प्रेरित होते रहते हैं।

प्रार्थना की मनोवैज्ञानिक विधि – प्रार्थना की तन्मयता में इतनी एकाग्रता होनी अनिवार्य है कि संशय की विरोधी भावनाएँ तनिक भी न उठें। विरोधी भावनाओं के न उठने से अन्तःकरण की अचेतन वृत्तियॉ प्रार्थना की सूचनाओं को भली–भांति ग्रहण कर लेती है और फिर हमारे जीवन का स्वाभाविक अंग बनकर प्रकट होती हैं। जितनी बार मन को शिथिल कर नेत्र मूँद सब विरोधी विचारों को हटाकर हम प्रार्थना पर चित्त को एकाग्र करेंगे, उतनी ही बार परमात्मा के परम पावन संस्पर्श से रोम–रोम में पवित्रता का संचार होगा। ऐसे ही ढंग से रोगी स्वास्थ्य की प्रार्थना करके रोग मुक्त तथा स्वस्था हो सकता है। बलपूर्वक, चेतन, विरोधी तर्क–वितर्कों के विपरीत अपनी किसी इष्ट भावना का अन्तर ही अचेतन व्यक्तियों द्वारा ग्रहण कराना, इसलिए सफल होता है कि जरा सी बेखबरी में चेतन मन पुनः सतर्कता से अपना काम करने लगता है।

प्रार्थना करना सभी जानते हैं किन्तु उचित एवं शास्त्रीय ढंग से बहुत अल्प संख्या में लोग जानते हैं। शब्दों को सपाटे से तोते की तरह दुहरा जाना प्रार्थना नहीं, यह तो एक प्रकार का अभिनय है, प्रार्थना तो आत्म विश्वास से सिंचित होनी चाहिए, **'विश्वासः फलदायकः'**। आपके शब्दों में जितनी श्रद्धा होगी, विश्वास से जितनी सराबोर होगी शक्तिमान परब्रह्म सत्ता से उतना ही आपका तादात्म्य स्थापित हो सकेगा। अन्तर से प्रेरित सच्ची प्रार्थना एक स्वसंकेत की ऐसी पद्धति है जिससे हम स्वयं अपने गुप्त मन से अपनी ही शक्ति का महासागर खोलते हैं।

3.8 प्रार्थना चिकित्सा :–

आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि के वचन हैं–

''अच्युतान्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।''

अर्थात परमात्मा के नामों का उच्चारण करने से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, अपने भी रोग तथा उनके भी जिनके आरोग्य के लिये हम प्रार्थना करें। देवर्षि नारद के प्रति भगवान् का वचन है–

''नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।''

अर्थात भक्तों द्वारा जहाँ प्रेम से भजन गाये जाते हैं वहाँ भगवान निश्चित रूप से रहते हैं और जहाँ सामुदायिक भजन श्रद्धावान भक्तों द्वारा हो वहाँ तो ईश्वर का रहना लाजमी है। फिर जहाँ स्वयं भगवान हों, वहाँ रोग–शोक कैसा? प्रार्थना के चमत्कारिक परिणामों से चिकित्सक, अन्वेषक एंव वैज्ञानिक भी अभिभूत हैं। इससे न केवल जीवन की जटिल समस्याएँ हल होती हैं अपितु रोग–शोक भी ठीक होते हैं। प्रार्थना में इतनी प्रबल शक्ति और सामर्थ्य है कि इससे गंभीर एवं गंभीरतर रोगों से भी मुक्ति मिल सकती है। ''प्रार्थना द्वारा हम आध्यात्मिक रक्षा कवच धरण कर लेते हैं। प्रार्थना से हमारे अंदर आध्यात्मिक शक्तियों का प्रवाह फूट पड़ता है। इस प्रवाह के कारण ही हमारी चिंता रोग, शोक, व्याधि नष्ट हो जाते हैं।'' ये सब मात्र कल्पना नहीं अपितु आजमाए हुए तथ्य हैं।

देवी देवताओं से शारीरिक रोगों का कारण जानकर निदान करने वाले को पश्चिमी देशों में 'आस्था चिकित्सक' या 'फेथहीलर' कहा जाता है। वैसे जो दैवी चिकित्सा के सिद्धान्त से परिचित हैं वे इसका वैज्ञानिक विवेचन कुछ इस प्रकार से करते हैं कि रोगमुक्त जीवन का कारण जीवनी शक्ति या प्राण शक्ति की प्रचुरता है। जब शरीर में अथवा किसी अंग विशेष में इस प्राणक्षमता या जीवनी शक्ति का ह्रास होने लगता है तो उस व्यक्ति में प्रतिरोधक क्षमता कम होने लगती है और वह रोगी हो जाता है। योगी, तपस्वी एवं आध्यात्मवेत्ता अपनी यौगिक एवं आध्यात्मिक प्रक्रियाओं द्वारा प्राणशक्ति का प्रचुर संग्रह करते हैं। प्राणशक्ति की इस प्रचण्ड बौछार से विरोधी शक्तियाँ व रोग पैदा करने वाले जीवाणु–विषाणु निस्तेज हो जाते हैं और व्यक्ति को सर्वथा नयी चेतना का अनुदान मिलता है। मुरझाया जीवन कुसुम खाद–पानी मिलने से खिलने, महकने लगता है।

चिकित्सकों ने इसे जानने परखने के लिये डरहम में एक रिसर्च की। इसमें 250 रोगियों को लिया गया। ये सभी हृदय के गंभीर रोग से पीड़ित थे। इन सभी की एंजियोप्लास्टिक होनी थी। चिकित्सकों ने पाया कि उपचार के दौरान जिनके लिये प्रार्थना की गई, ऑपरेशन के समय उन्हें ज्यादा परेशानी नहीं हुई व ऑपरेशन सफल भी रहा। इसी प्रकार का प्रयोग 'अमेरिकन हार्ट जनरल' में किया गया। यहाँ प्रार्थना के इस चमत्कारिक प्रभाव का विस्तार से उल्लेख हुआ। प्रार्थना के प्रभाव को जानने के लिए डरहम के ड्यूक यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर में 150 रोगियों को चुना गया। इन्हें पाँच समूहों में बाँट दिया गया। इनमें से चार समूहों को सामान्य उपचार के साथ पूरक उपचार दिया गया। एक समूह को गाइडेड इमेजरी, दूसरे को स्ट्रेस रिलक्सेशन, तीसरे को हीलिंग टच तथा चौथे समूह के लिये प्रार्थना की गई। पाँचवां ग्रुप कंटोल ग्रुप था अर्थात् इसको न कोई पूरक उपचार दिया गया और न ही प्रार्थना की गई। शोध के पश्चात् इसका भी निष्कर्ष वही निकला। जिस ग्रुप के लिये प्रार्थन की गई वह अपने सभी समूहों की अपेक्षा अधिक अच्छा था। इस ग्रुप के रोगियों का आपरेशन भी सफल रहा और वे जल्दी स्वस्थ हो गए।

व्यक्तिगत व सामूहिक प्रार्थनाओं की इस प्रकार की अनेकानेक घटनाएँ देखने–सुनने में आती है। मानसिक रोगों के विषय में तो यह बात और भी अधिक सत्य है। 'आधुनिक मानव

आत्मा की खोज में' नामक अपनी पुस्तक में सुप्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक डॉक्टर कार्ल जुंग लिखते हैं–''पिछले तीस वर्षों में संसार के समस्त सभ्य देशों के मरीजों को सलाह देने का मौका मुझे मिला है। मैंने सैकड़ों रोगियों की चिकित्सा की है। मेरे प्रत्येक मरीज की समस्या अंत में जाकर यही निकली कि उसको जीवन के प्रति एक धार्मिक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी।'' इसी प्रकार जर्मनी के एक विख्यात मनोवैज्ञानिक का कथन है कि संसार के सभी डॉक्टर मिलकर जितने रोगों को हटाते है।, उससे अधिक रोगों को संसार का धर्म हटाता है।

''दूसरी शक्तियों की तरह आध्यात्मिक शक्ति भी मनुष्य की सेवा के लिये है। सदियों से थोड़ी बहुत सफलता के साथ शारीरिक रोगों को ठीक करने के लिये उसका उपयोग होता रहा है।'' ये शब्द महात्मा गांधी के हैं। रोग मुक्त करने की यह विद्या स्पष्टतया मूल रूप में भारतीय विद्या है। भाव रहता है कि ईश्वर की महाशक्ति जिसे वैश्वप्राण भी कह सकते हैं, रोगी के शरीर को पूर्णतया रोग मुक्त कर रही है और वह स्वस्थ–सबल हो रहा है। यह भावना जितनी गहरी होती जाती है, प्रभाव भी उतने ही स्पष्ट होने लगते हैं।

सामान्य भाषा में मान सकते हैं कि जहॉ मनुष्य की अपनी शक्ति चूक जाती है, जब बाहर से कोई आशा की किरण नहीं दिखाई देती, ऐसे अंधकार भरे क्षणों में ईवरीय हस्तक्षेप असम्भव को भी सम्भव बना देता है। असाध्य रोग को ठीक कर देता है व जर्जर काया में भी नए प्राण फूंक देता है। प्रार्थना द्वारा हम उस ऊर्जा शक्ति एवं जीवन के आदि स्तोत्र से जुड़ जाते हैं व उसकी कृपा को चमत्कार के रूप में अनुभव करते हैं। प्रभु ईसा कहते हैं–''प्रभु की कृपा हो तो एक लम्बा तगड़ा ऊंट भी सुई के छेद से गुजर सकता है।'' फिर हम सांसारिक प्राणियों के रोग व्याधि का उसके द्वारा हरा जाना आश्चर्य नहीं है, आवश्यकता है तो हमारी प्रबल शुद्ध भावनाओं व अटल विश्वास की।

अतः वास्तव में प्रार्थना से लाभ चमत्कार की अपेक्षा भगवान की कृपा समझा जाना चाहिये, वह परमात्मा जो आनंदमय और प्रेमस्वरूप है। मन में पूर्ण श्रद्धा एवं अखण्ड विश्वास का उदय भगवान से की गई प्रार्थना से नष्ट हो जाती है। बड़े–बड़े चिकित्सक असफल हो जाते हैं पर प्रार्थना का अस्त्र अपना काम करता ही है। डॉ लोवो ने स्पष्ट किया है कि प्रार्थना एक दिव्य औषधि है, महान उपचार है, इसे सभी को अपनाना चाहिए।

वर्तमान में धीरे–धीरे आधुनिक मनोविज्ञानी, चिकित्सक, वैज्ञानिक व युवा पीढी भी प्रार्थना के सत्य को स्वीकार करने लगे हैं। प्राचीन समय में तो इसे स्वीकारता ही था। सब कुछ हमारी अपनी आस्था पर निर्भर है, वैसे समय चाहे प्राचीन हो या वर्तमान, संसाधन व मानव बुद्धि कितनी ही विकसित हो गई हो परन्तु सबकी एक निश्चित सीमा है, वह सीमा जहॉ समाप्त होती है, वहॉ असीम खड़ा है। मानव को उसकी शरण में जाने पर ही समाधन मिलते हैं। उसी की सहायता से शारीरिक व आंतरिक समाधन मिलते हैं। अतः आने वाला समय 'फेथ हीलिंग' या 'आस्था चिकित्सा' को चिकित्सा जगत में विशेष स्थान दिलवा दे तो कोई घटना असम्भव नहीं मानी जानी चाहिये। युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने विज्ञान व आध्यात्म के मिलन का संकेत दिया है। वे कहते हैं कि जब विज्ञान और आध्यात्म का समन्वय होगा तभी हम आधुनिक युग की समस्याओं से छुटकारा पा सकेंगे।

आचार्य श्री द्वारा स्थापित संस्था 'ब्रह्मवर्चस्व शोध संस्थान' धर्म व विज्ञान के समन्वय की अदभुत प्रयोगशाला है। मंत्र, जप, यज्ञ आदि द्वारा मानव शरीर पर होने वाले सकारात्मक परिणामों की प्रामाणिकता यहॉ सिद्ध की जाती है। चिकित्सा क्षेत्र में ये सभी प्रयोग एक आश्चर्यजनक क्रान्ति ला रहे हैं जिसका कि प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में परिलक्षित हो रहा है।

हमारे प्राचीन ऋषि मुनि सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक और वैज्ञानिक थे। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त व नियम इतने वैज्ञानिक थे कि आज का विज्ञान शून्य प्रतीत होता है। उन्होंने विज्ञान व चिकित्सा को धर्म से जोड़ा था। यही धार्मिक आस्था से पूर्ण वैज्ञानिकता व 'आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति' प्रार्थना आदि के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति में अपनी प्रकाशित आभा को बिखराएगी। इसके प्रकाश से संसार प्रकाशित व ऊर्जावान और स्वस्थ व मन वाला होगा।

3.9 प्रार्थना का दैनिक जीवन में महत्त्व

प्रार्थना मनुष्य जीवन का ध्रुव तारा है। उसे नितान्त आवश्यक नित्य कर्मों में भी सबसे आवश्यक समझा जाना चाहिए और शरीर निर्वाह के अन्य कार्यों की उपेक्षा करके भी प्रार्थना को प्रमुखता देनी चाहिए। भोजन न मिलने से शरीर को ही भूखा रहना पडेगा, पर प्रार्थना का अभाव रहने से तो आत्मा की प्रगति ही रूक जाएगी। हम शरीर नहीं आत्मा है। इसलिए शरीर की उपेक्षा करके भी आत्मा की आवश्यकताओं को प्रमुखता मिलनी चाहिए। शरीर की शुद्धि के लिए स्नान और वस्त्रों की सफाई के लिए साबुन जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक उपयोगिता आत्मिक शुद्धि के लिए प्रार्थना की है। उसमें न तो आलस्य करना चाहिए और न प्रमाद। प्रार्थना की उपेक्षा जीवन के सर्वोत्कृष्ट स्वार्थ का तिरस्कार करने जैसी भूल है। इस भूल के लिए जितना पश्चाताप करना होता है उतना और किसी के लिए नहीं।

निरंतर देखा जाता है कि जब किसी व्यक्ति या राष्ट्र पर कोई आपत्ति आ जाती है तो वे तत्परता से ईश्वर से आपत्ति दूर करने के लिये प्रार्थनाएँ करते है। युद्ध आदि के समय मन्दिरों, मस्जिदों व गिरजाघरों व गुरुद्वारों में सामूहिक प्रार्थना होने लगती हैं, घण्टे, घड़ियाल और घण्टियॉ बजने लगती हैं, अजानें, नमाजें और ग्रन्थों की पाठ–ध्वनि होने लगती हैं। लोग अनुष्ठानों के लिए पंडितों, पुजारियों को नियुक्त करते हैं। इस बात से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आज भी लोग प्रार्थनाओं के महत्व को समझते हैं और उनमें विश्वास करते हैं, परन्तु उन पर कायम नहीं रह पाते, यदि ऐसा हो तो इतनी समस्याएँ ही उत्पन्न न हों। संत कबीर का दोहा–

''दुःख में सुमिरन सक करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को हाये।।''

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि यदि आज के धनधारी, सत्ताधारी, वैज्ञानिक राजनीतिज्ञ आदि अपना काम करते हुए नित्य कुछ समय प्रभु की प्रार्थना का भी कार्यक्रम बना लें तो आज के यह सारे विनाश साधन स्वतः निर्माण साधनों में बदल जाएं। उनके जीवन का प्रवाह अनायास ही स्वयं की ओर से परमार्थ की ओर चलेगा। किन्तु उनमें यह परिवर्तन लाने के लिये अधिकाधिक लोगों को प्रार्थनायें करनी चाहिये और अपनी प्रार्थनाओं में इन लोगों को सद्बुद्धि मिलने का भाव हो।

आज जनमानस आधुनिकता और भौतिकता की अंधी दौड़ दौड़ते–दौड़ते अत्यन्त श्रांत–क्लांत हो चुका है। उसकी चाहनाओं व विकृत चिंतन के विपरीत उसकी शुद्ध अन्तर्रात्मा व्याकुल हो उसे अशांत कर रही है। उसे शांति चाहिए साधन नहीं आनंद चाहिए सुख नहीं। परमात्मा की प्रार्थना एक ऐसा साधन है जिससे एक स्थायी शान्ति सहज रूप में संसार में लाई जा सकती है। ईश्वर की प्रार्थना से मनुष्य में सद्भावनाओं का विकास होता है, इसी से संसार में शांति आ सकती है।

प्रार्थना एक विज्ञान है जिसमें मनुष्य को बदल देने की शक्ति होती है। साधारण व्यवहार में जब विनम्रता सफलता का कारण बनती है तो ईश्वर को लक्ष्य बनाकर जो विनय की जावेगी उसकी शक्ति के व्यापक प्रभाव का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। जब एक व्यक्ति प्रार्थना करेगा तो उससे वातावरण में जो प्रभाव पड़ेगा उससे अन्य व्यक्ति प्रभावित होकर प्रार्थना करने के लिये उत्सुक होंगे तब अन्यों से अन्य, इस प्रकार एक दिन समस्त संसार का वातावरण प्रभावित हो उठेगा। आज जब एक राष्ट्र दूसरे का अनुकरण कर रहा है तो यदि एक देश में नियमित रूप से सामूहिक प्रार्थनाओं का कार्यक्रम बनाया जाये तो दूसरे राष्ट्र अनुकरण करेंगे। परन्तु इसका प्रारम्भ व्यक्ति विशेष को ही करना होगा।

प्रार्थना का हमारे दैनिक जीवन में नित्य आवश्यक कार्यों की भांति स्थान रहना चाहिये। जिस प्रकार स्नान, भोजन आदि को भुलाया नहीं जाता उसी प्रकार प्रार्थना को भी विस्मृत न किया जाए। आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाली इस पुण्य प्रक्रिया को दैनिक जीवन की एक आवश्यक क्रिया मानकर उसे नित्य–प्रतिदिन निष्ठापूर्वक करते रहना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि प्रार्थना का महत्व समझाने और उसे दैनिक जीवन में स्थान देने के लिये एक जन–जागृति अभियान चलाया जाय। इससे आस्तिक, ईश्वर भक्त और प्रार्थना की शक्ति से सम्पन्न भारत न केवल अपने कल्याण की शक्ति सामर्थ्य को प्राप्त कर अपनी खोई हुई गरिमा पुनः प्राप्त करेगा अपितु उससे समस्त विश्व का भी कल्याण होगा। प्रेम, सद्भाव, शांति, नीति और भक्ति की पताका विश्व में फहरेगी।

अतः हमें स्वीकार करना होगा कि परमात्मा अपने सम्पूर्ण ज्ञान, अनंत सामर्थ्य के साथ नित्य हमारे साथ है, उसे महसूस करने की आवश्यकता है। आतुर पुकार के साथ ही उनके साथ हमारे ह्रदय का संयोग स्थापित हो जाता है और उनकी शक्ति हमारी आवश्यकता पूर्ण करने के लिये प्रकट हो जाती है। प्रार्थी, जो परमात्मा का अंश है वह प्रार्थना के द्वारा उसी की ओर अग्रसर होता है और इसी कारण प्रार्थना से अनेक चमत्कार देखने को मिलते हैं।

मानव की बुद्धि, उसकी शक्ति, सामर्थ्य सीमित है। हम उतना ही सोच–समझ पाते हैं जितना हमें सामने दिखता है। आधुनिक युग ने चाहे जानकारी आदि के लिये नाना प्रकार के संसाधन तो विकसित कर लिये हैं फिर भी कर्मफलादि जैसी योजनाओं का वह मूल्यांकन नहीं कर सकता। ईश्वर मानव के कर्मों के आधार पर उसे सुख–दुःखादि देता है जहाँ दुःख का माध्यम रोग भी हो सकता है। रोगी के लिये जब समस्त भौतिक, आधुनिक व प्राचीन औषधियाँ व चिकित्सा असफल हो जाती है तब वह परम चिकित्सक परमात्मा की शरण में प्रार्थना के माध्यम से जाता है। प्रत्येक असाध्य चिकित्सा का एकमात्र चिकित्सक परमात्मा अथवा उसके द्वारा नियोजित महापुरुष या सद्गुरु ही हो सकते हैं।

संसार और जीवन की विभीषिकाओं से मनुष्य अपनी 'स्व' शक्ति पर अपने आपको निरीह, असहाय अनुभव करता है। किन्तु जब वह ईश्वर की व्यापक शक्तिशाली सत्ता से अपने आपको जुड़ा हुआ पाता है तो उसके द्वन्द्व स्वतः ही तिरोहित हो जाते हैं। ईश्वर का संसर्ग पाकर स्वशक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि द्वन्द्व उसके लिए द्वन्द्व नहीं रहते। कठिनाई, क्लेश, परेशानियों में भी मनुष्य सन्तुलित होकर आगे बढ़ता रहता है। ईश्वर पर दृढ़ आस्था और विश्वास मनुष्य को सन्तुलन और शक्ति प्रदान करता है।

ईश्वर के विश्वास के साथ ही प्रार्थना धर्म की दूसरी देन है। प्रार्थना से मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। सभी का एक ही उद्देश्य है, संसार के बाह्य जीवन से कुछ क्षणों के लिए विश्राम लेना, उत्तेजना, संघर्ष, अशान्ति, क्लेश आदि से कुछ समय उपराम लेकर अन्तर्मुखी बनना। असीम अनन्त के साथ एकाकार होकर आत्म–निदान

करके या आत्मानुभूति प्राप्त करके मानसिक सन्तुलन, आत्म प्रसाद, मानसिक दृढता–शक्ति कराना प्रार्थना का मूल उद्देश्य है।

आज के युग में तो मानव जीवन की दौड़–भाग, संघर्ष आदि और भी अधिक बढ़ गये हैं। प्रार्थना के समय मनुष्य यदि प्रयत्नपूर्वक संसार से अपने आपको कुछ देर के लिए समेटकर एक सत्ता में केन्द्रित हो जाए तो उसे सहज ही उपराम मिले और उसका समस्त मानसिक स्नायुविक तनाव दूर होकर पर्याप्त विश्राम मिलता रहे। प्रार्थना एक रूप में संसार की ओर से मानसिक शिथिलीकरण का आध्यात्मिक उपाय है जिससे मानसिक मन के साथ–साथ शरीर को भी काफी आराम मिलता है।

नदी की भयंकर लहरों में पड़े हुए मनुष्य को कुछ क्षणों के लिए यदि किनारे पर लाकर सुरक्षा की छाया में बैठा दिया जाए, तो उसे कितना परितोष, आनन्द, आराम मिलेगा इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ठीक इसी तरह संसार सागर की विभीषिकाओं संघर्षों से विरत हो मनुष्य कुछ क्षणों के लिए प्रार्थना के द्वीप पर असीम अनन्त प्रभु की छत्र–छाया में बैठकर उसकी अनुभूति करे तो वह सहज ही जीवन की क्लान्ति को दूर करके अधिक सक्षम हो जाए।संसार की ज्वालाओं में दग्ध उसका मानस पुनः हरा–भरा हो जाए। उसे सर्वत्र सौन्दर्य शान्ति के दर्शन हो फिर से नई ताजगी, नई शक्ति सहज पाकर संसार में उतर कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकता है। प्रार्थना मानव का अन्तर बाह्य सभी तरह से काया–कल्प कर सकती है।

प्रार्थना से मनुष्य निराशावादी, हीन दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है। उसे सर्वत्र, शान्ति सौन्दर्य, भवन–माधुर्य के दर्शन होते हैं। संसार की विभीषिकाएँ गौण हो जाती हैं। उत्तेजनायें शान्त हो जाती हैं। प्रार्थना आन्तरिक और बाह्य जीवन में सन्तुलन व्यवस्था पैदा करती है। एकदम बाह्य जगत में खो जाना, यदि दुःख–द्वन्द्वों से लिपटना तो एक दम आन्तरिक जगत में रहना भी धरती और संसार के कर्त्तव्यों से दूर हटना है। योगी की अर्धोन्मीलित दृष्टि की तरह आधी से संसार और आधी से अन्तर देखर जीवन में समता, सन्तुलन व्यवस्था प्राप्त करना ही आध्यात्मिकता का सरल अर्थ है। प्रार्थना इसका एक महत्वपूर्ण उपाय है।

प्रार्थना आत्म–विश्लेषण का एक वैज्ञानिक तरीका है जिसके अन्तर्गत मनुष्य संसार स्वयं और ईश्वरीय सत्ता के सम्बन्ध में अपने विचारों को सुलझा सकता है। सूक्ष्म तथ्यों का समाधान कर सकता है।

प्रार्थना केवल पूजा अर्चना का विषय नहीं अपितु परमात्मा को विराट चेतना के पास जोड़ने की प्रक्रिया है। ईश्वर के कृपा बरसाने का तरीका निराला है। विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं– ''परमात्मा ने हमें बुद्धि, विवेक व आदर्श दिया है ताकि हम समस्याओं का सामना कर सकें। वह कायरों की उंगली नहीं पकड़ता वरन् उन्हें विपत्तियों को अकेले भुगतने के लिये धकेल देता है ताकि वे निर्भयता व स्वावलम्बन के साथ जीना सीखें। '' ईश्वर सर्वश्रेष्ठ शिक्षक, सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक, सर्वश्रेष्ठ पथ प्रदर्शक है और प्रार्थना वह सशक्त कड़ी है जो हमें इस सर्वश्रेष्ठ सत्ता से जोड़ने का माध्यम बनती है।

प्रार्थना का हमारे दैनिक जीवन में नित्य के आवश्यक कार्यों की तरह स्थान रहना चाहिए। जिस प्रकार स्नान, भोजन आदि को भुलाया नहीं जाता उसी प्रकार प्रार्थना को भी भुलाया न जाय। आत्मा को परमात्मा से मिलान वाली इस पुण्य प्रक्रिया को दैनिक जीवन की एक आवश्यक क्रिया मानकर उसे नित्य प्रति निष्ठापूर्वक करते रहना चाहिए।

3.10 प्रार्थना मे असफलता के कारण :–

प्रार्थना का अर्थ भिक्षा मांगना नहीं है। कुछ व्यक्ति बिना परिश्रम , अध्यवसाय, कठिनाइयों के केवल मुफ्त का माल उड़ाने के लिए प्रार्थना करते हैं या यों ही ख्याली पुलाव पकाया करते हैं। प्रायः ऐसी प्रार्थनाएँ निष्फल जाती है। ये व्यक्ति शायद समझ लेते हैं कि ईश्वर रोने, गिड़गिड़ाने, भिक्षुक वृत्ति धारण कर हाथ पसारने से मनचाही वस्तुएँ देते हैं। अधिकांश साधकों की प्रार्थनाएँ भिक्षुक जैसी मनोदशा पर अवलम्बित रहती हैं। दूसरे शब्दों में जिस प्रकार भिन्न–भिन्न कारणों से सामर्थ्यविहिन व्यक्ति एक अदृष्ट और अज्ञात रूप सामर्थ्य सत्ता से भौतिक सुख साधन माँगा करते हैं, उसी प्रकार अधिकांश आध्यात्मिक सज्जन भी कुछ अस्पष्ट सी अभौतिक सिद्धि मांगा करते हैं। यह मनोदशा द्वार–द्वार फिरने वाले भोजन भिक्षुक की अन्तर्दशा से कुछ ही अंशों में उच्च है। यह कथन है तो कठिन, पर है सत्य। इस दुर्दशा का कारण है अन्धगतानुगति।

ऐसे भिखमंगे प्रार्थी यह नहीं सोचते कि ईश्वर किसी की गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने या भिक्षा मांगने की ओर ध्यान नहीं देता। ईश्वर तो न्यायकारी है। उसके सहस्रों नेत्र है। वह प्रत्येक प्रार्थना को सुनता है, किन्तु साधक के प्रयत्न, योग्यता, अध्यवसाय तथा जागरूकता के अनुसार फल देता है। ईश्वर स्वयं कर्मरत है। उसे आलसियों प्रमादियों, मन के मोदक खाने वाले ढपोलशंखों की थोथी कल्पनाओं के लिए समय नहीं है। उसके दरबार में तो कर्म फल के अनुसार ही मिलने का सुनिश्चित विधान है। वह अधिकारी तथा अनाधिकारी पात्रों को उनकी योग्यतानुसार ही उपहार देते हैं।

हमारी प्रार्थनाएँ क्यों नहीं पूर्ण होतीं। इस विषय पर जार्ज–ई कारपेन्टर साहब लिखते हैं कि या तो (1) प्रार्थना करने वाला उन वस्तुओं के पाने का अधिकारी ही नहीं है। वह पुरुषार्थी, पराक्रमी या जागरूक नहीं है अथवा (2) वह अज्ञानवश जो कुछ मांग रहा है, उससे उसकी कुछ हानि होने की सम्भावना है। जैसे कोई मनुष्य किसी धनवान से जाकर दस हजार रूपये मांगे तो वह धनवान उससे पूछेगा कि तुमने मेरा कौन सा कार्य सम्पन्न किया है कि तुम्हें दस हजार दिया जाय। यही प्रश्न भगवान के सम्बन्ध में लागू होता है। वह आपसे पूछते हैं – महोदय! आप यह मांग तो पेश करते हैं पर आपने ऐसा कौन सा महत्वपूर्ण कार्य किया है कि यह मांग पूरी की जाय। आपने कौन सा तप, त्याग या आत्म–बलिदान किया है कि जिसके बदले में तुम्हारी कामना की पूर्ति की जाय। प्रार्थना की पूर्ति केवल मनसूबे से , मनगढन्त बातें बना लेने से ही नहीं हो जाती प्रत्युत प्रार्थना की पूर्ति में प्रत्यन्न, योग्यता, पात्र का अधिकार तथा जागरूकता भी अनिवार्य है।

कारपेन्टर साहब की दूसरी राय भी कुछ तथ्यपूर्ण है। अज्ञानवश जो कुछ हम मांगते हैं सम्भव है उनसे हानि निकले। दूरदर्शी परमात्मा सब कुछ सोच समझकर देते हैं। मान लीजिए एक नौ वर्ष का बालक अपने धनाढ्य पिता से एक तेज चलने वाली कार मांगता है या मोटर मांगता है। पिता जानता है कि पुत्र! तुम थोडें बड़े हो जाओ तब इन वस्तुओं से खेलना। भगवान जानते हैं कि यदि वे प्रत्येक उचित–अनुचित मांग को यों ही बिना सोचे समझे, दयार्द्र होकर पूर्ण कर दें तो सम्भव है उससे दूसरों की हानि हो। अतः हमारी अज्ञानता के कारण हमारी अनेक प्रार्थनाएँ पूर्ण नहीं होतीं।

एक तत्व और है, प्रार्थना का बल–विश्वास एवं श्रद्धा है। अपने ईष्ट पर जिसका जितना कम या अधिक विश्वास होता है उसी के परिणाम में उसकी प्रार्थना का परिणाम होता है।

जो प्रार्थना प्रयत्न रहित हो, केवल मन के किले बनाने के लिए तथा बिना परिश्रम मुक्त के माल की तरह एक ही झटके में, बटन दबाने भर से सब कुछ मिल जाने की कल्पना उत्साहित कर, वह प्रार्थना का त्रुटिपूर्ण रूप है। ऐसे थोथे ख्याली पुलाव कभी पूर्ण नहीं होते। ऐसे दाता– याचक वाली नाजायज माँगे प्रायः निष्फल चली जाती हैं। ईश्वर किसी के गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने या भिक्षा मांगने की ओर ध्यान नहीं देता। वह स्वयं कर्म रत है। कर्म के फलानुसार ही कुछ मिलने का उसके साम्राज्य में सुनिश्चित विधान है। उसके संसार में कठोर नियन्त्रण तथा पूर्ण व्यवस्था है। सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य नियमबद्ध रूप से चलाने वाला परमात्मा स्वयं भी नियम रूप है।

अभ्यास प्रश्न – ग

1 मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रार्थना एक प्रकार का है। –
क. 'आत्मसूचना' ख. आत्म प्रेम

2 प्रार्थना का मनोवैज्ञानिक आधार है। –
क. जागृत मन ख. गुप्त मन

3 प्रार्थना से मनुष्य निराशावादी, किसमें परिवर्तन हो जाता है। है –
क. नजरिया ख. हीन दृष्टिकोण

3.11 सारांश –

प्रार्थना हमारे पुरुषार्थ को प्रदीप्त करती है। परमात्मा उसी की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करता है। भिक्षुकों का यहाँ भी अपमान है और परमात्मा के दरबार में कहा भी है –

माँगन मरन समान है, मत कोई मांगो भीख।
माँगन से मरना भला, यह सत्गुरु की सीख।।

मांगने वाली प्रार्थना के विरोधी सबसे अधिक बौद्ध हुए हैं। बुद्ध भगवान कर्मयोगी थे और कर्मयोगी भी ऐसे कि जगत भर में एक। हमें पुरुषार्थ पूर्ण प्रार्थना करनी चाहिए। मजदूरों को उनके परिश्रम के अनुसार यहाँ इस दुनियाँ में भी मिलता है और परमात्मा भी उन्हें देने को सदैव प्रस्तुत रहता है। हमारी प्रार्थनाएँ पुरुषार्थ का एक प्रधान अंग होनी चाहिए, भिक्षा का अंग नहीं। प्रयत्न पूर्ण सकाम प्रार्थना भी निष्फल नहीं जाती, प्रत्युत इनका इसलोक एवं परलोक में सर्वत्र सन्तोषजनक परिणाम मिलता है। प्रार्थना वास्तव में मानसिक संस्कारों को क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत करने का, कर्म–मार्ग में प्रवृत्त होने का एक नाम है। इसी में ज्ञान है, इसी में अभ्यास है, इसी में पूजा है, इसी में पाठ है। यह प्रार्थना है हिन्दु धर्म का सच्चा स्वरूप ।

3.12 शब्दावली

ब्रह्ममुहुर्त – प्रातः सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व व एक घण्टा बाद तक का समय।
आत्म–जागरण – अपने स्व स्वरूप की पहचान ।
'शरणागति' – सब कुछ छोड़कर प्रभुशरण में आ जाना।
मनोविकारों – एक प्रकार का मानसिक रोग, मन की क्षुब्ध अवस्था।
वान्छां कल्पतरु – मनोनुकूल फल प्रदान करने वाला।

3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. 'अरदास' 2. प्रातःकाल
अभ्यास प्रश्न – ख	1. आध्यात्मिक 2. चित्तशुद्धि तथा प्राणशुद्धि 3.भक्तियोग
अभ्यास प्रश्न – ग	1. 'आत्मसूचना' 2. गुप्त मन 3. हीन दृष्टिकोण

3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ –

उपासना समर्पण योग (वाङमय) – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
योग और मानसिक स्वास्थ्य – प्रो. आर.एस. भोगल
अखण्ड ज्योति पत्रिका – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1 विभिन्न धर्मों में प्रार्थना का स्वरूप क्या है ? प्रार्थना के लिए उपयुक्त समय पर विस्तार पूर्वक प्राकाश डालिए ?
2 प्रार्थना आवश्यकता एवं लाभ का सविस्तार वर्णन करें ?
3 प्रार्थना के वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों को स्पष्ट करें ?
4 दैनिक जीवन में प्रार्थना एवं प्रार्थना चिकित्सा के महत्व का वर्णन कीजिए ?

इकाई – 4 मन्त्रयोग की अवधारणाएँ एवं मंत्र चिकित्सा की विधियॉ

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मन्त्र का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप
4.3.1 मन्त्र का अर्थ
4.3.2 मन्त्र की परिभाषा
4.3.3 मन्त्र का स्वरूप
4.4 मन्त्र स्वरुप महिमा
4.5 मन्त्रयोग
4.6 मन्त्रों का वर्गीकरण
4.6.1 गुणानुसार मन्त्र के भेद
4.6.2 शास्त्रीय पद्धतियों के अनुसार
4.6.3 लिंगभेदानुसार
4.6.4 अक्षरसंख्यानुसार
4.6.5 सिद्धि–प्रदानुसार
4.7 मन्त्र–विनियोग
4.7.1 ऋषि
4.7.2 छन्द
4.7.3 देवता
4.7.4 बीज
4.7.5 तत्त्व
4.8 मन्त्र शक्ति विकास के आधार
4.9 मन्त्र साधना के मूल तत्त्व व अंग
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मन्त्र ध्वनि प्रधान साधना है। मन्त्रों की रचना का मूल आधार ध्वनि है। इसमें ध्वनि विज्ञान के गूढ़ और सूक्ष्मतम सिद्धान्त निहित है इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि ईश्वर (संसार की सर्वोच्च सत्ता) का अव्यक्त रूप ध्वनि है। ध्वनि अव्यव्य नाद 'ब्रह्म' है अर्थात् मन्त्र ही ब्रह्म है। मन्त्र वह वर्ण–समूह है, जिसके विधिवत् निरन्तर उच्चारण (जप) से उसके ध्वनि

प्रभाव द्वारा आध्यात्मिक शक्ति अर्जित की जाती है। मन्त्र के अर्थ को समझने के लिए कहा जा सकता है कि 'मन्त्र' वह है, जिसमें मानसिक एकाग्रता एवं निष्ठा का समुचित समावेश हो। परिष्कृत व्यक्तित्त्व की परिमार्जित वाणी से जिसकी साधना की जाय। जिसकी रहस्यमय क्षमता पर गहन श्रद्धा हो तथा जिसका अनावश्यक विज्ञापन न करके गोपनीय रखा जाये'' इस प्रकार मन्त्र शक्ति का विकास होता है।

प्रस्तुत इकाई में मन्त्र के अर्थ एवं विभिन्न धर्म ग्रन्थों के परिभाषाओं से परिचित होंगे। मन्त्र के बृहद् स्वरूप का अवलोकन होगा तथा मन्त्र के तात्त्विक विश्लेषण पर प्रकाश डाला जाएगा। जिसमें मन्त्र का निर्माण करने वाले पृथक्–पृथक् तत्त्वों का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें उम्मींद है कि मन्त्र के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको मन्त्र के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपकी इन जिज्ञासाओं की पूर्ति होगी –

- मन्त्र के शाब्दिक व गूढ़ अर्थो का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
- मन्त्र के विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न धर्म ग्रन्थों में मन्त्र के स्वरूपों से रूबरू हो सकेंगे।
- मन्त्र के तात्त्विक अंगों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे

4.3 मन्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

'मननात् त्रायते इति मन्त्रः', मनन पूर्वक मन्त्र का अभिधान किया जाता है, जिसके द्वारा जीव बन्धन से मुक्ति, स्वर्ग का आनन्द, मोक्ष तथा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष) की प्राप्ति करता है। मानसिक प्रक्रिया के द्वारा ग्रहण किये जाने के कारण मन्त्र की संज्ञा व्यहृत होती है। मन्त्र पद 'मन्' के प्रथम अंश से तथा 'त्र' त्राण व बन्धन से मुक्ति का अर्थ में ग्रहण किया जाता है। **मननात् त्राणधर्मासौ मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः।** 'मन' और 'त्र' का समन्वित रूप ही मन्त्र है। मन्त्र मनन त्राण स्वरूप होते हैं।

मृत्युंजय भट्टारक ने कहा है –

मोचयन्ति च संसाराद्योजयन्ति परे शिवे।
मननत्राणधर्मित्वात्तेन मन्त्रा इति स्मृताः ।। नेत्र तन्त्रम्

मन्त्र का 'म' शब्द – संसार से उन्मोचन, शिव से योजन, एवं 'त्र' शब्द –मनन करने से त्राण करने का विधायक है। अतः इसे मन्त्र कहा गया है। वेदों में मन्त्र को सर्वोच्च सत्ताएवं उन्हें ब्रह्म माना है। आचार्य आपस्तम्ब कहते हैं **'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनाम धेयम्'** है।

4.3.1 मन्त्र का अर्थ – मन्त्र शब्द मन् धातु से षट्रन् (ष्ट्न) प्रत्यय लगाकर बना है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ होता है – **मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मन्त्रः** अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का आदेश, निजानुभव जाना जाये वह मन्त्र है। दूसरी तरह से तमादिगणीय मन् धातु से ष्ट्र न प्रत्यय लगाकर मन्त्र शब्द बनता है। इसकी व्युत्पत्ति के अनुसार **मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मन्त्रः** अर्थात् जिसके द्वारा आत्मप्रदेश पर विचार किया जाये, वह मन्त्र है। तीसरे प्रकार से सम्मानार्थक मन् धातु में ष्ट्न् प्रत्यय करने पर मन्त्र शब्द बनता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार – **मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिताः आत्मानः वा**

यक्षादिशासनदेवता अनेन इति मन्त्रः अर्थात जिसके द्वारा परमपद में स्थित प×च उच्च आत्माओं का अथवा यक्षादिशासन देवों का सत्कार किया जाये वह मन्त्र है।
मन्त्रों के रूप में परमेश्वर ही प्रस्फुटित होता है। **वाग्वै मन्त्रः** शब्द को ब्रह्म कहा गया है और परिष्कृत वाणी से उच्चारित शब्द श्रृंखला को **मन्त्र**। इस तथ्य को लक्ष्य में रखकर ही कहा गया है कि वस्तुतः उच्चारण किये जाने वाले **शब्द,** मन्त्र नहीं है। मन्त्रों की जीवभूत अव्यय शक्ति ही मन्त्रपद वाच्य हैं। जिससे रहित मन्त्र शरदकाल के मेघ के सदृश निष्फल हो जाते हैं। यह अव्ययशक्ति स्वहृदयैक संवेद्य विमर्शशक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कहते हैं मन्त्र वर्णात्मक नहीं, वे न तो पंचवदन और न दशभुज शरीरधारी ही है। विश्व विकल्प ही पूर्वकोटि में जो नाद का उ□ास है वही मन्त्र है। शबर स्वामी अपने भाष्य में लिखते हैं मन्त्र वैशिष्ट्य क्या है? जो शब्द राशि अलौकिक अर्ध प्रतीत कराती हो, जो नियम स्वर तथा वर्णक्रम वैशिष्ट्य से मुक्त हो और जिसे 'गुरुमुख' से सुनने के पश्चात शिष्य उच्चारण करता हो वे शब्द समूह ही मन्त्र की श्रेणी में आते हैं।
मन्त्र ध्वनि प्रधान साधना है। मन्त्रों की रचना का मूल आधार ध्वनि है। इसमें ध्वनि विज्ञान के गूढ़ और सूक्ष्मतम सिद्धान्त निहित है इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि ईश्वर (संसार की सर्वोच्च सत्ता) का अव्यक्त रूप ध्वनि है। ध्वनि अव्यव्य नाद 'ब्रह्म' है अर्थात् मन्त्र ही ब्रह्म है। मन्त्र वह वर्ण–समूह है, जिसके विधिवत् निरन्तर उच्चारण (जप) से उसके ध्वनि प्रभाव द्वारा आध्यात्मिक शक्ति अर्जित की जाती है।

4.3.2 मन्त्र की परिभाषा – मन्त्र ध्वनि प्रधान साधना है। मन्त्रों की रचना का मूल आधार ध्वनि है। इसमें ध्वनि विज्ञान के गूढ़ और सूक्ष्मतम सिद्धान्त निहित है इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि ईश्वर (संसार की सर्वोच्च सत्ता) का अव्यक्त रूप ध्वनि है। ध्वनि अव्यव्य नाद 'ब्रह्म' है अर्थात् मन्त्र ही ब्रह्म है। मन्त्र वह वर्ण–समूह है, जिसके विधिवत् निरन्तर उच्चारण (जप) से उसके ध्वनि प्रभाव द्वारा आध्यात्मिक शक्ति अर्जित की जाती है। मन्त्र वह वर्ण समूह है, जिसके विधिवत् निरन्तर उच्चारण (जप) से उसके ध्वनि प्रभाव द्वारा आध्यात्मिक शक्ति अर्जित की जाती है। आचार्य श्री ने मन्त्र उसे कहा है, जिसमें मानसिक एकाग्रता एवं निष्ठा का समुचित समावेश हो। परिष्कृत व्यक्तित्त्व की परिमार्जित वाणी से जिसकी साधना की जाय। जिसकी रहस्यमय क्षमता पर गहन श्रद्धा हो तथा जिसका अनावश्यक विज्ञापन न करके गोपनीय रखा जाये'' इस प्रकार मन्त्र शक्ति का विकास होता है। मन्त्र से जगत् की उत्पत्ति होती है। मन्त्र को जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार तीनों का अधिष्ठान कहा जाता है। प्रत्येक मन्त्र की दो शक्तियाँ होती हैं। वाच्य शक्ति, वाचक शक्ति। प्रतिपाद्य देवता वाच्य शक्ति है और मन्त्रमयी देवता जो मन्त्र के स्वरूप का है वाचक शक्ति है, साधना के द्वारा जब मन्त्र के रूप में शक्ति का जागरण होता है। तब वह शक्ति अद्वैत सत्य का द्वार खोलती है।
सौभाग्यभास्करकार ने कहा है–

पूर्णाहन्तानुसन्धानस्य स्फूर्जन् मनन धर्मतः।
संसारक्षयकृत त्राण धर्मतो मन्त्र उच्यते।।

अर्थात पूर्णाहन्ता अथवा परावागात्मक अनुभूति ही मन्त्र है। अर्थात जो समूचा अस्तित्त्व को अनुसंधान में लगाकर तत्पर कर दे, जिसके मनन धर्म के पालन से आन्तरिक शक्ति का जागरण हो, तथा जो संसार का क्षय करने वाले और 'त्राण' जिसका धर्म है। वही मन्त्र है। तात्पर्य यह हुआ कि जिसका जप अथवा चिन्तन करने से अपनी अहंता के साथ अनुसन्धान

हो अर्थात् अपने अन्तर्मन पर प्रभाव हो और उसके द्वारा आत्मा में स्फूरण होने लगे तथा जिसका अंतिम परिणाम संसार का क्षय अर्थात् जन्मन्मरण के बन्धनों से मुक्ति हो वही मन्त्र है। इसी प्रकार पिंगलायत तन्त्राकार ने मन्त्र के महिमा का वर्णन किया है –

मननात् विश्व विज्ञान त्राणं संसार बन्धनम्।
यत् करोति संसिद्धिः मन्त्रः इत्युच्यते ततः।।

अर्थात्– जिसके मनन मात्र से समूची सृष्टि का ज्ञान हो अर्थात् अपने सम्पूर्ण अस्तित्व का ज्ञान हो और त्राण अर्थात् संसार के बन्धनों से मुक्ति। इन दोनों कार्यों को उत्तम प्रकार से सिद्ध करने के कारण अर्थात् जिसका मनन करने से संसार का यथार्थ स्वरूप विदित हो, भव बन्धनों से मुक्ति मिले, जो सफलता के मार्ग पर अग्रसर करें उसे मन्त्र कहते हैं। मन, मनन और भावनायें समस्त जगत का त्राण करने वाली शक्ति का नाम मन्त्र है, जो शिवत्व का बोध कराती है। वह मूल में एक होते हुए भी प्रयोग में अनेक हो जाती है। मन्त्र की शक्ति एवं स्वरूप की व्याख्या करने पर यही कहा जा सकता है कि मन्त्र नाशरहित है मन्त्र नित्य है, विभु है, सूर्य व्यापक है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है और सब भूतों की योनि है जहाँ वाणी नहीं जा सकती वहाँ मन्त्र जाता है।

मननात् त्राणनाच्यैव मद्रूपस्यावबोधनात्।
मन्त्र इत्युच्यते सम्यक् मद्धिषनतः प्रिये।। रुद्रयामल तन्त्र

मन, मनन और भावनायें समस्त जगत का त्राण करने वाली शक्ति का नाम मन्त्र है, जो शिवत्व का बोध कराती है। वह मूल में एक होते हुए भी प्रयोग में अनेक हो जाती है।

सामान्यतया वर्ण समुदाय विशेष ही मन्त्र हैं। मन्त्र वर्णों की दृष्टि से बहुत ही छोटा होता है, किन्तु उससे ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि सब देवता वश में हो जाते हैं। जैसे महामत्त गजराज को छोटा सा अंकुश वश में कर लेता है। अतः स्पष्ट है कि मन्त्र अंकुश के समान परमशक्ति से युक्त होता है। विविध शक्तियों के पुंज रूप वर्णों से निर्मित होने के कारण मन्त्र अचिन्त्य शक्तिशाली है। इसमें सन्देह नहीं। माया शक्ति अतर्क्य और दुर्वार है और इसको भी दूर करने में समर्थ मन्त्र, माया से भी अधिक शक्ति–सम्पदा है यह प्रतिपादित हो जाता है।

मननत्राणधर्माणो मन्त्रः। मनन और त्राण – मन्त्र के ये दो धर्म हैं। पर नाद का परामर्श ही मनन है। अपूर्णता के प्रशमन को रक्षा अथवा त्राण कहते हैं। परमात्मा के तेजोमय रूप का मनन करने तथा सब प्रकार के भय से रक्षा करने के कारण मन्त्र संज्ञा का अभिधान किया जाता है। इस प्रकार शक्ति के वैभव या विकास की दशा में मनन युक्त तथा सांसारिक अवस्था में त्राणमयी विश्वरूप विकल्प को कवलित कर लेने वाली अनुभूति ही मन्त्र है।

शाक्त और तान्त्रिक सम्प्रदायों में प्रयुक्त अनेक सूक्ष्म और रहस्यमय शब्द खण्डों और अक्षरों को यथा– 'ऐं, ह्रीं, क्लीं को भी मन्त्र कहते हैं तथा विश्वास किया जाता है कि इन बीज मन्त्रों से महान शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

4.3.3 मन्त्र स्वरुप :– निरूक्तकार यास्कमुनि ने मन से स×चारित होने वाली प्रक्रिया को मन्त्र कहा है। मन का प्रयोग मनन के कारण हुआ है अर्थात् जिन वाक्य, पद अथवा वर्णों का बार–बार मनन किया जाता है और वैसा करने से जो इच्छित कार्य की पूर्ति करते है वे मन्त्र कहलाते हैं। रहस्यमय संभाषण को भी मन्त्र कहा गया है। यह रहस्य अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। **मेदिनी कोषकार** ने मन्त्र को हृदय में गुप्त रूप से उच्चारित करने

वाला बताया है। तभी वह गूढ़ ज्ञान के भेद को प्रकाशित करने वाला होता है। मन्त्र के लिए गोपन पहली शर्त है। देवताओं को प्रसन्न कर उनकी कृपा प्राप्त कराने का यह सरलतम् साधन है। व्यक्ति में छिपी हुई शक्तियों को जगाकर उन पर नियन्त्रण रखते हुए उचित उपयोग करना कराना मन्त्र का फल है।

मन्त्र के दो रूप हैं – वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक वर्णात्मक मन्त्र वे हैं, जो बोले जा सकते हैं, सुने जा सकते हैं जपे जा सकते हैं और लिखे जा सकते हैं। ध्वन्यात्मक मन्त्र ऐसे नहीं हैं। इन मन्त्रों को न तो सुना–जपा जा सकता है और न बोला–लिखा जा सकता है। ये मन्त्र ध्वनिमूलक एवं शक्ति पुज हैं, जो मूलाधार, नाभि केंद्र हृदयचक्र आदि से स्वतः निःसृत होते रहते हैं, अविराम प्रवाहित होते रहते हैं। ये नादात्मक और स्वयंभू हैं। मध्यमा, पश्यन्ती एवं परावाणी के केन्द्रों से इनका आविर्भाव होता है। इसी कारण डॉ श्यामाकान्त द्विवेदी ने **'वरिवस्यारहस्यम्'** में मन्त्र को जप करने की वस्तु नहीं वरन् होने की वस्तु माना है।

4.4 मन्त्र स्वरुप महिमा :–

वातुलशुद्धाख्य तन्त्र में मन्त्र की महत्ता और विशेषता पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि मन्त्र के द्वारा ही देवों की स्थापना होती है, मन्त्रों के द्वारा यज्ञादि क्रियाओं का निष्पादन होता है, मन्त्र द्वारा ही स्नान, आहुति, तर्पण, प्रायश्चित, दीक्षा आदि क्रियाये सम्पन्न की जाती हैं। मन्त्र के माध्यम से अनिमादिक सिद्धियाँ एवं सालोक्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त की जाती है। मन्त्रों द्वारा सारे पाप–तपों से मुक्ति उपलब्ध होती है।

मीमांसादर्शन के अनुसार मन्त्र देवता का ही स्वरुप है। जिस देवता का जो मन्त्र है, वही उसका स्वरुप है। स्थान, भेद, उद्देश्य– भेद एवं विचार धरा के भेद से एक ही देव अनेक रूपों में उपासना के योग्य माना जाता है। मन्त्र एक स्वतन्त्र वस्तु है उससे भिन्न स्वरुप कोई देव नहीं है। यही मन्त्रोपासना सगुणोपासना कही जाती है।

मन्त्र से जगत की उत्पत्ति होती है। मन्त्र से ही जगत का पालन और विनाश होता है। मन्त्र को जगत की सृष्टि, स्थिति एवं संहार तीनों का अधिषन कहा जा सकता है। मन्त्र की शक्ति से तीन लोक, चौदह भुवन, चौदह विद्याएँ, शाक्ताण्ड, मायाण्ड, प्रकृत्याण्ड, ब्रह्माण्ड आदि समस्त ––––, सात लोक, समस्त वर्णमालाएँ, सत्ताओं के समस्त अस्तित्त्व प्रकाश में आते हैं। **वातुलशुद्धाख्य तन्त्र** के अनुसार मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तंभन, आकर्षण आदि सभी क्रियाएँ मन्त्र के माध्यम से सम्पादित संचालित होती हैं। यहाँ तक कि बिना मन्त्र के कोई भी क्रिया सम्भव नहीं है।

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र (त्रिक् दर्शन) में मन्त्र को मुक्ति के साधनों का उपाय कहा गया है। शिवसूत्र में मन्त्र को सभी शक्तियों को प्राप्त करने के साधन के रूप में उल्लेख किया गया है। श्रीमत्ज्ञानोत्त तन्त्र कहा गया है कि वर्ण संगठन मात्रा मन्त्र नहीं है। इस तथ्य को वरदराज ने **'शिवसूत्र वार्त्तिक'** में स्वीकार किया है। मन्त्र के रहस्यों का उन्मोचन करने वाले पाश्चात्य योगी सर जॉन वुडरफ ने अपनी कृति 'गॉरलेण्ड ऑफ लेटर्स' में मन्त्र के बारे में उल्लेख किया है–मन्त्र शिव शक्ति और अणुस्वरूप है, वह अत्यन्त सामर्थ्यशाली है। शिव शक्ति और आत्मा, इनके समुचित रूप को ही मन्त्र की संज्ञा दी जा सकती है। जप के द्वारा वह भोग और मोक्ष देने में समर्थ होती है। उपासक ही उसकी प्रेरक शक्ति है।

वर्णों से ही मन्त्रों की रचना होती है। वर्णों और उनकी सन्निधि से शब्दों का प्रकाशन होता है जो ब्रह्मस्वरूप माने जाते हैं। जो शब्द मुह से उच्चरित होते हैं, कर्णेन्द्रिय

से सुने जाते हैं, मस्तिष्क से ग्रहण किये जाते हैं, वे सभी सर्जिका शक्ति के स्वरूप हैं। सामान्यतया मन्त्र ऐसी ध्वनियाँ हैं जो पूजा या साधना में प्रयुक्त होती हैं, जिमें कुछ विशेष वर्ण होते हैं या किन्हीं विशेष ध्वनियों में आबद्ध कुछ वर्ण होते हैं, जो प्रतीकात्मक रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक मन्त्र में दो शक्तियाँ होती हैं– 1 वाच्य शक्ति, 2–वाचक शक्ति। प्रतिपाद्य देवता वाच्य शक्ति है और मन्त्रमयी देवता जो मन्त्र के स्वरूप का है, वाचक शक्ति है। साधना के द्वारा जब मन्त्र के रूप में शक्ति का जागरण होता है। तत्त्व वह शक्ति अद्वैत सत्य का द्वार खोलती है और ब्रह्माण्ड के तत्त्व या सार की अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार मन्त्र–शक्ति, साधना–शक्ति के द्वारा जागृत होती है, जिस साधना–शक्ति को साधक साधना के द्वारा प्राप्त करता है। साधना शक्ति और मन्त्र शक्ति के साम×जस्य से ही यन्त्र–साधना का फल प्राप्त होता है।

साधना या पूजा के द्वारा सगुण–शक्ति जागृत होती है। सगुण–देवता मन्त्र का अधिष्टत्–देवता है, जिस प्रकार निर्गुण ईश्वर या ईश्वरी मन्त्र की वाच्य शक्ति है। सगुण–निर्गुण शक्ति एक ही है। किन्तु साधक या जीव अपने स्वभाव या गुणों के कारण सर्वप्रथम स्थूल स्वरूप का चिन्तन करता है और बाद में सूक्ष्म स्वरूप का अनुभव करके मुक्ति प्राप्त करता है।

सामान्यतया वर्ण समुदाय विशेष ही मन्त्र हैं। मन्त्र वर्णों की दृष्टि से बहुत ही छोटा होता है, किन्तु उससे ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि सब देवता वश में हो जाते हैं। जैसे महामत्त गजराज को छोटा सा अंकुश वश में कर लेता है। अतः स्पष्ट है कि मन्त्र अंकुश के समान परमशक्ति से युक्त होता है। विविध शक्तियों के पुंजरूप वर्णों से निर्मित होने के कारण मन्त्र अचिन्त्य शक्तिशाली है। इसमें सन्देश का अवसर नहीं। माया शक्ति अतर्क्य और दुर्वार है और इसको भी दूर करने में समर्थ मन्त्र, माया से भी अधिक शक्ति–सम्पदा है यह प्रतिपादित हो जाता है।

शिवसूत्र विमशिनी में '**चित्तं मन्त्रः**' कहकर चित्त को ही मन्त्र कहा है। चित्त जब बाह्य संस्कारों से कट कर अन्तर्मुख हो जाता है और अभेदावस्था को प्राप्त कर जब मन्त्र सम्पृक्त होता है तभी मन्त्र दिव्य बनता है और तभी उस मन्त्र में निहित देवता से साधक के चित्त का पूर्ण तादात्म्य होता है, और इस प्रकार की अवस्था हो जाने पर मन्त्र के रहस्य और उसमें निहित शक्ति हस्तामलकवत् होकर पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। यह मन्त्र, चित्त शक्ति का स्वस्वभाव है। यही गुरु वक्त्र अथवा शैवी मुख है। यह परमशिव की प्राप्ति का मुख्य द्वार है। स्पन्दशास्त्र का मत है कि मन्त्र, चित्शक्ति का आधार लेकर सर्वज्ञत्व आदि बल से समन्वत होकर अनुग्रह रूप स्वाधिकार में प्रवृत्त होते हैं।

मन्त्र की शक्ति व स्वरुप की व्याख्या करने पर यह कहा जा सकता है कि मन्त्र नाशरहित है, मन्त्र नित्य है, विभु है, सर्व व्यापक है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है और सब भूतों की योनि है जहाँ वाणी नहीं जा सकती, वहाँ मन्त्र जाता है।

4.5 मन्त्रयोग :–

'मन्त्रजपान्मनोलयो मन्त्रयोगः' अर्थात् 'अभीष्ट मन्त्र का जप करते–करते जब मन इष्टदेव के ध्यान–चिन्तन में तन्मय होकर लयभाव को प्राप्त हो जावे' अथवा **'मननात् तारयेत् यस्तु स मन्त्र परिकीतितः'** जिस इष्टदेव के मन्त्र का जप करते हुए मन से उसका स्मरण, चिन्तन तथा ध्यान किया जाता है और वह दर्शन देकर हमें भवसागर से पार कर दे तो वही 'मन्त्रयोग' है। 'सूक्ष्मशक्ति–मन्त्र के भीतर ऐसा गूढ़शक्ति छिपी है जो वाणी से प्रकाशित

नहीं की जा सकती अपितु उस शक्ति से वाणी स्वयं प्रकाशित होती है। मन्त्रशक्ति अनुभवगम्य है जो कि चर्मचक्षुओं से दृश्य सम्भव नहीं है अपितु मन्त्र से चर्म चक्षु दीप्तिमान होकर त्रिकालदर्शी हो जाते हैं।' मन्त्र, स्थूल पर नियन्त्रण और विराट् को स्फूर्तिमान रखने का अनुठा साधन है। पिण्ड में ब्रह्माण्ड को देखने की दृष्टि है तथा प्रकृति को वश में करने की सामर्थ्य है।

अभ्यास प्रश्न – क

1 नेत्रतन्त्र में मन्त्र शब्द के 'त्र' की व्याख्या किस अर्थ में की गई है ?

2 ''मन्त्र के दो धर्म कौन–कौन से हैं ? ''

3 मन्त्र की दो शक्तियाँ हैं –

क. सत्व, रज ख. वाच्य , वाचक, ग. मनन, त्राण।

4.6 मन्त्रों का वर्गीकरण

मन्त्र अनेक प्रकार के होते हैं। मन्त्रों का पहला प्रकार है मूलमन्त्र अथवा महामन्त्र। अन्य सभी प्रकार के मन्त्र इसी महामन्त्र से उत्पन्न हुए हैं। अन्य भेद निम्न हैं:–

सात्त्विक, राजस, तामस	(गुणानुसार)
वैदिक तान्त्रिक, लौकिक	(शस्त्रीपद्धति के अनुसार)
पुमन्त्र, स्त्रीमन्त्र, नपुंसकमन्त्र	(लिंग भेदानुसार)
पिण्ड, कर्तरी, बीज, माला, मन्त्र	(अक्षर संख्यानुसार)
सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, अरिमन्त्र	(सिद्धि प्रदानुसार)

4.6.1 गुणानुसार मन्त्र के भेद :–

परमार्थमूलक (सात्विक) मन्त्र :– इस श्रेणी में वे मन्त्र आते हैं जिनमें साधक की कोई सांसारिक कामना नहीं होती। साधक केवल अपने उपास्य का साक्षात्कार या मोक्ष की कामना रखता है और मन्त्र के द्वारा केवल वन्दना मात्र करता है।

जैसे – षडक्षर मन्त्र, द्वादशाक्षर मन्त्र आदि।

ऊँ नामो भगवते वासुदेवाय – भगवान वासुदेव को प्रणाम

ऊ नमः शिवाय – भगवान शिव को प्रणाम

ऊ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। – महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती रूप त्रिगुणात्मक शक्तिरूपा दुर्गा को प्रणाम। गायत्री मन्त्र आदि।

कामना मूलक (राजस) मन्त्र :– मनुष्य एक सांसारिक प्राणी है और उसकी विभिन्न कामनाएँ होती है। इन कामनओं की पूर्ति हेतु जिन मन्त्रों से उपासना की जाती है। वे कामना मूलक मन्त्र हैं। वेदों, पुराणों तथा तन्त्राशास्त्रों, बौद्ध व जैन तन्त्रों में भी इस प्रकार के मन्त्रों का ही बाहुल्य है।

जैसै : विघ्न निवारण, दीर्घायुकारक, दुःस्वप्न का कुप्रभाव नाशक, व्यवसाय में उन्नति, धन की प्राप्ति, सुखपूर्वक प्रसव, गर्भपात से रक्षा, बुद्धि में सुधार, परीक्षा में सफलता, पद लाभ, कृषि सम्पदा में वृद्धि, शत्रु पराजय, न्यायालय में विजय, अल्पमृत्यु से रक्षा, चारों

से रक्षा, दुर्घटनादि से रक्षा, पशुओं से रक्षा, रोग शान्ति आदि सैकड़ों कामनाएँ है। यह मन्त्र शान्तिक–पौष्टिक कहे जाते हैं।

अभिचार मूलक (तामस) मन्त्र :– ऐसे मन्त्र जो किसी को हानि पहुँचाने या किसी का अहित करने के उद्देश्य से किये जाते हैं। प्रायः तामसिक एवं वाममार्गी साधना में ही ऐसे मन्त्र अधिक हैं। यह प्रयोग षट्कर्म के नाम से प्रसिद्ध है।

मारण :– किसी व्यक्ति की मृत्यु की कामना से अनुष्ठान करना मारण कर्म है।

मोहन :– किसी की बुद्धि को मोहित (भ्रमित) कर उसे शारीरिक कष्ट, मानसिक कष्ट, आर्थिक कष्ट देना या उसकी भ्रमित बुद्धि से अनुचित लाभ उठाना।

वशीकरण :– किसी व्यक्ति को मन्त्र से वश में करके अनुचित लाभ उठाना, किसी स्त्री को वश में कर व्यभिचार करना आदि।

स्तम्भन :– किसी वस्तु को रोकने के हेतु मन्त्र का प्रयोग जैसे शत्रु सेना को रोकना, बादलों को रोकना, चोर डाकू, शत्रु आदि को रोकना इत्यादि।

उच्चाटन :– मन्त्र शक्ति द्वारा किसी की मानसिक व मस्तिष्क की शान्ति कम करना। विक्षिप्त करना।

आकर्षण :– मन्त्र शक्ति द्वारा किसी वस्तु या व्यक्ति का आव्हान, अर्थात ऐसी क्रिया जिससे व्यक्ति स्वयं खिंचता चला जाये।

विद्वेषण :– परस्पर द्वेष उत्पन्न करना। मन्त्र के द्वारा किन्हीं दो व्यक्तियों, मित्रों, स्त्री–पुरूष, पुत्र–पिता आदि में शत्रुता का भाव उत्पन्न करा देना।

जम्भन :– भय उत्पन्न कर किसी की वस्तु छीन लेना, हरण कर लेना, भयभीत करना। वैसे तो यह षट्कर्म तामसीक तथा निंद्य है। लेकिन कभी–कभी इनका उपयोग समाज के हित में भी होता है। जैसे किसी कारणवश परिवार में मतभेद एवं वैमनस्य हो तो वशीकरण द्वारा शांति एवं सुखमय वातावरण की स्थापना, अथवा क्रोध में या किसी कारणवश कोई व्यक्ति कहीं चला गया हो (बिना सूचना के) तो उसे वापस बुलाने में आकर्षण मन्त्र का प्रयोग। अतिवर्षा आदि के समय बादलों का स्तम्भन। सूखा पड़ने पर बादलों का आकर्षण आदि। क्योंकि पूजा और उपासना भावना प्रधान है। तद्नुसार उसका फल भी है। अतः यदि जनहित की भावना से षट्कर्मों का प्रयोग करना पड़े तो वह तामिसिक उपासना होते हुए भी निन्दित नहीं कही जायेगी।

4.6.2 शास्त्रीय पद्धतियों के अनुसार

1 वैदिक एवं पौराणिक : वे मन्त्र जो वेदों एवं पुराणों में उपलब्ध है। भगवान मनु ने वेदोक्त मन्त्रों को ही श्रेष्ट माना है। जैसे ''अग्निमिळे पुरोहितं''

2. तान्त्रिक मन्त्रः वे मन्त्र जो विभिन्न आगम ग्रन्थों में (तन्त्र शास्त्रों) वर्णित है। उदा. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चामुण्डाय नमः स्वाहा'

3. लौकिक मन्त्र : इसमें वे मन्त्र है जो सामान्य लोकभाषा में प्रचलित है। इनमें शाबर मन्त्र, गुरु गोरखनाथी व अन्यान्य मन्त्र समाज में प्रचलित है।

साबर–डामर मन्त्र–साबर मन्त्रों की चर्चा प्रायः की जाती है। सुप्रसिद्ध तन्त्रों में **योगिनी जालशम्बरम्** नामक एक ग्रन्थ था। सम्भव है शम्बर का ही अपभ्रंश रूप साबर हो। साबर मन्त्रों का शास्त्रीय रूप क्या था, नहीं कहा जा सकता। विख्यात सन्त तुलसीदास जी ने

रामचरितमानस में इनके उमा महेश्वर द्वारा रचे जाने का उल्लेख किया है और साथ ही यह भी कहा है कि यद्यपि इन मन्त्रों के अक्षर बेमेल और अर्थहीन होते हैं फिर भी इनका प्रभाव देखा जाता है।

शाबर मन्त्र– नेत्रपीड़ा निवारण हेतु :– नीचे लिखे हुए मन्त्र की काली चौदस को शमशान में जाकर माला जपें और मन्त्र सिद्धि करके आँख के दर्द की आँख पर नीम की डाली से बार मन्त्र बोलते हुए झाड़ दें– रोग दूर होगा

नमो राम का धनुष लक्ष्मण का बाण।
आँख दर्द करे तो लक्ष्मण कुमार की आन।।

डामर मन्त्र तत्काल सिद्धि प्रदान करते हैं। किन्तु उनका फल स्थायी नहीं होता। ये मन्त्र केवल चमत्कार दिखाने के काम आते हैं।

4.6.3 लिंगभेदानुसार

लिंगभेदानुसार मन्त्रों को तीन भागों में बाँटा गया हैः–

1 पुंमन्त्र (पुरुषमन्त्र) 2 स्त्री मन्त्र 3 नपुंसक मन्त्र।

पुंमन्त्र उन्हें कहते हैं जिनका देवता पुरुष होता है। पुरुष देवता के मन्त्र सौर होते हैं और स्त्री देवता से सम्बन्ध रखने वाले सौम्य। जिन मन्त्रों का देवता स्त्री होता है उन्हें विद्या कहते हैं। सामान्यतया तो सभी को मन्त्र ही कहा जाता है। शारदातिलक तन्त्र में, जिन मन्त्रों के अन्त में हुं और फट् रहता है, उन्हें पुंमन्त्र और ठः अर्थात् स्वाहा से जिस मन्त्रा की समाप्ति होती है, उसे स्त्री मन्त्र। इसके अतिरिक्त नमः से समाप्त होने वाले मन्त्र को नपुंसक मन्त्र कहा है। प्रयोगसार का मत इससे कुछ भिन्न है। जहाँ वषट् और फट् से समाप्त होने वाले मन्त्रों को पुरूष, वोषट् और स्वाहा से स्त्री तथा हुं, नमः से समाप्त होने वालों को नपुंसक कहा गया है।

वशीकरण, उच्चाटन एवं स्तम्भन में पुरूष मन्त्र, क्षुद्रकर्म एवं रोग विनाश, शान्ति में स्त्री मन्त्र और अभिचार प्रयोग में नपुंसक मन्त्र शीघ्र सिद्धिदायक कहे गये हैं। अग्निषोमात्मक मन्त्र क्रूर तथा सौम्य कर्मों में प्रयोग किये जाने का विधान मन्त्र शास्त्रों में वर्णित है।

4.6.4 अक्षरसंख्यानुसार

श्रीभास्करराय ने अक्षर भेद के अनुसार मन्त्रों के पाँच प्रकार बताये हैं। जिन मन्त्रों में केवल एक ही अक्षर होता है, उसे पिण्ड मन्त्र कहते हैं, दो अक्षर वाले कर्तरी कहलाते हैं। तीन वर्णों से लेकर नौ वर्णों तक बीज मन्त्र, और दश से बीस वर्ण पर्यन्त मन्त्र के ही नाम से कहे जाते हैं। इससे 2 पर संख्या वालों को 'माला' मन्त्र कहते हैं। इसी प्रकार मन्त्रमहोदधिकार ने भी दश अक्षर पर्यन्त मन्त्र को 'बीज मन्त्र' से अक्षरों के मन्त्र 'मन्त्र' तथा 'बीस अक्षरों से अधिक मन्त्रों को 'माला मन्त्र' की संज्ञा प्रदान की है।

इसके सिद्धि के विषय में ग्रन्थकार ने कहा है कि उपासक को बाल्यावस्था में 'बीजमन्त्र' सिद्ध होते हैं। युवावस्था में 'मन्त्र–मन्त्र' सिद्ध होते हैं तथा वृद्धावस्था में 'मालामन्त्र' सिद्ध होते हैं उक्त अवस्थाओं से भिन्न अवस्थाओं में अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए साधक को तत्तद् बीज मन्त्रादि मन्त्रों का द्विगुणित जप करने का विधान बताया है।

4.6.5 सिद्धि–प्रदानुसारः

उत्तरयामल तन्त्र में कहा गया कि सिद्ध मन्त्र बान्धव के समान होता है जो कि समय से सिद्ध हो जाता है। सिद्ध कोष्ठक में रहने वाले सभी वर्ण बान्धव कहे जाते हैं, जो सारी कामनाओं की पूर्ति करते हैं। उसके जप मात्र से सिद्धि लाभ होता है। 'साध्य–मन्त्र' को

सेवक कहा गया है। ये मन्त्र जप, होम से सिद्ध हो जाता है। सेवक वर्ण बहुत सेवा से सिद्धि प्रदान करता है।

सुसिद्ध मन्त्र दीक्षा मात्रा ग्रहण करने से ज्ञान करा देता है। ये वर्ण पोषक हैं, अभिष्ट हैं और साधक का पोषण करता है, किन्तु अरिमन्त्र साधक साधक का आयुष्य समाप्त कर देता है। ये वर्ण घातक है। निश्चित ही वह साधक का नाश कर देते हैं।

4.7 मन्त्र–विनियोग

विनियोग का अर्थ है 'कर्त्तव्य'। किस मन्त्र से किस शक्ति को किस आधार पर जगाया जाये। इसका संकेत हर मन्त्र के साथ जुड़े हुए विनियोग में बतालाया जाता है। मन्त्रों की उत्पत्ति कर्त्तव्य कर्म के लिए ही हुई है जिस मन्त्र से जो कार्य कर्तव्य हो, उस मन्त्र का वह विनियोग होता है। वैदिक और तान्त्रिक सभी मन्त्रों का विनियोग होता है। जैसे **'जपे विनियोगः', न्यासे विनियोगः, पाठे विनियोगः'** अथवा धर्म, अर्थ, काम मोक्ष रूप कार्यों में शास्त्रीय रीति से सिद्ध मन्त्रों की योजना करने का नाम विनियोग है। जप तो मूल मन्त्र का ही किया जाता है, पर उसे आरम्भ करते समय विनियोग को पढ़ लेना अथवा स्मरण कर लेना अर्थात् उसके ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोग की आवश्यकता होती है। इससे मन्त्र के स्वरूप और लक्ष्य के प्रति साधना काल में जागरुकता बनी रहती है और कदम सही दिशा में बढ़ता रहता है। इसके बिना मन्त्र फलवान नहीं होता।

दबी हुई प्रसुप्त क्षमता को प्रखर करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। यन्त्रों को चलाने के लिए ईंधन चाहिए। हाथ या पैर से चलने वाले यन्त्रों के लिए न सही उन्हें चलाने वाले हाथ पैरों को काम करते रहने के लिए उर्जा की जरूरत रहती है। यह ताप मान जुटाने पर ही यन्त्र काम करते हैं। मन्त्रों की सफलता भी इसी उर्जा उत्पादन पर निर्भर है। साधना विधान का सारा कलेवर इसी आधार पर खड़ा किया गया है। आयुर्वेद में भी नाड़ी शोधन के लिए वमन, विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, बस्ति यह पंच कर्म शरीर शोधन के लिए है। मन्त्र साधन में व्यक्तित्त्व के परिष्कार के अतिरिक्त पाँच आधार – ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्त्व है। जो इन सब साधनों को जुटाकर मन्त्र साधन कर सके, उसे अभीष्ट प्रयोजन की प्राप्ति होकर ही रहती है।

मन्त्र विनियोग के पाँच अंग हैंः–

1 ऋषि 2 छनद 3 देवता 4 बीज 5 तत्त्व।

इन्हीं से मिलकर मन्त्र शक्ति सर्वांगपूर्ण बनती है। पंच तत्त्वों के सम्मिश्रण से विभिन्न शरीर और पदार्थ बनते हैं। इसी प्रकार विनियोग के पाँच अंग उसे प्रत्यक्ष और सजीव बनाने वाले आधार माने जाते हैं। हमारे शरीर की पाँच परते हैं। इन्हें आवरण या कोश भी कहते हैं। प्याज के भीतर जिस तरह परतें होती हैं, हमारी अन्तःचेतना में भी वैसी ही है। उन्हें अन्नमय कोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमय कोश,. आनन्दमय कोश कहते हैं। इन्हें पाँच शक्ति भण्डार भी कह सकते हैं। पृथ्वी पर जैसे पाँच महाद्वीप हैं उसी प्रकार चेतना सत्ता को स्थूल एवं सूक्ष्म प्रकृति की मनुष्य काया में इन पाँच माध्यमों से देखा समझा जा सकता है। मन्त्र विनियोग के पाँचों अंग इन पाँचों आधारों को प्रस्फूरित, प्रदीप्त एवं प्रयुक्त कैसे किया जाये इसका पथ प्रदर्शन करते हैं।

4.7.1 ऋषि :– मन्त्रों का अन्वेषक, अनुसन्धानकर्ता, मार्गदर्शक गुरु। जो मन्त्र (फार्मूला, सूत्र) को स्वयं (चेतना में) अनुभव करता है फिर अन्यों पर प्रयोग करता है और स्वयं के जीवन को रूपान्तरित करता है। अर्थात् ऋषि याने मन्त्र साधना से रूपान्तरण, बदलाव की

विधा देने वाले अन्वेषक। ऐसा व्यक्ति जिसने उक्त विद्या में पारंगता प्राप्त की हो। '**ऋषयो मन्त्राद्रष्टारः',** अर्थात् ऋषि वही है जिसने मन्त्र की साधना की गहराई को अनुभव और उपलब्धियों को हस्तगत किया। ऋषि तत्त्व का संकेत है – मार्ग दर्शक गुरु। ऐसा व्यक्ति जिसने उस मन्त्र में पारंगतता प्राप्त की हो। सर्जरी, संगीत जैसे क्रिया–कलाप, अनुभवी शिक्षक ही सिखा सकता है। पुस्तकीय ज्ञान से नौकायन नहीं सीखा जा सकता। इसके लिए किसी महान गुरु का प्रत्यक्ष पथ प्रदर्शन चाहिए। चिकित्सा ग्रन्थ और औषधि भण्डार उपलब्ध रहने पर भी चिकित्सक की आवश्यकता रहती है। विभिन्न मनोभूमियों के कारण साधना पथिकों के मार्ग में भी कई प्रकार के उतार–चढ़ाव आते हैं। उस स्थिति में सही निर्देशन और उलझनों का समाधान केवल वही कर सकता है जो उस विषय में पारंगत हो। गुरु का यह कर्तव्य भी हो जाता है कि शिष्य का न केवल पथ प्रदर्शन करें वरन् उसे अपनी शक्ति का एक अंश अनुदान देकर प्रगति पथ को सरल भी बनाये। अस्तु, ऋषि का आश्रय मन्त्र साधना का प्रथम सीढ़ी बताई गई है।

4.7.2 छन्द : छन्द शब्दों की लयबद्धता को कहते हैं। यहाँ पर छन्द का तात्पर्य हमारी उच्चारण शैली, शब्द संस्वर से है। छन्द शास्त्र को पिंगलशास्त्र भी कहा जाता है। छन्द का अर्थ है– लय अर्थात् किस स्वर में, किस क्रम से, किस उतार–चढ़ाव के साथ मन्त्राोच्चार किया जाये। सितार में तार तो उतने ही होते हैं, उंगलियाँ चलाने का क्रम भी हर वादन में चलता है पर बजाने वाले का कौशल तारों पर आघात करने के क्रम में हेर–फेर करके विभिन्न राग–रागनियों का ध्वनि प्रवाह उत्पन्न करता है। भारतीय ऋषियो ने मन्त्र के आरोह एवं अवरोह को ध्यान में रखते हुए उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि अनेक 'स्वरों' के प्रयोग की व्यवस्थाएँ दी हैं। मन्त्रों के मूल में एक लय है, विविध ध्वनियों के नानाविध उच्चारण, क्रम की विशिष्ट शैली है। प्रायः कवि सम्मेलनों में देखा या सुना जाता है कि एक हास्य रस या करूण रस का कवि जिस कविता को बोलकर श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर हंसने व आंसू बहाने के लिए मजबूर कर देता है, उसी कविता को सामान्यजन पढ़ें तो शायद उतना प्रभावित नहीं कर पायेंगे। इसका मूल कारण उस कविता को एक विशिष्ट लय व शैली के साथ अभ्यासपूर्वक बोलना ही तो है यह एक लौकिक उदाहरण है परन्तु वैदिक मन्त्रों की स्वर साधना के लिए काफी अध्ययन, परिश्रम व अभ्यास की आवश्यकता होती है।

वैदिक ऋषि कहते हैं – जो वेदपाठी विद्वान वेदों को पढ़कर उसके लय व अर्थ को नहीं जानता वह उस 'स्थान' (गदहे) के समान है जो चन्दन के भार को ढोता हुआ भी उसके उपयोग से वंचित है। अर्थ को न जानकर पुस्तक पड़ने वाला व्यक्ति केवल व्यर्थ ही काम करता है क्योंकि वह वेदवाणी को देखता हुआ भी नहीं देख पाता और इस पवित्र वाणी को सुनता हुआ भी (अर्थग्रहण के अभाव में) नहीं सुनता। निरुक्तकार यास्क कहते हैं – 'वैदिक मन्त्रों की उच्चारण शुद्धता उसके अर्थज्ञान पर निर्भर है तथा वेद में अर्थज्ञान का आधार स्तम्भ है, स्वरज्ञान। व्याकरणाचार्य पाणिनी कहते हैं – जिसे वैदिक स्वरों का ज्ञान नहीं उसे संहिता (मन्त्र) पाठ करने का कोई अधिकार नहीं।'

4.7.3 देवता :– देवता का अर्थ है 'चेतना सागर में से अपने अभीष्ट शक्ति प्रवाह का चयन'। आकाश में एक ही समय में अनेक रेडियो स्टेशन बोलते रहते हैं पर हर एक की फ्रीक्वेंसी अलग होती है। ऐसा न होता तो ब्राड काष्ट किये गये सभी शब्द मिलकर एक हो जाते। शब्द धाराओं की पृथकता और उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के पृथक माध्यमों का

उपयोग करके ही किसी रेडियो सेट के लिए यह संभव होता है कि अपनी पसन्द का रेडियो प्रोग्राम सुने और अन्यत्र में चल रहे प्रोग्रामों को बोलने से रोक दें। निखिल ब्रह्माण्ड में ब्रह्म चेतना की अनेक धाराएँ समुद्री लहरों की तरह अपना पृथक अस्तित्त्व को लेकर भी चलती है। भूमि एक ही होने पर भी उसमें परतें अलग–अलग तरह की निकलती है। समुद्रीय अगाध जल में पानी की परतें तथा असीम आकाश में वायु से लेकर किरणों तक की अनेक परतें होती हैं। इसी प्रकार ब्रह्म चेतना के अनेक प्रयोजनों के लिए उद्भूत अनेक शक्ति तरंगे निखिल ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होती रहती है। उनके स्वरूप और प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए ही उन्हें 'देवता' कहा जाता है। साकार उपासना पक्ष इनकी अलंकारिक प्रतिमा भी बना लेता है और निराकार पक्ष प्रकाश किरणों के रूप में उसको पकड़ता है।

सूर्य की सात रंग की किरणों में से हम जिसे चाहे उसे रंगीन शीशे के माध्यम से उपलब्ध कर सकते हैं। एक्सरे–मशीन अल्ट्रा वायलेट उपकरण आकाश में से अपनी अभीष्ट किरणों को ही प्रयुक्त करते हैं। हंस दूध पीता है पानी छोड़ देता है। इसी प्रकार किस मन्त्र के लिए ब्रह्म चेतना की किस दिव्य तरंग का प्रयोग किया जाये, इसके लिए निर्धारित स्थापन, पूजन, स्तवन, क्रियाएं इसी प्रयोजन के लिए होती है। निराकारी साधक ध्यान द्वारा उस शक्ति को अपने अंग प्रत्यंगों में तथा समीपवर्ती वातावरण में ओतप्रोत होने की भावना करते हैं। किसके लिए देव सम्पर्क का क्या तरीका ठीक रहेगा यह निश्चय करके ही मन्त्र साधक को प्रगति पथ पर अग्रसर होना होता है।

4.7.4 बीज :– बीज का अर्थ है उद्गम। मानवीय कलेवर में विभिन्न शक्तियों के लिए विभिन्न स्थान निर्धारित हैं। षट्चक्रों, उपत्तिकाओं, सहस्र शक्ति नाड़ियों का निर्धारित स्थान है। उन स्थानों को शक्ति सम्पर्क के 'स्विच बोर्ड' कह सकते हैं। स्विच दबाने पर बत्ती जलने लगती है उसी प्रकार किस मन्त्र के देवता का शरीर में सम्पर्क स्थान कहाँ हैं और उसे किस विधि से प्रभावित किया जाये, ये सब बीज मन्त्र का कार्य है। इसी जानकारी को 'बीज विज्ञान' कहते हैं।

उदाहरण :– ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं, हुं, यं, बं, रं, लं आदि बीज अक्षर भी जिन्हें किसी मन्त्र में अतिरिक्त शक्ति भरने का 'सूक्ष्म इन्जेक्शन' कह सकते हैं। आवश्यकतानुसार मन्त्रों के साथ इन अतिरिक्त बीजों को भी जोड़ दिया जाता है।

टेलिफोन के डायल को घुमा कर अभीष्ट नम्बर से बातें की जा सकती हैं। बीज स्थान और बीज शक्ति का प्रयोग करके मन्त्र को समर्थ बनाने वाली ब्रह्म चेतना के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है और उसका समुचित लाभ उठाया जा सकता है।

मन्त्र का लक्ष्य है देवता, किन्तु देवता का मूल है बीज, क्योंकि देवता के शरीर का जन्म इसी बीज से होता है। बीज का अर्थ नहीं होती, बल्कि वह एक प्रक्रिया होती है, जो मानसिक क्षेत्र में शक्ति भरकर चेतना को जागृत करता है।

4.7.5 तत्त्व :– तत्त्व को मन्त्र की 'कुन्जी' कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में इसे लक्ष्य भी कहा जा सकता है। अक्सर साधना करने से पूर्व संकल्प पढ़े जाते हैं। उनमें यह प्रतिज्ञा रहती है कि इस साधना का उद्देश्य क्या है। इसके माध्यम से हमें जाना कहाँ हैं और प्राप्त करना क्या है ? स्थूल रूप से पन्च तत्त्वों, एवं तीन गुणों के रूप में भी मन्त्रों की प्रवृत्ति मिलती रहती है और उस तत्त्व के अनुरूप पूजा उपकरण करके भी तत्त्व साधना की जाती है।

देवता की प्रकृति ही तत्त्व है। कौन सी मन्त्र में किसकी प्रधानता है। इसी के आधार पर साधक का व्यक्तित्त्व बनता है। आयुर्वेद शास्त्र में वस्तुओं के स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृतियों का वर्णन है सामान्य तथ्य अन्न का स्थूल भाग रक्त मांस बनता है, सूक्ष्म भाग से बुद्धि और मनःचेतना विकसित होती है और कारण प्रभाव से अन्तरात्मा का पोषण मिलता है। योगशास्त्र में आहार का सात्विक, राजस, तामस वर्गों में वर्गीकरण किया गया है। मनुष्यों के तीन शरीर होते हैं, स्थूल, सूक्ष्म और कारण। इसी प्रकार हर वस्तु के अन्तराल में उपरोक्त प्रकृतियों की न्यूनाधिकता भरी रहती है। पेड़ों में से यज्ञ कार्य के लिए केवल वही प्रयुक्त होते हैं जिनकी सूक्ष्म और कारण शक्ति अभीष्ट प्रयोजन में सहायक होती है। इसी आधार पर यह निर्माण निर्धारण किया जाता है कि मन्त्र की किस उद्देश्य के लिए, किस स्थिति का व्यक्ति, साधना करें तो उसे आहार, वस्त्र, रहन–सहन, माला, दीपक, धूप, नैवेद्य आदि में किसी प्रकार का चयन करना चाहिए। तत्त्व निर्धारण में इन्हीं बातों का ध्यान रखा जाता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1 गुणानुसार मन्त्र के कितने प्रकार बताये गये हैं ?
2 विनियोग का अर्थ क्या है ?
3 मन्त्र की कुंजी कहा जाता है –
क. ऋषि ख. देवता, ग. तत्त्व

4.8 मन्त्र शक्ति विकास के आधार

इन तत्त्वों के अतिरिक्त मन्त्र शक्ति के विकास के चार आधार हैंः–

1 प्रामाण्य शक्ति,
2 फलप्रद (प्रदान) शक्ति
3 बहुलीकरण शक्ति,
4 आयातयामता शक्ति।

इसका विवेचना महर्षि जैमिनी ने पूर्व मीमांसा में किया है। उनके कथनानुसार–

1 प्रामाण्य शक्ति :– अर्थात मनगढ़न्त, विधि के पीछे सुनिश्चित विधि विधान होना। मन्त्रों की प्रमाण्य शक्ति वह है जिसके अनुसार शिक्षा, सम्बोधन, आदेश का समावेश रहता है। इसे शब्दों से सम्बन्धित कह सकते हैं।

2 फलप्रद शक्ति :– अर्थात् उपयुक्त प्रतिफल देखा जा सके। कुण्ड, समिधा, पात्र पीठ, आज्यचरू, हवि, पीठ आदि को अभिमंत्रित करके उनके सूक्ष्म प्राणों को प्रखर करने का विधान, मन्त्रोच्चार, कर्मकाण्ड न्यास, ऋत्विजों का मनोयोग, ब्रह्मचर्य तप, आहार आदि विधि–विधान से मन्त्र की फलदायिनी शक्ति सजग होती है। सकाम कर्मों में मन्त्र की यहीं शक्ति विभिन्न क्रिया कृत्यों के सहारे सजग होती है और अभीष्ट प्रयोजन पूरे करती है।

3 बहुलीकरण शक्ति :– अर्थात् जो व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करें या दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं, थोड़े को बहुत बनाना।

यज्ञ में होमा हुआ जरा सा पदार्थ वायुभूत होकर समस्त विश्व में फैल जाता है। पानी के उपर जरा सा तेल डाल देने से पानी की सारी सतह पर फैल जाता है। तनिक सा विष सारे शरीर में फैल जाता है। उसी प्रकार साधक का शरीर, मन्त्रोंच्चार एवं साधन में काम

आने वाले अंग, जरा से होते हैं पर उनके घर्षण से उत्पन्न शक्ति दियासलाई से निकलने वाली चिनगारी की तरह नगण्य होते हुए भी दावानल बन जाने की सामर्थ्य से ओतप्रोत रहती है। एक व्यक्ति की मन्त्र साधना अनेक व्यक्तियों को तथा पदार्थों को परमाणु जीवाणुओं को प्रभावित करती है तो वह बहुलीकरण शक्ति ही काम कर रही होती है।

4 आयातयामता शक्ति – अर्थात साधक के श्रेष्ठ व्यक्तित्त्व की क्षमता। इसमें किसी विशेष क्षमता सम्पन्न व्यक्ति द्वारा विशेष स्थान पर, विशेष व्यक्ति की सहायता से, विशेष उपकरणों के सहारे, विशेष विधि–विधान के साथ मन्त्रोपासना करने पर विशेष शक्ति उत्पन्न होती है। विश्वामित्र और परशुराम ने गायत्री मन्त्र की साधना, विशेष प्रयोजन के लिए, विशेष विधि–विधानों के साथ की थी और उससे उन्होंने अभीष्ट परिणाम भी प्राप्त किये। दशरथ जी का पुत्रोष्टि यज्ञ वशिष्ट जी पूरा न करा सके तब श्रृंगी ने उसे सम्पन्न कराया। यह श्रृंगी ऋषि की आयातयामता शक्ति ही थी। इन सारे तत्त्वों का समावेश होने से मन्त्र प्रक्रिया में दैवी शक्ति का समावेश होता है और उसका चमत्कारी प्रतिफल देखा जाता है।

4.9 मन्त्र साधना के मूल तत्त्व व अंग :–

मन्त्र साधना एक अति गहन विद्या है। प्राचीन परम्परा से चली आ रही, गुरुगम्य विषय होने के कारण इस विद्या की गूढ़ रहस्यों एवं ग्रन्थियों को जानने के लिए उनके तत्त्वों की रहस्यमयता को जानना आवश्यक है। अतः यह निश्चित है कि मन्त्र विद्या के मूल तत्त्वों का परिचय प्राप्त किये बिना इस मार्ग में प्रवेश न करना ही उत्तम है। मन्त्र शास्त्र में सर्व निर्देश है कि–'श्रद्धा, धैर्य और गुरुभक्ति। ये तीनों तत्त्व साधना–यात्रा के अनिवार्य सम्बल हैं और मन्त्र साधना प्रणाली के सहायक तत्त्व के रूप में महर्षि भारद्वाज ने मन्त्र योग संहिता में चन्द्रमा की सोलह कलाओं के समान मन्त्रयोग के 16 अंग बताये है। – 1. भक्ति, 2. शुद्धि, 3. आसन, 4. पचांगसेवन, 5. आचार, 6. धरणा, 7. दिव्य देश सेवन, 8. प्राणक्रिया, 9. मुद्रा, 10. तर्पण, 11. हवन, 12. बलि, 13. याग, 14. जप, 15. ध्यान, 16. समाधि।

1– भक्ति :– साधना जगत् में भक्तियोग भी एक अन्यतम् साधना है। भक्ति योग सबसे सरल, सुगम और सर्वजनप्रिय भी है। अद्वैतवादी आचार्य शंकर ने भक्ति साधना का महत्त्व प्रकट करते हुए कहा है–''मोक्ष कारण सामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के हेतु भूत समस्त साधनों में से भक्ति साधन ही सबसे बढ़कर है। मन्त्र योग संहिता में ईष्टदेव में परम अनुराग या परम प्रेम को भक्ति का स्वरूप प्रदान किया है। वहीं महर्षि नारद जी ने भक्ति सूत्र में परमात्मा को स्वयं परम प्रेम स्वरूप कहा है। आचार्य शंकर ने अपने स्व–स्वरूप का अनुसन्धान करने को भक्ति कहा है, अभिप्राय यह है कि भक्तियोग के द्वारा स्वरूप का अनुसन्धान यानी अन्वेषण करना और अन्त में उसी परमतत्त्व में स्थिति प्राप्त कर लेना भक्ति है। भक्ति उस भावना का नाम है जिसमें उपासक पूर्ण रूप से उपास्य ब्रह्म के भाव में भावित होकर सर्वतो भावेन तद्रूपता को ही अनुभव करता है।

2– शुद्धि :– अत्यन्त निर्मलता को '**शुद्धि**' कहते हैं। मन्त्र साधना में चार प्रकार के शुद्धियों पर बल दिया गया हैः– 1 काय शुद्धि, 2 चित्त शुद्धि, 3 दिक् शुद्धि ,4स्थान शुद्धि।

1 **काय शुद्धि** :– इसका तात्पर्य शरीर की शुद्धि से है, शरीर की शुद्धि स्नान से होती है, मल के प्रक्षालन को स्नान कहते है। यह सात प्रकार के होते है– **1. मन्त्र स्नान** – 'गंगे च

यमुने च' – इत्यादि मन्त्र से जल लेकर करने से होता है। **2. भौम स्नान** – गमछे से अंग पोछने से। **3. आग्नेय** – भस्म लगाने से। **4. वायव्य** – गो रज स्पर्श करने से। **5. दिव्य** – सूर्य दर्शन के होते हुए वर्षा में स्नान करने से। **6. वारुण्य** – जल में गोता लगाकर स्नान करने से। **7. मानस** – श्रीभगवान के रूप का मन में ध्यान करने से।

2 चित्त शुद्धि :– चित्त शुद्धि से तात्पर्य कर्माशय की शुद्धि से है। अभय, यम, नियम, ज्ञानयोग, दान, यज्ञ, आदि में सब चित्त को शुद्ध करता है।

3 दिक् शुद्धि :– दिशा का प्रभाव साधक की साधना पर पड़ता है। अलग–अलग हेतुओं के लिए अलग–अलग दिशाओं की ओर मुख करके जप करने का विधन है।

उत्तर की ओर मुख करके जप करने से शांति, पूर्व दिशा की ओर वशीकरण, दक्षिण दिशा की ओर मारण सिद्ध होता है तथा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके जप करने से धन की प्राप्ति होती है। आग्नेय कोण की तरफ मुख करके जप करने से आकर्षण, वायव्य कोण की तरफ शत्रु का नाश, नैऋत्य की तरफ दर्शन, ईशान कोण की तरफ जप करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

4 स्थान शुद्धि :– किस प्रकार के स्थान पर बैठकर साधना करनी चाहिए। ये स्थान शुद्धि के अर्न्तगत आता है। गौशाला गुरु का घर, देवमन्दिर, बगीचा, पुण्य क्षेत्र, नदी का किनारा सदा ही पवित्र कहे गये हैं। बाहर की शुद्धि से आरोग्य, आत्म प्रसाद, और ईष्ट देव की कृपा प्राप्त होती है। मन की शुद्धि से ईष्टदेव का दर्शन होता है और समाधि लाभ प्राप्त होती है।

3–आसन :– आसन शब्द 'अस्' धतु से निष्पन्न होता है जिसके दो अर्थ निकलते हैं और दोंनों ही मन्त्र साधना के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

1. जिस पर हम बैठतें हैं–उदाहरण मन्त्र सिद्धि के लिए रेशम, कम्बल, कुशा एवं मृगचर्म का आसन श्रेष्ठ होता है। भगवान् कृष्ण गीता में शुद्ध भूमि में जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हो, जो न बहुत ऊँचा हो न बहुत नीचा ऐसे स्थान पर आसन लगाकर बैठना चाहिए। काम्य प्रयोगों में–कम्बल (लाल), कृष्ण जनिन आसन–ज्ञान सिद्धि, बाघाम्बर–मोक्ष, कुशासन–दीर्घायु, रेशमी से व्याधि नाश।

2. जिस स्थिति में हम बैठते हैं–अर्थात बैठते समय हमारे शारीरिक स्थिति। गीता के अनुसार '**समं काय शिरोग्रीवं**' अर्थात काय सिर और गले एक सीध में करके साधना में बैठना चाहिए।

4– पचांग सेवन – गीता, सहस्रनाम, स्तवन, कवच एवं हृदयन्यास, ये पाँचों अंग मिलकर **पचांग** कहलाता है।

1. **गीता** – गेय– गाया जाने वाला, महत्त्व बताना।
2. **सहस्रनाम** – विराट्ता का अनुभव कराना।
3. **स्तुति** – उस विराट् को अनुभव करते हुए हृदय से जोड़ना।
4. **कवच (सुरक्षा)** – साधना से उत्पन्न विघ्नों से बचना।
5. **हृदयन्यास** – हृदय के द्वारा मन्त्र के रहस्य में प्रवेश।

5– आचार – जीवन में साधना हेतु उचित नियमों का तत्परता व दक्षता से पालन ही **'आचार'** कहलाता है। मन्त्र साधना में मुख्य रूप से तीन प्रकार के आचार माने गये हैं– वामाचार, दक्षिणाचार, दिव्याचार।वाम एवं दक्षिण आचार परस्पर एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक ही लक्ष्य पर ले जाते हैं। इनमें भेद यह है कि वामाचार प्रवृतिमूलक (जीव मात्रा का सहज गुण) तथा दक्षिणाचार निवृत्ति–मूलक है। प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर ले जाने वाले

आचार को दिव्याचार कहते हैं। सात्विक साधक के लिए दिव्याचार, राजसिक के लिए '**दक्षिणाचार**' और तामसिक के लिए '**वामाचार**' होता है। वामाचार केवल शक्ति उपासना में देखा जाता है पर वामाचार में उन्नति के बदले गिर जाने का भय है। साधक को अपने गुरु की आज्ञानुसार आचार का निर्धारण करना चाहिए तथा गुरु को शिष्य की प्रकृति, अभिरूचि एवं शक्ति का विचार कर काम्य एवं निष्काम उपासना के भेद पर ध्यान रखकर आचार का उपदेश देने का विधान है।

6– धारणा :– चित्त को एकाग्र कर किसी एक चक्र में पाँच घड़ी तक स्थिर रखने की क्रिया को 'धरणा' कहते है। पातंजल योग सूत्र में कहा गया है **देशबन्धश्चित्तस्य धरणा'** धरणा के दो प्रकार बताये गये है–बाह्य एवं आभ्यान्तर धरणा। बाह्य वस्तुओं के साथ मनोयोग होने से बहिर्धारणा एवं अन्तर्जगत् के सूक्ष्म द्रव्यों के साथ मनोयोग होने से अन्तर्धरणा बनती है।

7– दिव्य देश सेवन :– वह स्थान जहाँ सर्वव्यापी परमात्मा भी अपना सूक्ष्म रूप छोड़ कर साधक के सामने प्रकट होता है, वह स्थान 'दिव्यदेश' कहलाता है जिस प्रकार गाय के पूरे शरीर में रहने वाला दूध केवल उसके थनों से ही निकलता है। उसी प्रकार शरीर में भी सोलह दिव्य देश है जोकि वह्नि, अम्बु, लिंग, स्थण्डिल, कुण्ड, पट, मण्डल, विशिखा, नित्ययन्त्र, भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय और मूर्धा है। मन्त्र साधना में दिव्य देश सिद्धि दायक माना गया है धारणा की सहायता से दिव्य देश में ईश्वर का प्रकटीकरण होता है।

8– प्राण क्रिया :– मन्त्र शास्त्र एवं साधना ग्रन्थों में प्राणायाम या अन्य क्रियाओं द्वारा शरीर स्थित विभिन्न स्थानों पर प्राण एकत्र कर साधना करना भी '**प्राण क्रिया**' कहलाता है। प्राण क्रिया के दो अंग हैं– 1 **प्राणायाम** – प्राणतत्त्व का विस्तार।

न्यास – ईष्ट देव की स्थापना। न्यास के सामान्तया तीन भेद है :– कर न्यास, हृदय न्यास, अंग न्यास। विस्तृत पूजन या पुरश्चरण आदि में इसके अलावा अन्य अनेक प्रकार के न्यास की विधि है।

9–मुद्रा :– जिससे आन्तरिक प्रसन्नता एवं उल्लास व्यक्त हो वही मुद्रा है। 'मुद्रा' शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु धर्मिक कर्मकाण्ड के सन्दर्भ में देव–पूजा करते समय हाथ की अंगुलियों द्वारा जो सार्थक प्रदर्शन किया जाता है, उससे प्रकट होने वाली विशेष आकृतियों को 'मुद्रा' नाम से जाना जाता है।

'**मुद्रा**' शब्द का प्रथम अक्षर देवताओं की प्रसन्नता का तथा दूसरा अक्षर पापक्षय का सूचक होता है। इस प्रकार मुद्रा के प्रभाव से देवता प्रसन्न होते तथा साधक पाप रहित हो जाता है। '**मुद्रा** –प्रदर्शन' से देवता प्रसन्न होते हैं, 'मुद्रा' दिखाने वाले भक्त–साधक पर द्रवित होकर दया करते हैं। राक्षस भी 'मुद्रा' के प्रभाव से अनुकूल हो जाते है। 'मुद्रा' दिखाकर उपासक देवता के समीप पहुँच जाता है। मुद्राओं के देखने से देवता पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होते हैं 'मुद्रा–प्रदर्शन' से पूजा 'महापूजा' के स्तर को प्राप्त कर लेती है। गायत्री महाविज्ञान में 10 मुद्राओं का वर्णन है।

10 तर्पण :– तर्पण शब्द 'तृप्ति' से बना है। विशेष पदार्थ द्वारा इष्ट देव को समर्पण **तर्पण** कहलाता है। तर्पण से इष्ट देव और अन्य देवी, देवताओं की तृप्ति होती है। यह तर्पण सकाम और निष्काम भेद से दो प्रकार के होते है। सकाम तर्पण में तदद् द्रव्यों से तथा निष्काम तर्पण में केवल जल से तर्पण किया जाता है। देवता को प्रसन्न करने का प्रधानतम साधन होने के कारण तर्पण मन्त्र साधना का मुख्यतम अंग माना गया है।

मधु से तर्पण करने में सब कामनायें पूरी होती है, मन्त्र सिद्ध होते है तथा महापातक भी नष्ट हो जाते हैं। कपूर मिलाकर जल से तर्पण करने पर राजा तथा हल्दी मिश्रित जल से तर्पण करने पर सामान्य व्यक्ति वश में हो जाता है। घी के तर्पण दीर्घायु, दूध के तर्पण से आरोग्य, अगर मिश्रित जल के तर्पण से सुख, नारियल के जल के तर्पण से सर्वार्थ सिद्धि, मिर्च मिलाकर जल के तर्पण से शत्रुओं का नाश तथा कवोष्ण (गुनगुने) जल के तर्पण से शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है।

11– हवन :– अग्नि में हविष्यान्न आहुति को हवन कहा जाता है। 'जप के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता तथा हवन के बिना वह फल नहीं देता'। अतः अभीष्ट फल की प्राप्ति हेतू साधक को श्रद्धापूर्वक हवन करना चाहिए। निष्काम व काम्य दोनों प्रकार के प्रयोगों में हवन किया जाता है। काम्य प्रयोगों में वृहद द्रव्यों से तथा निष्काम प्रयोगों में यथा उपलब्ध जड़ी बूटियों से हवन किया जाता है।

यज्ञ से पुत्रार्थी को पुत्र, धनार्थी को धन लाभ, विवाहार्थी को सुन्दर भार्या, कुमारी को सुन्दर पति, श्री कामना वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है तथा निष्काम भाव में यज्ञानुष्ठान करने से परमात्मा की प्राप्ति होती है। यज्ञ से देवताओं को बल मिलता है। यज्ञ द्वारा वर्षा होती है वर्षा से अन्न और प्रजापालन होता है। यज्ञ न करने वाला मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वन्चित हो जाता है, यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती है और वह पेड़ से टूटे हुए पते की तरह नष्ट होता है। यज्ञ (हवन) से आकाश में जो आध्यात्मिक विद्युत तरंग फैलती है, वे लोगों के मनों में द्वेष, पाप, अनीति, वासना आदि बुराईयों को हटाती है। अनेक उलझनें, गुत्थियॉ, बुरी सम्भावनायें समूल नष्ट हो जाती है।

12–बलि :– देवता के लिए द्रव्य का समर्पण बलिदान कहलाता है। इससे विघ्नों की शान्ति होती है तथा साधक निरापद होकर साध्य या सिद्धि को प्राप्त करता है। यह तीन प्रकार की होती है –

1 . आत्मबलि – अंहकार आदि का त्याग।
2 . अन्तर्बलि – काम, क्रोध तथा इन्द्रिय निग्रह।
3 . बाह्य बलि – फलादि का बलि।

आत्मबलि द्वारा अंहकार आदि का नाश होकर साधक कृत्कृत्य हो जाता है। अपने इष्ट का पूजन करने के बाद बलि द्रव्यों से बलिदान देना चाहिए। तन्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों में अन्नाफल, धूप, दीप, यज्ञनपशु आदि बलि देने की परम्पराएँ प्रचलित हैं।

13–याग :– ईष्ट देव के पूजन को 'याग' कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। अन्तर्याग तथा बहिर्याग। बहिर्याग से अन्तर्याग श्रेष्ठ है। **क.** अन्तर्याग में अपने देहमय पीठ पर, पीठ देवता, पीठ शक्तियों एवं आवरण देवताओं के साथ मानसोपचारों से ईष्टदेव का पूजन किया जाता है, फिर आधर चक्र से, सोती हुई कुण्डलिनी को जगाकर ब्रह्मरन्ध्र में विद्यमान परमशिव के पास ले जाकर वहॉ से टपकने वाली अमृत धराओं से ईष्टदेव को तृप्त कर मन्त्रार्थ की भावना के साथ जप किया जाता है। सभी प्रकार के पूजनों में अन्तर्याग की महिमा सर्वोपरि है।

ख. पीठ, विग्रह एवं मन्त्र आदि विधिवत् पूजन करने को बहिर्याग कहते हैं। याग की साधना से साधक को अखण्ड फल की प्राप्ति होती है और अन्त में वह साधक कैवल्य लाभ प्राप्त करता है।

14– जप :– मन्त्र की बार–बार आवृत्ति करने को जप कहते हैं या ईष्ट के नाम स्मरण को तथा सतत् उच्चारित समान ध्वनि को जाप कहा जाता है। जप तीन प्रकार का होता है –

क. वाचिक जप– मन्त्राार्थ एवं देवता का ध्यान रखते हुए वाणी द्वारा मन्त्रोच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है। **ख.** उपाशुं जप – मन्त्रार्थ एवं देवता में मन लगाकर जिह्वा एवं ओष्ठ को कुछ कम्पित करते हुए केवल अपने को ही सुनाई पड़ने योग्य मन्त्र का उच्चारण 'उपांशु' जप कहलाता है। **ग.** मानसिक जप – मन्त्रार्थ की भावना में तन्मय होकर मन ही मन मन्त्र का उच्चारण करना मानसिक जप कहलाता है।

15–ध्यान :– मन के द्वारा इष्ट देवता के स्वरूप को जानना ध्यान कहलाता है। **ध्यानमिष्टस्वरूपस्य वेदनं मनसा खलु** प्रारम्भ में मन, मन्त्र एवं देवता की पृथक–पृथक अनुभूति होती है। ध्यान के प्रभाव द्वारा इन तीनों में एकरुपता का बोध होता है।

16– समाधि :– ईष्ट के रूप का ध्यान करते–करते अपने आपको भूल जाने की स्थिति ही समाधि कहलाती है मन्त्र सिद्धि के साथ देवता में मनलय होने से जब मन, मन्त्र और देवता का स्वतन्त्र बोध नहीं रहता। तीनों एक–दूसरे में लय हो जाते हैं, तभी ध्याता, ध्यान, ध्येय रूपी त्रिपुटी का नाश हो जाता है जिससे महाभाव उत्पन्न होता है।

इस अवस्था में साधक को रोमाच, स्तब्धता तथा प्रेमाश्रु बहने लगते हैं। इस स्थिति में साधक, कृतकृत्य हो जाता है तथा उस मन्त्रायोग का अन्तिमफल महाभाव मिल जाता है व साधक अपने अस्तित्त्व को भूल जाता है और वह स्वंय ईष्टमय हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न – ग

1. आयातयामता शक्ति का अर्थ है ?
2. मन्त्र साधना के मूल क्या है ?
3. पंचांगसेवन का अंग है –
   क. हवन ख. स्तुति, ग. निन्दा

4.10 सारांश –

मन्त्रयोग एक सम्पूर्ण विज्ञान है। विज्ञान की सारे अनुसन्धान एवं सम्पूर्ण अध्यवसाय पदार्थ पर केन्द्रित है। परन्तु पदार्थ के पार पर्याप्त सूक्ष्म एवं उन्नत ऊर्जा स्रोत हैं जिसे क्वाण्टम कण एवं तरंग के नाम से प्रतिपादित किया गया है। सुविख्यात वैज्ञानिक सर माइकल टालबोर (1967) ने अपने शोध अध्ययन में भारतीय तन्त्र–मन्त्र दर्शन की वैज्ञानिकता प्रमाणित की है। इन्होंने 'क्वाण्टम कण और तरंग सिद्धान्त में ब्रह्माण्ड को ऊर्जा–तरंगों का संघनित रूप माना है। इनके अनुसार समस्त सृष्टि का कण–कण तरंगों से विनिर्मित है। स्वामी विवेकानन्द ने प्रकृति की दो सत्तायें स्वीकार की है। (1) आकाश (सूक्ष्म तत्त्व) (2) प्राण (शक्ति तत्त्व), अध्यात्म विद्या में वर्णित नाद और बिन्दु के सिद्धान्त को भी क्वाण्टम तरंग और कण के माध्यम से जाना जा सकताहै। नाद–तरंग, और बिन्दु–कण। महर्षि अरविन्द **'सिन्थेसिस ऑफ योगा'** में लिखते हैं कि 'प्रकृति के हर कण में अनन्त ब्रह्माण्डीय ऊर्जा सम्व्याप्त है और हर एक कण में समस्त सृष्टि की शक्ति, बीज रूप में सन्निहित है। इस प्रकार क्वाण्टम सिद्धान्त में कण एवं तरंग निश्चित रूप से उसी ऊर्जा की झलक देते हैं जिसे आध्यात्मिक मनीषियों ने **'ब्राह्मी चेतना'** कहा है।

अतः शब्द के माध्यम द्वारा सृष्टि के आदिमूल तक पहुँचने की और उसके साथ एकान्तर होने की साधना मन्त्र जप द्वारा सम्पन्न हो जाती है। मन्त्र का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक विशुद्धता ही है, मन्त्र में निहित ईश्वरीय गुणों और शक्तियों का पवित्र मन और शुद्ध वचन

से मनन एवं जप करने से मानव का सभी प्रकार से त्राण होता है और उसमें अपार आत्मशक्ति का संचय होता है।

'मननात् त्रायते इति मंत्रः' मनन के कारण की मन्त्र का अभिधान किया जाता है, जिसके द्वारा जीव बन्धन से मुक्ति, स्वर्ग का अनन्द, मोक्ष तथा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति करता है। आचार्य श्रीरामशर्मा जी ने 'मन्त्र' उसे कहा है, 'जिसमें मानसिक एकाग्रता एवं निष्ठा का समुचित समावेश हो। परिष्कृत व्यक्तित्व की परिमार्जित वाणी से जिसकी साधना की जाय, जिसकी रहस्यमय क्षमता पर गहन श्रद्धा हो तथा जिसका अनावश्यक विज्ञापन न करके गोपनीय रखा जाये।' मन्त्र को जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार तीनों का अधिष्ठान कहा जाता है। सौभाग्यभास्करकार ने **'पूर्णाहन्तानुसधांनस्य स्फूर्जन् मनन धर्मतः'** कहा है, जिसका जप अथवा चिन्तन करने से अपनी अहंता के साथ अनुसन्धान हो अर्थात् अपने अन्तर्मन पर प्रभाव हों और उसके द्वारा आत्मा में स्फूरण होने लगे तथा जिसका अन्तिम परिणाम संसार का क्षय या जन्ममरण के बन्धनों से मुक्ति हो वही 'मन्त्र' है। पिंगलाययततन्त्र 'मननात् विश्व विज्ञानं, त्राणं संसार बंधनम्' जिसके मनन मात्र से समूचा सृष्टि का ज्ञान हो अर्थात् अपने सम्पूर्ण अस्तित्त्व का ज्ञान हो और त्राण अर्थात् संसार के बन्धनों से मुक्ति। इन दोनों कार्यों को उत्तम प्रकार से सिद्ध करने के कारण उसे 'मन्त्र' कहा गया है। मन्त्र नाशरहित है मन्त्र नित्य है, विभु है, सूर्य व्यापक है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है और सब भूतों की योनि है जहाँ वाणी नहीं जा सकती वहाँ मन्त्र जाता है।

ऋषियों ने किस मन्त्र से किस शक्ति को किस आधार पर जगाया जाये। इसका संकेत हर मन्त्र के साथ जुड़े हुए विनियोग में बतालाया है। मन्त्रों की उत्पत्ति कर्त्तव्य कर्म के लिए ही हुई है जिस मन्त्र से जो कार्य कर्तव्य हो, उस मन्त्र का वह विनियोग होता है। मन्त्र साधना एक अति गहन विद्या है। मन्त्रविज्ञान गुरुगम्य विषय होने के कारण इस विद्या की गूढ़ रहस्यों एवं ग्रन्थियों तथा उनके तत्त्वों की रहस्यमयता को को जानने के लिए श्रद्धा, धैर्य और गुरुभक्ति आवश्यक है। मन्त्र साधना प्रणाली के सहायक तत्त्व के रूप में महर्षि भारद्वाज ने मन्त्रयोग संहिता में चन्द्रमा की सोलह कलाओं के समान मन्त्रयोग के 16 अंग बताये है।

4.11 शब्दावली

पूर्णाहन्ता – सम्पूर्ण अस्तित्व ।
आत्म–जागरण – अपने स्व स्वरूप की पहचान ।
सर्वज्ञत्व – सब कुछ जानने वाला।
मध्यमा – गले से उच्चारित शब्दशक्ति।
पश्यन्ती – हृदय क्षेत्र से उच्चारित शब्दशक्ति।
परावाणी – नाभि प्रदेश से उच्चारित शब्दशक्ति।
स्फूर्तिमान – गतिशील, क्रियाशील।
मनोभूमि – मन की विभिन्न अवस्था मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध।
अद्वैत – एक ही सत्य को स्वीकार करने वाला। अर्थात् ब्रह्म एक ही है।

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क	1. त्राण	2. मनन, त्राण	3. वाच्य, वाचक
अभ्यास प्रश्न – ख	1. तीन,	2. कर्त्तव्य,	3. तत्त्व

अभ्यास प्रश्न – ग 1. श्रेष्ठ व्यक्तित्व की क्षमता 2. श्रद्धा,धैर्य, गुरुभक्ति 3. स्तुति।

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1 आचार्य पं.श्रीराम शर्मा (1998)–'शब्द–ब्रह्म, नाद–ब्रह्म,' वाड.मय खण्ड 19 अखण्ड ज्योति संस्थान,मथुरा, पृ. 2.16

2 आचार्य पं.श्रीराम शर्मा (1997) – 'मन्त्र महाविज्ञान,' संस्कृति संस्थान, बरेली उ.प्र., पृ. 452.

3 देशिकेन्द्र श्रीलक्ष्मण (1998) – 'शारदा तिलकतन्त्र' द्वितीयपटल

4 अखण्ड ज्योति पत्रिका – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य

5 अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1 मन्त्र क्या है ? मन्त्र के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?

2 विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित मन्त्र के परिभाषाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ?

3 मन्त्रों के प्रकार तथा विनियोग की क्रियाविधि पर प्रकाश डालिए ?

4 मन्त्र साधना के मुख्य अंग कितने हैं ? अंगों का विश्लेषणात्मक वर्णन कीजिए ?

इकाई – 5 यज्ञ चिकित्सा की अवधारणा एवं विधियाँ

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 यज्ञ का शाब्दिक अर्थ एवं स्वरूप
5.3.1 यज्ञ का अर्थ
5.3.2 यज्ञ का स्वरूप
5.4 यज्ञों के प्रकार
5.4.1 श्रौतयज्ञ
5.4.2 स्मार्त यज्ञ
5.4.3 पौराणिक यज्ञ
5.5 पंच महायज्ञ का स्वरूप
5.6 एक सशक्त वैकल्पिक उपचार पद्धति यज्ञोपैथी
5.6.1 यज्ञोपैथी का सूक्ष्म विज्ञान
5.7 यज्ञ का समर्थ उपचार प्रक्रिया
5.7.1 यज्ञ कुण्ड की आकृति
5.7.2 समिधाओं का चुनाव और उनका विषेष दहन
5.7.3 मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण
5.7.4 यज्ञ का समय विचार (मुहुर्त एवं प्रभाव)
5.7.5 सामग्री का गुण विष्लेषण
5.8 यज्ञ का ज्ञान–विज्ञान
5.8.1 यज्ञोपैथी का वैज्ञानिक परीक्षण
5.8.2 यज्ञ एक आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान
5.8.3 यज्ञ द्वारा वायुमण्डल शोधन
5.8.4 रोगाणु निरोधक एवं कीटनाशक के रूप में उपयोग
5.8.5 कृषि में यज्ञोपैथी का सफल प्रयोग
5.8.6 सात्विक गुणों के अभिवर्द्धन एवं मानसिक संतुलन में उपयोगी
5.9 यज्ञोपैथी व रोगोपचार
5.9.1 विभिन्न रोगों की विशेष हवन–सामग्री
5.9.2 यज्ञ चिकित्सा में प्रमुख उपयोगी मंत्र
5.9.3 सावधानियाँ
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
5. 10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना –

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वैदिक दिनचर्या का शुभारंभ हवन, यज्ञ, अग्निहोत्र आदि से होता था। तपस्वी ऋषि–मनीषियों से लेकर सद्गृहस्थों, बटूक–ब्रह्मचारियों तक नित्य प्रति प्रातः सायं यज्ञ करके जहाँ संसार के विविध विधि रोगों का निवारण किया करते थे। यज्ञ को भारतीय संस्कृति का मूल माना गया है। प्राचीनकाल से ही आत्मसाक्षात्कार से लेकर स्वर्ग–सुख, बंधन–मुक्ति, मनःशुद्धि, पाप प्रायश्चित, आत्मबल, ऋद्धि–सिद्धियों आदि के केन्द्र में यज्ञ ही थे। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ प्राप्त होते हैं। गायत्री महामन्त्र के साथ–साथ शास्त्रोक्त हर्विद्रव्यों के द्वारा भावप्रवणता के साथ जो विधिवत हवन किया जाता है, उससे एक दिव्य वातावरण विनिर्मित होता है। उस दिव्य यज्ञीय वातावरण में बैठने मात्र से रोगी मनुष्य निरोग हो सकते हैं। चरक ऋषि ने अपने अनुपम ग्रन्थ चरक संहिता में लिखा है–''आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को विधिवत् हवन करना चाहिए।'' बुद्धि को शुद्ध करने की यज्ञ में अपूर्व क्षमता है। जिन व्यक्तियों के मस्तिष्क दुर्बल हैं, बुद्धि मलीन है अथवा मानसिक विकृतियों से घिरे हुए हैं, यदि वे यज्ञ करें तो उससे उनकी मानसिक दुर्बलताएं शीघ्र दूर हो सकती हैं। यज्ञ करने वाले स्त्री–पुरूषों की संतान बलवान, बुद्धिमान, सुन्दर और दीर्घजीवी होती है। यज्ञ चिकित्सा विज्ञान का उद्देश्य विश्वमानवता को समग्र स्वास्थ्य उपलब्ध कराना है।

यज्ञोपैथी से मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि के साथ–साथ शारीरिक रोगों के निवारण में भी सहायता मिलती है। यज्ञोपैथी सरल और उपयोगी चिकित्सा पद्धति है, जिसके द्वारा शरीर के लिए मारक और पोषक दोनों तत्वों को आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में आप यज्ञ के अर्थ एवं वृहद् स्वरूप के साथ यज्ञ के विभिन्न प्रकारों का सोदाहरण ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे। साथ ही यह जान पाएंगे कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति (एलोपैथी) की कार्य प्राणाली संवर्धन की अपेक्षा सारा ध्यान संहार उपचार पर ही केन्द्रित रहता है। यह एकांगीपन जब तक दूर नहीं किया जाएगा, तब तक चिकित्सा प्रक्रिया अधूरी ही बनी रहेगी। परन्तु यज्ञोपैथी एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है, जिसके द्वारा वायुभूत बनाए गए पदार्थों का सेवन मुंह द्वारा खाए गए और पेट द्वारा पचाए गए पदार्थों की तुलना में कहीं अधिक लाभप्रद पौष्टिक सिद्ध होता है। बीमारियों से लड़ने वाली जीवनीशक्ति व विषाणुओं के आक्रमण को निरस्त करने में भी यज्ञोपैथी का सफल उपयोग है। आजकल रोग निदान के आधुनिकतम साधनों के होते हुए भी रोगों का बाहुल्य है, एक रोग मिटता है और उसके लिए प्रयुक्त औषधि ही दूसरे रोग को जन्म देती है, इस तरह उपचार के नाम पर हताशा ही हताशा है।

हमें उम्मींद है कि आपको इससे यज्ञ के सूक्ष्म विज्ञान का सर्वांपूर्ण हो सकेगा तथा महसूस होगा कि ऐसी चिकित्सा पद्धति जो मानव का सम्पूर्ण उपचार कर सके अर्थात् आस्थाओं का शोधन, मानसिक विकारों का निराकरण, शरीरगत अव्यवस्थाओं का सुगढ़तापूर्ण संयोजन कर सकने वाली कोई चिकित्सा पद्धति है तो वह केवल यज्ञोपैथी ही है।

5.2 उद्देश्य :–

1 यज्ञ का अर्थ व उसके प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।
2 यज्ञ के प्रकार के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे।
3 यज्ञोपैथी के महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4 यज्ञोपैथी के सूक्ष्म विज्ञान का अध्ययन करेंगे।
5 असाध्य रोगों को दूर करने के लिए यज्ञोपैथी की जानकारी प्राप्त करेंगे।
6 विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोगों के लिए विशेष हवन–सामग्री का अध्ययन करेंगे।

5.3 यज्ञ का शाब्दिक अर्थ एवं स्वरूप

यह सृष्टि पंचभौतिक अथवा पंचमहाभूत तत्वों से बना है। सृष्टि की चेतना जिस ऊर्जा के माध्यम से गतिशील रहती है वह है 'शब्द'। जबकि पदार्थ जगत की क्रियाशीलता के पीछे जिस ऊर्जा का उपयोग होता है वह है ताप। अर्थात सूर्यताप समस्त सृष्टि का जीवन चक्र है एवं धरती का सौभाग्य है। इसी संदर्भ में 'यज्ञ' इस धरती का लघु सूर्य कहा जा सकता है,क्योंकि यज्ञ की अग्नि सामान्य अग्नि से बहुत पवित्र एवं शुद्ध होती है। यज्ञाग्नि से मनुष्य एवं प्रकृति दोनों के संताप मिटते हैं। जबकि सामान्य अग्नि में यह गुण नहीं होता। इसीलिए प्राचीन काल से ऋषियों ने यज्ञ को अपने दिनचर्या का अभिन्न अंग बना लिया था। यज्ञ को सर्वदाता कहा गया है। इसके द्वारा इच्छित फल प्राप्त किया जा सकता है।

पर्व त्यौहार, उत्सव एवं संस्कारों में तथा मंगलकारी कार्यों में यज्ञ करवाना आज भी श्रेष्ठ इसलिए माना जाता है क्योंकि यह शुभ कर्म होता है तथा इससे वातावरण दिव्य बनता है एवं इसकी सुगंध कई–कई घण्टों तक बनी रहती है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी इसकी उपादेयता तनिक भी कम नहीं हुई है। बल्कि नये–नये रोगों में एवं प्रदूषण ने इसके अस्तित्व को और अधिक मजबूत आधार तैयार किया है। जिसे श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने यज्ञाग्नि को उपचार का माध्यम बनाकर यज्ञोपैथी की आवश्यकता पर बल दिया है। यज्ञोपैथी से मात्र प्राणी ही रोगमुक्त नहीं होते अपितु अन्य महाभूतों जैसे वायु, पृथ्वी, जल और आकाश भी पवित्र एवं शुद्ध होजाते हैं। इस प्रकार यज्ञ सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र को सन्तुलित एवं प्रदूषण मुक्त बनाए रखने में अहं भूमिका निभाता है।

5.3.1 यज्ञ का अर्थ :– 'यज्ञ' का भावार्थ–परमार्थ एवं उदार–कृत्य है। 'यज्ञ' शब्द पाणिनीसूत्र **''यजयाचयतविच उप्रक्चरक्षो नङ्''** में नङ् प्रत्यय लगाने पर बनता है अर्थात् यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से बना है, यज् धातु के तीन अर्थ हैं– देवपूजन, दान और संगतिकरण। इस प्रकार हवि या हवन के द्वारा देवताओं का पूजन का नाम 'यज्ञ' है। ईश्वरीय दिव्य शक्तियों की आराधना, उपासना, उनकी समीपता, संगति तथा अपनी समझी जाने वाली वस्तुओं को उनको अर्पण करना, यह यज्ञ की प्रक्रिया है। देवगुण सम्पन्न सत्पुरुषों की सेवा एवं संगति करना तथा उन्हें सहयोग देना भी यज्ञ है। व्यावहारिक अर्थ में इसे यों भी कह सकते हैं कि बड़ों का सम्मान, बराबर वालों से संगति, मैत्री तथा अपने से छोटों को, कम शक्ति वालों को दान या सहायता करना यज्ञ है। इस प्रकार ईश्वर उपासना, सत् तत्व का अभिवर्द्धन एवं पारस्परिक सहयोग भी यज्ञ माने जाते हैं। यों हवन के अर्थ में यज्ञ शब्द का प्रयोग तो प्रसिद्ध ही है। हवन द्वारा उपर्युक्त तीनों प्रयोजन पूर्ण होते हैं।

देवानां द्रव्यं हविषां ऋक् सामप यजुशांतथा।
ऋत्वजां दक्षिणानां च संयोगी यज्ञ उच्चतेमत्स्य पुराण।

देवों का हवि प्रदान, वेद मंत्रों का उच्चारण, ऋत्विजों को दक्षिणा–इन तीनों कार्यों का संयोग यज्ञ कहलाता है।

इज्यंते चत्वारो वेदाः सांगः सरहस्याः सच्छिश्येभ्यः संप्रदीयंते,
उपदिष्ययन्तेद्ध सदाचार्य्यैयेन वा सा यज्ञः।

विद्वान आचार्यों द्वारा सत्पात्र शिष्यों को अंग–उपांगों सहित वेदों का पढ़ाना यज्ञ है।

येन सदनुष्ठानेन इंद्राणि देवाः सुप्रसन्नाः सुवर्षश्टं कुर्यस्तत् पदाभियोम्।

जिस कार्य से इंद्रादि देव प्रसन्न होकर उत्तम वर्षा करें उसे यज्ञ कहते हैं।

येन सदनुष्ठानेन स्वर्गादि प्राप्तिः सुलभाः स्यात् तत् यज्ञ पदाभियोम्।

जिस अयोजन द्वारा स्वर्ग आदि सद्गति को प्राप्त करना सुलभ हो वह यज्ञ है।

येन सदनुष्ठानेन आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक तापत्रायोन्मूलनंसुकरं स्यात् तत यज्ञ पदाभियोम्।

जिस सद् अनुष्ठान द्वारा आध्यात्मिक, आधिभौतिक तीनों प्रकार के कष्टों का निवारण हो वह यज्ञ कहा जाता है।

संगतिकरण यजनं धर्म देश जाति मर्यादा रक्षायै महापुरुषाणा मेकीकरणं यज्ञः।

अर्थात श्रेष्ठ पुरुषों को धर्म, देश, जाति की मर्यादा की रक्षा के लिए संगठित एवं एकत्रित करना यज्ञ है।

इज्यन्ते संगतिक्रियन्ते विष्व कल्याणाा महात्तो विद्वांसः वैदिक शिरामण्यः निमंत्रयंते अस्मित्रिति यज्ञः।

जहाँ विश्व कल्याण के लिए श्रेष्ठ, विद्वान, वेदज्ञ पुरुषों को आमंत्रित एवं एकत्रित किया जाता है वह यज्ञ है।

इज्यन्ते स्वकीय वंधुवावांधवदयः प्रेम सम्मान भ्ज्ञाजः संगति करण्याय आहूयंते प्राथ्यते च येन कर्मणेति यज्ञः।

जिस आयोजन में बंधु–बांधवों, स्नेह–सम्बन्धियों को पारस्परिक संगठन के लिए प्रेम एवं सम्मान के साथ एकत्रित किया जाता है वह यज्ञ है।

दानयजनं यथा शक्ति काल पात्रादि विचार पुरस्पर द्रव्यादि त्याग। अर्थात् देश काल पात्र का विचार करके सुद्देश्य के लिए जो धन दिया जाता है उसे यज्ञ कहते हैं।

इज्यन्ते भगवति सर्वस्वं येन वाय यज्ञः

भगवान को आत्मसमर्पण करने की क्रिया यज्ञ है।

ऋषियों ने यज्ञ को इस संसार चक्र का धुरी कहा है।

''यज्ञो वै विष्वस्य भुवनस्य नाभिः।'' (ऋग्वेद)

गीता में भगवान कृष्ण ने यज्ञ को मनुष्य का जुड़वा भाई कहा है।

'सहयज्ञाः प्रजा सृष्टा पुरोवाचः प्रजापतिः। (गीता 3/10)

5.3.2 यज्ञ का स्वरूप :– यज्ञ का वास्तविक स्वरूप बतलाते हुए आचार्य श्रीराम शर्मा स्वष्ट करते हैं कि ''अध्यात्म और विज्ञान का प्रत्यक्ष माध्यम यज्ञ है। आत्मसंयम की तपश्चर्या और भावनात्मक केंन्द्रीकरण की योग–साधना का समन्वय ब्रह्मविद्या कहलाता है। उसे अध्यात्म विज्ञान का भावपक्ष कह सकते हैं। द्वितीय क्रिया पक्ष यज्ञ है।''

'यज्ञ विश्व बह्माण्ड' की नाभि है– इसका तात्पर्य है कि ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म तत्वों का पोषण एवं विकास यज्ञ से ही सम्भव है। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए आचार्य शर्मा का विवेचन है कि मनुष्य अनेक सूक्ष्म तत्त्वों को ब्रह्माण्ड से निरन्तर ग्रहण करता है, अतः मनुष्य का भी कर्त्तव्य है कि वह भी ब्रह्माण्ड का यह ऋण चुकाए। यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि ' यज्ञ समष्टि जगत का पालनकर्ता है, क्योंकि यज्ञ का संबंध ब्रह्माण्ड से है। अतः ब्रह्माण्ड की दिव्यशक्तियों का अभ्युदय यज्ञ से ही संभव है।

वस्तुतः अग्नि 'यज्ञ' का उपचार स्वरूप है, परन्तु वह अध्यात्म अर्थात् चेतन जगत का अत्यन्त प्रभाव शाली ऊर्जा केंद्र भी है। यज्ञ से ही व्यक्ति सूक्ष्म जगत से सम्पर्क करने में समर्थ होता है। अतः यज्ञ महत्वपूर्ण है। ऋषियों ने यज्ञीय ऊर्जा के सम्बन्ध में विशद् अनुसंधान किया था। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं दान, देवपूजन, संगतिकरण। इन्हें प्रकारांतर से उदारता, उत्कृष्टता एवं सहकारिता की दिशाधारा कहा जा सकता है। यज्ञीय दर्शन को जीवन में उतारने वाला कोई भी व्यक्ति इसी जीवन में स्वस्थ, समृद्ध, एवं सुसंस्कृत रह सकता है। ऐसे व्यक्ति को आंतरिक प्रसन्नता एवं बाह्य प्रफुल्लता का अभाव नहीं रहता। यज्ञकृत्य कराने और सम्मिलित होने वालों को प्रत्येक विधि–विधान की व्याख्य करते हुए यह समझाया जाता है कि उनका चिंतन और चरित्र, दृष्टिकोण एवं व्यवहार निरन्तर उत्कृष्टता की ओर बढ़ता रहे। उद्गाता यही गाते हैं, अध्वर्यु यही सिखाते हैं, ब्रह्मा इसी की योजना बनाते हैं और आचार्य को ऐसी व्यवस्था बनानी होती है कि इसी प्रकार का भाव उस समूचे वातावरण पर छाया रहे। रोगोपचार के पीछे यही तथ्य छिपा है कि नीतित्वान, निरोग, बलिष्ठ एवं दीर्घजीवी होता है। यज्ञ के पुनीत अनुष्ठान के साथ ही इसी नीतिदर्शन को प्रत्येक याचक को समझाया जाता है।

यज्ञ–विज्ञान की अनुसंधान प्रक्रिया का शुभारंभ जिन पक्षों से किया गया है वे हैं यज्ञ से रोग निवारण, स्वास्थ्य, सवर्द्धन, प्रकृति संतुलन एवं वनस्पति संवर्द्धन, दैवी अनुकूलन, समाज, शिक्षण शक्ति जागरण तथा यज्ञ की विकृतियों एवं विसंगतियों में सुधार। शोध की परिधि असीम है, परन्तु प्रारम्भिक प्रयास के रूप में यज्ञ विज्ञान के इन्हीं प्रमुख आठ पक्षों को प्रयोग–परीक्षण की कसौटी पर रखा गया है।

यज्ञ–प्रक्रिया की शोध के अनेकानेक आयाम हैं हविष्य धूम्र, यज्ञावशिष्ट, मंत्रोच्चार में सन्निहित शब्दशक्ति, याजक गणों का व्यक्तित्व एवं उपवास, मौन प्रायश्चित आदि धर्मानुष्ठानों से जुड़ी तपश्चर्याएं। इन प्रयोजनों का शास्त्राों में उल्लेख तो है, पर उनके विधानों, अनुपातों और सतर्कताओं का वैसा उल्लेख नहीं मिलता, जिसके आधार पर समग्र उपचार बन पड़ने की निश्चतता रह सके। यज्ञ–विद्या को सांगोपांग बनाने के लिए शास्त्रों के सांकेतिक विधानों को वैज्ञानिक एंव सर्वांणपूर्ण बनाना होगा। यह कार्य पुरातन के आधुनिक शोध द्वारा ही संभव है।

इस सम्बन्ध में जितना भी कुछ वर्णन अब तक वैज्ञानिकों को उपलब्ध हुआ है, उससे इन प्रयोगों की प्रामाणिकता का पता चलता है। पौराणिक आख्यानों में इन प्रयोगों की वैज्ञानिकता का विस्तृत विवेचन तो नहीं है, परन्तु इस ओर संकेत अवश्य हैं। राम का जन्म, च्यवन ऋषि का आयुष्य, अपाला का रोग निवारण यज्ञ–प्रक्रिया द्वारा ही संभव वर्णित किए गए हैं। चरक और सुश्रुत ने तो विधिवत नस्य विभाग स्थापित किये थे। धन्वंतरि ने जटिलतम रोगों की इस प्रक्रिया द्वारा ठीक किया, ऐसे वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। वनौषधियों को देवोपम महत्ता देकर उनका सदुपयोग का जैसा वर्णन अध्यात्म ग्रंथों में किया गया है, उसे देखते हुए भारत के पुरातन गौरव के प्रति नतमस्तक हो जाना पड़ता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन समस्त प्रतिपादनों को बुद्धिगम्य बनाने एवं तर्कबुद्धि के गले उतारने के लिए एक ऐसे ही तंत्र की आवश्यकता थी, जैसा कि 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' की प्रयोगशाला में स्थापित किया गया है।

यज्ञों में यजन हेतु विभिन्न हविष्य पदार्थ प्रयुक्त होते हैं। हविष्य का निर्धारण हर विशिष्ट रोगी के लिए अलग–अलग किया जाता है। बलवर्द्धक और रोगनिवारक दोनों ही तत्वों को

ध्यान में रखना होता है। यज्ञ–चिकित्सा के मूल स्वरूप को समझने के लिए वाष्पीकरण सिद्धान्त की वैज्ञानिकता को समझना होगा।

हविष्य के होमीकृत होने के पीछ 'सूक्ष्मता' का दर्शन छिपा पड़ा है। सूक्ष्मीकरण से शक्ति का विस्तार होता है। होम्योपैथी की दवाएं इस सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। दवाओं की सूक्ष्मता बढ़ाकर उनकी पोटेन्सी में वृद्धि की जाती है। 'डीशेन' की दवाओं में साधारण जड़ी–बूटियों की अधिक पिसाइ–कुटाई करके उनकी आणविक ऊर्जा को उभारा जाता है। फलतः वे अधिक लाभदायक सिद्ध होती हैं। सूक्ष्मता का अपना स्वतंत्र विज्ञान है, जिसमें वस्तुओं की अदृश्य स्थिति का ही पतिपादन नहीं है, वरन यह सिद्धान्त भी सम्मिलित है कि स्थूल के अंतराल में छिपा सूक्ष्म कितना अधिक सामर्थ्यवान है।

औषधियों का वाष्पीकरण दो प्रकार के प्रभाव छोड़ता है। प्रथम तो उसकी सामर्थ्य कई गुनी अधिक हो जाती है। दूसरा उसका प्रभाव निकटवर्ती व्यक्तियों, वातावरण, जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर पड़ता है। मुख द्वारा दी गई औषधि पर आमाशय के विभिन्न पाचक रसों की प्रतिक्रिया होती है। तदुपरांत व्यक्ति विशेष की सामर्थ्य के अनुसार उसका कुछ अंश रक्त में जाकर शेष मल–मूत्र मार्ग से बाहर उत्सर्जित कर दिया जाता है। इस प्रकार औषधि का प्रभाव निश्चित ही मुखमार्ग द्वारा दी गई औषधि से अधिक और तुरन्त होता है। परन्तु उनके भी सूक्ष्म जीवकोशों–ऊतकों तक पहुंचने की पूरी संभावना सुनिश्चित नहीं है। वाष्पीकरण ऊर्जा के माध्यम से औषधि प्रवेश हेतु इसी मार्ग को प्रयुक्त किया जाता है।

पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति में भी कई औषधियां श्वास मार्ग से दी जाती हैं। श्वास रोगी को शीघ्र आराम दिलाने हेतु औषधि मस्तिष्क के ऊतकों में प्राण–संचार हेतु ऑक्सीजन एवं ऑपरेशन हेतु मूर्च्छित किए जाने के लिए औषधियां इसी मार्ग से दी जाती हैं। ऐसा इसलिए कि प्रभाव तुरन्त हो एवं सुनिश्चित हो। नासिका मार्ग को इसीलिए प्रधानता दी गई है कि औषधियाँ आंतरिक अवयवों एवं कोष्ठकों तक पहुंचकर अपना प्रभाव समग्र रूप में शीघ्र दर्शा सके।

शरीर वैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्येक श्वास अठ्ठारह बार प्रति मिनट के साथ प्राणवायु ऑक्सीजन का अंदर प्रवेश होता है। वह सह वायुकोष्ठकों, एलविओलस के माध्यम से रक्त में मिलती हैं। इसके साथ ही रक्त द्वारा लाए गए ऊतकों के निष्कासित द्रव्य कार्बन डाइऑक्साइड गैस के रूप में बाहर निःश्वास फेंक दिए जाते हैं। प्रति 4 सेकंड में होने वाली इस प्रक्रिया द्वारा जो संपर्क ऑक्सीजन का रक्त में होता है वह वायुकोष्ठकों की संरचना की अद्भुतता के कारण सहों गुना होता है। इस तरह जिस औषधि का सीमित मात्रा में उपयोग अन्य भागों द्वारा उसे शरीर के कुछ ही भागों तक पहुंचाता है, वह उसे कई गुने अनुपात में पूरे शरीर के विभिन्न कोष्ठकों तक पहुंचाकर अपना प्रभाव दिखाने में सफल होता है।

5.4 यज्ञों के प्रकार

इस महत्त्वपूर्ण यज्ञ कार्य के भेद–उपभेदों की गणना करना साधारण कार्य नहीं है। गीता के चतुर्थाध्याय के यज्ञनिरूपण–प्रकरण में यज्ञ के 15 मुख्य भेद बतलाए गये हैं। यदि इनकी विभिन्न शाखाओं की गणना की जाय, तो यज्ञ क्षेत्र को 'अनन्त' कहकर ही विश्राम करना पड़ेगा। अतएव हम इन भेदों की ओर न जाकर यज्ञकर्म के मुख्य शास्त्र कल्प और उसके विद्वानों की परम्परा की ओर ही ध्यान देकर कुछ उपयोगी विचार उपस्थित करते हैं।

महर्षि वेदव्यास की उत्कृष्ट रचना श्रीमद्भागवत भगवान के श्रीमुख का यह वचन है–

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधोन्मुखः।। – 11/27/7

इसके अनुसार सामान्यतः वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र ये तीन यज्ञानुष्ठान की शैलियाँ ज्ञात होती हैं। यहाँ तांत्रिक शब्द से तंत्र दर्शन प्रतिपादन योगादिक्रियाओं का, तथा कई विचारक दक्षिण और वाममार्ग नाम से प्रसिद्ध तंत्रपद्धति के कार्यों का निर्देश बताते हैं। परन्तु यांत्रिक विचारकों के अनुसार– **कर्मणां युगपद्भावस्तन्त्रम्'–1/7/1** इस कात्यायन महर्षि की परिभाषानुसार एक कार्य में ही विभिन्न शाखाओं में प्रतिपादित अनेकताओं की अविरोधी संकलन करना 'तंत्र' शब्द का अर्थ है। ऐसे ही कार्यों को 'तांत्रिक' कार्यों के लिए आजकल स्मार्त शब्द का व्यवहार प्रचलित है। शास्त्रकारों ने स्मार्त शब्द की जो व्याख्या की है, उससे भी अनेक शाखाओं तथा अनेक वेदों के कार्यों का एक जगह सम्मिश्रण माना गया है।

उक्त याज्ञिक विचार से यज्ञ की श्रौत (वैदिक) स्मार्त (तांत्रिक) और पौराणिक (मिश्र) ये तीन मुख्य शैलियाँ हैं।

5.4.1 श्रौतयज्ञ :–श्रुति अर्थात दवेद के मंत्र और ब्राह्मण नाम के दो अंश हैं। इन दोनों में या दोनों में से किसी एक में सांगोपांग रीति से वर्णित यज्ञों को श्रौतयज्ञ कहते हैं। श्रौत कल्प में 'यज्ञ' और होम दो शब्द हैं। जिसमें खड़े होकर वषट् शब्द के द्वारा आहुति दी जाती है और याज्या पुरोनुवाक्य नाम के मंत्र पढ़े जाते हैं, वह कार्य 'यज्ञ' माना जाता है। जिसमें बैठकर स्वाहा शब्द के द्वारा आहुति दी जाती है यह होम कहा जाता है। श्रौतयज्ञ–इष्टियाग, पशुयाग और सोमयाग इन नामों से मुख्यतया तीन भागों में विभक्त है। श्रौतयज्ञों के विधान की एक स्वतंत्र परम्परा है, उस प्रयोग परम्परा का जिस कार्य में पूर्णतया उल्लेख हो उसे 'प्रकृतिक याग' कहते हैं और जिस कार्य में विशेष बातों का उल्लेख और शेष बातें प्रकृतियाग से जानी जायें उसे विकृतियाग कहते हैं।

अतएव श्रौतयज्ञों के तीन मुख्य भेदों में क्रमशः दर्शनपूर्णमासेष्टि, अग्रीपोमीय पशुयाग और ज्योतिष्टोम सोमयाग के प्रकृतियाग हैं। अर्थात् इन कर्मों में किसी दूसरे कर्म से विधि का ग्रहण नहीं होता हैं इन प्रकृतियागों के जो धर्म ग्राही विकृतियाग है वे अनेक हैं। उनकी इयत्ता का संकलन भिन्न–भिन्न शाखाओं के श्रौतसूत्रों में किया गया है। यहॉ उनका बिना परिचय के नाम गिनाना अनुपयुक्त और अरोचक होगा। अतः श्रौत यज्ञ का सर्व सामान्य परिचय इस प्रकार समझना चाहिए।

श्रौतयज्ञ–आहवनीय, ग्रार्ह्यपत्य, दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियों में होते हैं इसलिए उन्हें त्रेताग्नियज्ञ भी कहते हैं। प्रायः सभी श्रौत यज्ञों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से कम या अधिक रूप से तीनों ही वेदों के मंत्रों का उच्चारण होता है, अतः श्रौत यज्ञ 'त्रयी' साध्य हैं। इनमें यजमान स्वयं शरीर क्रिया में उतना व्यस्त नहीं रहता जितनें अन्य ब्राह्मण जिन्हें ऋत्विज कहते हैं वे कार्य संलग्न रहते हैं।

5.4.2 स्मार्त यज्ञ :–इनका श्रौत सूत्र कारों ने पाक यज्ञ तथा एकाग्नि शब्द से व्यवहार किया है। इनके मुख्यतया हुत, आहुत और प्रतिशत ये चार भेद है– जिन कार्यों में अग्नि में किसी विहित द्रव्य का हवन होता हो, वह हुत यज्ञ है। जिससे हवन न होता हो केवल किसी क्रिया का करना मात्र हो वह अहुत यज्ञ है। जिसमें हवन और देवताओं के उद्देश्य से द्रव्य का 'बलि' संज्ञा से त्याग हो, वह हुत यज्ञ है और जिसमें भोजन मात्र ही हो वह प्रतिशत यज्ञ है।

स्मार्त यज्ञ का आधार भूत अग्नि शास्त्रीय और लौकिक दोनों प्रकार होता है। शास्त्रीय अर्थात् आधान विधि के द्वारा स्वीकृत अग्नि औपासन, आवसथ्य, गृह्य, स्मार्त आदि शब्दों से कहा जाता है। इस अग्नि में जिसने उसको स्वीकार किया है, उसके सम्बन्ध का ही हवन हो सकता है। साधारण अग्नि लौकिक अग्नि है। इसे संस्कारों द्वारा परिशोधित भूमि में स्थापित करके भी स्मार्त यज्ञ होते हैं। स्मार्त यज्ञों की संख्या श्रौत यज्ञों की भांति अत्यधिक नहीं है। इन यज्ञों की विधि और इयत्ता बताने वाले ग्रन्थ को 'गृह्यसूत्र' या स्मार्त सूत्र कहते हैं। पंचमहायज्ञ, षोडसंस्कार और औध्वदैहिक (प्रचलित मृत्यु के बाद की क्रिया) प्रधानतया स्मार्त हैं। स्मृति ग्रन्थों में उपदिष्ट कार्य जिनका (विनायक शांति आदि का) पूर्ण विधान उपनध गृह्यसूत्रों में नहीं मिलता है, वे भी याज्ञिकों की परम्परा में स्मार्त ही कहलाते हैं। स्मार्त यज्ञ में प्रायः अकेला व्यक्ति भी कार्य कर सकता है। हवन वाले कार्यों में एक ब्रह्मा की तथा भोजनादि में अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। गृह्यसंस्कार ने स्मार्त यज्ञों में यजमान ब्रह्म और आचार्य (नामभेद) इन तीन की आवश्यकता बताई है।

इस समय शास्त्रीय अग्नि वाले कार्य प्रायः अग्नि वाले कार्य प्रायः लुप्त से हो गये हैं, क्योंकि इनमें भी अग्निरक्षा आदि का कार्य आजकल की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं बैठ पाता। जिनमें लौकिक अग्नि का ग्रहण है वे संस्कार, उपाकर्म, अन्तेष्टि आदि प्रचलित हैं पर वे भी गिनी चुनी संख्या में हैं स्मार्त यज्ञों में मानव के नैतिक गुणों के विकास का फल अधिक है। आज की बढ़ती हुई अनैतिकता में हमारे लिए भी एक कारण हो।

5.4.3 पौराणिक यज्ञ :–श्रुति स्मृति कथित कार्यों के अधिकारी अनाधिकारी सभी व्यक्तियों के लिए पौराणिक कार्य उपयोगी है। आज कल इन्हीं का प्रचार और प्रसार है। पौराणिक कार्यों में यज्ञ शब्द का प्रयोग कल्प सूत्रकारों की याज्ञिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। परन्तु गीता के व्यापक क्षेत्र से इनके लिए भी 'यज्ञ' शब्द का व्यवहार होता है। अतएव पौराणिक यज्ञों को हवन, दान, पुनरक्षण, शान्तिकर्म, पौष्टिक, इष्ट पूर्त्त व्रत, सेवा, आदि के रूप से अनेक श्रेणियों में विभक्त किया गया है। जिन जातियों को वेद के अध्ययन का अधिकार है, वे पौराणिक यज्ञों को वेदमंत्रों सहित करते हैं और जिन्हें वेद का अधिकार नहीं है, उनको पौराणिक मंत्रों से ही करते हैं। हमने भी सभी वर्गों की उपयोगिता की दृष्टि से इनका यह निर्देश किया है।

पौराणिक यज्ञों का विस्तार अधिक है, अतएव यहाँ इनका पृथक–पृथक विवेचन करना संभव नहीं हो सकता। साधारणतया पौराणिक यज्ञों में गणपति पूजन, पण्याहवाचन, शोडशमातृका पूजन, वसोर्धारा पूजन, नान्दी श्राद्ध, इन पांच स्मार्त अंगों के साथ ग्रहयाग प्रधानपूजन आदि विशेष रूप से होता है। इन यज्ञों में लौकिक हजारों तक कार्यक्षम व्यक्ति कार्य के अनुसार 'ऋत्विज्' बनाए जा सकते हैं। पौराणिक यज्ञों के विस्तार में न जाकर यहाँ संक्षेप में श्रुति प्रतिपादित यज्ञों का परिचय दिया जा रहा है। यों तो यज्ञ के अंसख्य भेद अर्थात प्रकार शास्त्रों में वर्णित हैं। उन सबका केवल नामोल्लेख भी इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता, तो उनके स्वरूप का वर्णन, उसके अनुष्ठान के प्रकार एवं अवान्तर अंग–उपांग आदि का संक्षेपतः भी वर्णन यहां किस तरह किया जा सकता है। कई यज्ञ तो ऐसे हैं, जिनके अनुष्ठान का न तो आज तक कोई अधिकारी ही है न अनेक कारणों से उसका अनुष्ठान किया ही जा सकता है। जैसे भगवान अनन्त, अपार हैं, वैसे ही उनके स्वरूप भूत वेद तथा तत्प्रतिद्यात यज्ञ की महिमा भी आनन्द अपार है।

यज्ञों के विविध प्रकार :–श्रुति में वैदिक कर्मों के पांच विभाग बतलाये गये हैं– 1. अग्निहोत्र 2. दर्श–पूर्णमास, 3. चातुर्मास 4. पशु, 5. सोम। स्मृति में यज्ञों का विभाग निम्न प्रकार से किया है– 1. पाकयज्ञ संस्था, 2. हविर्यज्ञ संस्था, 3. सोम संस्था। पाक यज्ञ सस्था में– 1. औपासन होम, 2. वैश्वदेव, 3. पार्वण 4. अष्टका, 5. मासिश्राद्ध, 6 श्रावणा, 7. शूलयण, 4. चातुर्मास, 5. निरूढ पशु बन्ध, 6. सौत्रायणि और 7. पिण्डपितृयज्ञ हैं। सोम संस्था में 1. अग्निष्टोम, 2. अत्यग्निष्टोम 3. उक्थ्य, 4. शोडशी, 5. वाजपेय, 6. आतिरात्र और 7. अप्तोर्याम का समावेश होता है। इस तरह ''गौतम धर्मसूत्र'' में श्रौतस्मार्त कर्मों की संख्या मिलाकर 21 यज्ञ बतलाये हैं। इनमें पाकयज्ञ संख्याओं का निरूपण गृह्यसूत्रों एवं ब्राह्मणात्मक देवभाग में किया गया है।

इस तरह श्रौत–स्मार्त यज्ञों में से कुछ का नाम निर्देशमात्र ऊपर किया गया है। इसका संक्षिप्त विवरण लिखने में एक वृहत् ग्रन्थ लिखना पड़ जायेगा। इन यज्ञों के अतिरिक्त बहुत से पौराणिक, तांत्रिक एवं आगमोक्त यज्ञ हैं, जैसे कि विष्णुयाग, रुद्रयाग, महारुद्र, अतिरुद्र, गणेशयाग, चण्डयाग, गायत्री–याग, सूर्ययाग, विनायकशांति, ग्रहशांति, अद्‌भुतशांति, महाशांति, ऐन्द्रीशांति, लक्षहोम, कोटिहोम, वैष्णवेष्टि, वैभवीष्टि, पाद्यी, ईष्टि, नारायणी, वारूदेवी, गारूढी, वैवूही, पावमानी, आनन्ती, वैश्वक्सेनी, सौदर्शनी, पवित्रष्टि, आदि अनेक यज्ञों का विधान पाया जाता है।

प्रत्येक गृहस्थ के लिए परमावश्यक नित्य कर्तव्य उन पांच महायज्ञों में से एक भी आज विरल आचरण देखने में आता है, जिनके न करने में दोष बतलाया गया है। ये पांच महायज्ञ हैं– ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञ इन्हीं के आहुत, हुत, प्रहुत, ब्रह्महुत और प्राशित नाम बतलाये गये हैं।

5.5 पंच महायज्ञ का स्वरूप :–

भारत के पूज्य ऋषिगणों ने पंच महायज्ञ निरूपित कर सभी को यज्ञशिष्ट भोग कर निष्पाप और भगवद् प्राप्ति के योग्य बनने का निर्देश दिया था वे ये हैंः–

1. ब्रह्म यज्ञ
2. देव यज्ञ
3. पितृ यज्ञ
4. नृ यज्ञ
5. भूत बलि (वैश्वदेव यज्ञ)

ब्रह्मयज्ञ :– ऋषियों की भांति अपना सा कुछ कुछ धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य, शरीर–प्राण, मन–बुद्धि, हृदय आदि सभी परमात्मा को अर्पित कर दें और फिर उनके आदेश के अनुसार ही अपने जीवन में इन सबों का उपयोग करें। (सब कुछ वस्तुतः स्पष्ट होकर प्राप्त होने लगता है।) यह ब्रह्म यज्ञ है।

देव यज्ञ :– विश्व के कल्याण के लिए प्रत्यक्ष अग्नि में ऐसे आरोग्यमय, पुष्ट और मंगल द्रव्यों की श्रद्धा और भक्ति से आहुति दें, जिसे विश्व में फैले अनन्त देव ग्रहण कर सबों के कल्याण और शुभ के लिए पर्जन्य रूप में विविध वृष्टि कर पुनः विस्तृत रूप में हमें प्रदान करते हैं।

पितृ यज्ञ :– जीवन में पोषण, रक्षण एवं विविध कल्याणों की अभिवृद्धि करने–कराने वाले गुरु–पितृ–बड़ों की भक्ति और सेवा ही पितृ–यज्ञ है। शरीर छोड़ने के उपरान्त भी उनकी

आज्ञा मानकर चलना तथा उनके आत्म–कल्याण के लिए सत्कर्मों का अनुष्ठान करना भी पितृ यज्ञ ही है।

नृ यज्ञ :– अपने स्वार्थ की संकीर्णता को विशाल परार्थता में परिणत करने के लिए अपरिचित अयाचित की देव और ईश्वर मान कर सेवा–अर्चन–भोजन–शयन–आदर और स्वागत वाणी से सत्कार करना ही नृ यज्ञ है।

भूत बलि या वैश्वदेव यज्ञ :– स्थूल, सूक्ष्म दिव्य जितने भी प्राणी या देव हैं, सबों की तृप्त करने की भावना से भोज्य सामग्री की हवि प्रदान करना ही भूत या वैश्वदेव यज्ञ है। इससे व्यक्ति का हृदय और आत्मा विशाल होकर अखिल विश्व के प्राणियों के साथ एकता सम्मिलन का अनुभव करने में होता है।

यज्ञ एक प्राचीन पौराणिक परम्परा है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों को पूर्ण किया जा सकता है तथा इस प्रकार शरीर के रोगों के निवारण के लिए यज्ञ का उपयोग सर्वजन्य के लिए हितकारी एवं लाभकारी है।

अभ्यास प्रश्न – क

1 यज्ञ को धरती का क्या कहा जाता है ?

2 श्रीमद्भागवत में कितने यज्ञों का वर्णन हैं ?

3 पंचमहायज्ञ कौन–कौन से हैं ?

5.6 एक सशक्त वैकल्पिक उपचार पद्धति यज्ञोपैथी :–

यज्ञ चिकित्सा इतनी सरल और उपयोगी है कि उसके आधार पर मारक और पोषक दोनों ही तत्वों को शरीर में आसानी से पहुंचाया जा सकता है। यों यज्ञ विज्ञान के अनेक पक्ष हैं। इनमें एक रोगोपचार भी है। मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि के साथ–साथ शारीरिक रोगों के निवारण में भी इससे ठोस सहायता मिलती है।

औषधि उपचार में शरीर के विभिन्न अवयवों तक पदार्थ को पहुंचाने का माध्यम रक्त है। रक्त यदि दूषित निर्बल हो तो यह प्रेषित उपचार पदार्थ का ठीक तरह परिवहन नहीं कर सकता। फिर एक कठिनाई और भी है कि रक्त में रहने वाले स्वास्थ्य प्रहरी श्वेत कण किसी विजातीय पदार्थ को सहन नहीं करते, उससे लड़ने–मरने को तैयार बैठे रहते हैं। औषधि जब तक रोग–कीटाणुओं पर आक्रमण होन पर प्रयुक्त औषधि और स्वास्थ्य कण आपस में भिड़ जाते हैं और यह नया विग्रह और खड़ा हो जाता है। पेट की पाचन क्रिया रक्त में उन्हीं पदार्थों को सम्मिलित होने देती है जो शरीर संरचना के साथ तालमेल रखते हैं। इसके अतिरिक्त जो बच जाता है, वह विजातीय कहा जाता है और उसे मल, मूत्र, स्वेद, कफ आदि के रूप में बाहर किया जाता है। इस पद्धति को देखते हुए यह भी एक अति जटिल कार्य है कि औषधियों में रहने वाले रसायन किस प्रकार विषाणुओं तक पहुंचे और किस तरह वहां जाकर अपना निवारक उपक्रम आरंभ करके उसे सफलता के स्तर तक पहुंचाए।

इस कठिनाई का हल यज्ञ–प्रक्रिया को चिकित्सा के लिए प्रयुक्त करने पर सहज ही संभव हो जाता है। औषधि को पेट में पचाकर रक्त में मिलकर श्वेतप्रहरियों से लड़ने के उपरान्त पीड़ित स्थान तक पहुंचने की लम्बी मंजिल पार नहीं करनी पड़ती वरन इस सारे जंजाल से बचकर एक नया ही रास्ता उसे मिल जाता है। शरीरशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि मात्र रक्त ही जीवकोशों की खुराक पूरी नही करता, वरन आहार श्वास द्वारा भी शरीर में पहुँचता है और वह इतना महत्वपूर्ण होता है कि उसकी गरमी मुंह द्वारा खाए और पेट द्वारा पचाए गए आहार की तुलना में किसी भी प्रकार से कम नहीं होती। रक्त की भांति प्राणवायु भी ऑक्सीजन के रूप में समस्त शरीर में परिभ्रमण करती है। पोषण पहुंचाने और गंदगी को हटाने में उसका बहुत बड़ा हाथ है। दृश्य रूप से जो कार्य पाचन और रक्ताभिसरण पद्धति से होता है अदृश्य रूप से वही सारा कार्य श्वासोच्छास क्रिया द्वारा भी सम्पन्न होता है। यह दोनों ही पद्धतियाँ मिलकर दो पहियों की गाड़ी की तरह जीवन रथ को गतिशील बनाए रहती है।

5.6.1 यज्ञोपैथी का सूक्ष्म विज्ञान :– स्वास्थ्य सुधार और रोग निवारण की आवश्यकता को पूरा करने के लिए श्वासोच्छास प्रक्रिया को अवलंम्बन बनाने पर अधिक लाभ उठाया जा सकता है जो रक्ताभिसरण पद्धति से आमतौर पर काम में लाया जाता है। इस मायम से न केवल विषाणुओं से सफलतापूर्वक संघर्ष संभव हो सकता है वरन् पोषण की आवश्यकता भी पूरी हो सकती है। यज्ञ द्वारा वायुभूत बनाई गई औषधियां सूक्ष्मता की दृष्टि इस स्तर पर पहुँच सकती है कि विषाणुओं से भी सूक्ष्म होने की विशेषता के कारण उन पर आक्रमण करके सरलतापूर्वक परास्त कर सकें। पाचन, परिवहन और प्रहरियों से उलझने जैसे झंझट इस मार्ग में नहीं हैं और विलय का अवरोध भी नहीं है। सांस द्वारा अभीष्ट पदार्थों को शरीर के अंतरंग किसी भी अंग–अवयव तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। इस चिकित्सा सिद्धान्त के अनुसार विषाणुओं का मारण जितना आवश्यक समझा जाता है, उससे कहीं अधिक स्वस्थ कोशिकाओं में समर्थता का एक पक्ष जहाँ विषाणुओं को मारना होता है, वहीं दुर्बलता को दूर कर संबलता का परिपोषण करना भी होता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति का सारा ध्यान संहार उपचार पर ही केन्द्रित रहता है। यह एकांगीपन जब तक दूर नहीं किया जाएगा, तब तक चिकित्सा प्रक्रिया अधूरी ही बनी रहेगी।

यज्ञ चिकित्सा में ये दोनों ही विशेषताएँ विद्यमान हैं। उसके माध्यम से उपयोगी रासायनिक पदार्थों को इतना सूक्ष्म बना दिया जाता है कि इस कारण वे अपने–अपने उपयुक्त प्रयोजनों को पूरा कर सकें। अणुओं में पया जाने वाला चुंबकत्व अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए वातावरण में से अभीष्ट मात्रा अनायास ही ग्रहण करता रहता है। यज्ञ–प्रक्रिया के सहारे वायुभूत रासायनिक पदार्थ शरीर संस्थान के समस्त भीतरी अवयवों में अनायास ही जा पहुँचते हैं और स्थानीय जीवाणुओं की आवश्यकता पूरी करते हैं। पेड़ आकाश में परिभ्रमण करने वाले बादलों को अपनी ओर खींचते हैं। घास की पत्तियाँ हवा में रहने वाले जलांश को अपने ऊपर ओंस के रूप में बरसा लेती है। सशक्त वायुभूत रसायन जब शरीर के भीतर पहुंचता है तो वहां की आवश्यकता सहज ही पूरी होने लगती है।

यज्ञोपैथी का सिद्धान्त विज्ञान के मूल सिद्धान्त पर आधारित है। विज्ञान में ताप, ध्वनि और प्रकाश को शक्ति की मूलभूत इकाई माना गया है। मन्त्र केवल ध्वनि है। शब्द की अपेक्षा ताप और प्रकाश की गति तीव्र है। मन्त्र को व्यापक बनाने के लिए उसके साथ ताप और

प्रकाश को यज्ञ के रूप में जोड़ना पड़ता है तभी वह अधिक शक्तिशाली और विश्वव्यापी बनता है तथा विभिन्न उददेश्यों में कारगर होता है। किसी भी चिकित्सा की सफलता के लिए भावनाएँ एवं विश्वास दोनों आवश्वक है। यज्ञ चिकित्सा के अन्तर्गत इन दोनों तत्त्वों का समावेश हमेशा रहता है।

यज्ञ द्वारा रोग निवारण की प्रक्रिया – यज्ञाग्नि जीवन ऊर्जा का मूल आधार है। जब हम यज्ञाग्नि में घृत, अन्न औषधियों आदि की आहुति देते है तब उनकी रोग निवारक गन्ध वायु मण्डल में फैल जाती है। उस वायु को श्वास द्वारा हम अपने फेफड़ों में भरते हैं। वहाँ उस वायु का रक्त से सीधा सम्पर्क होता है। वह वायु अपने विद्यमान रोग निवारक परमाणुओं को रक्त में पहुँचा देती है। उससे रक्त में जो रोग कृमि होते हैं वे मर जाते हैं और जब हम वायु को बाहर निकालते है तब उसके साथ वे दोष भी हमारे शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ द्वारा सुसंस्कृत वायु में बार–बार श्वास लेने से शनैः–शनैः रोगी स्वस्थ हो जाता है।

5.7 यज्ञ का समर्थ उपचार प्रक्रिया

यज्ञ ज्ञान का भण्डार है और विज्ञान का उद्‌गम। वैदिक ऋषियों द्वारा अविष्कृत यज्ञ मात्र श्रद्धा नहीं अपितु अद्‌भूत विज्ञान है, जो बहु उपयोगी है। यह ईश्वर भक्ति का साधन है, पर्यावरण की शुद्धि का कारक है, ग्रह शुद्धि का आधार, रोगों के बचाव के साधन है और रोगाणु नाशक है।

यज्ञ की वैज्ञानिकता को समझने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है। –

1 यज्ञ कुण्ड की आकृति
2 समिधाओं का चुनाव और उनका विशेष दहन
3 मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण
4 यज्ञ का समय विचार (मुहुर्त एवं प्रभाव)
5 सामगी का गुण विश्लेषण।

5.7.1 यज्ञ कुण्ड की आकृति – यज्ञ कुण्ड का ज्यामितीय आकार बहुत महत्व रखता है यह उल्टे पिरामिड के आकार का होता है। नीचे संकरा ऊपर चौड़ा। विभिन्न कामनाओं एवं यज्ञ के विभिन्न स्वरूपों के अनुसार कुण्डों की आकृति परिवर्तित होती है। जैसे – योनि कुण्ड, अष्ट कुण्ड, षष्टकुण्ड आदि। दूसरे शब्दों में इसे हम यज्ञ का एक विशेष यन्त्र कह सकते हैं जो कि ब्रह्माण्डीय शक्ति को आकर्षित कर अभिष्ट फल प्रदान करता है।

5.7.2 समिधाओं का चुनाव और उनका विशेष दहन – यज्ञ में समिधा का प्रयोग करने में महत्वपूर्ण विज्ञान छुपा हुआ है, जिन वृक्षों की समिधाएँ प्रयोग में ली जाती है, उनमें विशेष प्रकार के गुण होते हैं। किस प्रयोग के लिए किस प्रकार की हव्य वस्तुएँ होमी जाती है इसका भी विज्ञान है। उन वस्तुओं के जलने से एक विशेष गुण युक्त सम्मिश्रण तैयार होता है जो वायुमंडल में एक विशिष्ट प्रभाव पैदा करता है। समिधा के रूप में पलाश, गुलर,आम, मदार, पीपल, शमी आदि का प्रयोग होता है। भिन्न–भिन्न वृक्षों की समिधाओं के फल भी अलग–अलग कहे गये हैं। ग्रहों और देवताओं के हिसाब से भी कुछ समिधाएँ शास्त्रों में उल्लेख किया गया है।

देवताओं के लिए पलाश वृक्ष की समिधा कहा गया हैं पीपल सन्तान, संतति के लिए, गुलर को स्वर्ग देने वाली, शमी को पाप नाश करने वाली, दूर्वा को दीर्घायु देने वाली, मदार को

रोग नाश करने वाली और कुशा की समिधा सभी मनोरथ को सिद्ध करने वाली बताई गई है।

5.7.3 मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण – मनुष्य की शक्ति उसकी पहुंच बहुत सीमित है स्थूल रूप से वह दिव्य शक्तियों से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता है। सूर्य के पास जाकर कोई बैठना चहेगा तो उसका अस्तित्व ही मिट जाएगा। अग्नि, इन्द्र, वरूण यह सभी शक्तियॉ है। शक्तियों से स्थूल सम्पर्क नहीं साधा जा सकता है। इसलिए वैदिक ऋषियों ने उसके लिए एक विज्ञान की खोज की। जिसे वैदिक मन्त्र कहा जाता है।यज्ञ प्रक्रिया में मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण से विभिन्न प्रकार के तरंग पैदा होता है।

1 ध्वनि तरंग
2 भाव तरंग
3 विचार तरंग
4 औषधिय गैस तरंग।

वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि के मुख में आहुतियॉ डालते हैं। शब्द शक्ति भावनाओं के साथ पदार्थ को सूक्ष्म बनाकर उर्ध्वलोकों तक पहुँचाती है। मन्त्र में जिस शक्ति की प्रेरणा होती है अग्नि उस आहुति को उस देवता तक पहुँचा देती है। इस विज्ञान को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से ऋषियों ने खोजकर मानव जाति की कठिनाई दूर कर दी और किसी भी देव शक्ति से सम्पर्क स्थापित कर लाभान्वित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

5.7.4 यज्ञ का समय विचार (मुहुर्त एवं प्रभाव) – परमात्मा की प्रसन्नता के लिए पापों से छुटकारा पाने के लिए, बड़े यज्ञ जैसे रूद्रयज्ञ, लक्ष्य होम, कोटि होम, ज्योतिष्टोम आदि का अनुष्ठान करें तो ज्योतिष नियमों के अनुसार उनके मुहुर्त निकाले जाते हैं।

परसुराम दीपिका में कहा गया है जब पास में पैसा हो और चित्त में श्रद्धा हो तो उसी समय को पुण्य काल , शुभमुहुर्त मान लेना चाहिए। क्योंकि जीवन का कोई ठिकाना नहीं है आज है कल प्राण चला जा सकता है। इसलिए यज्ञ आदि शुभ कर्मों के लिए सभी दिन शुभ है।

स्काम यज्ञों में मुहुर्तों की आवश्यकता पड़ती है। यज्ञ आदि शुभ कर्मों में सोम, बुद्ध, गुरु, शुक्रवार सिद्धिप्रद हैं। **सोम सोम्य गुरु शुक्र वासराः कर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः**। (रत्नमाला) शुक्ल पक्ष की द्वितीय,तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, द्वादशी और त्रयोदशी विशेष उत्तम है। नारद संहिता में आर्द्रा, शतभिषा, स्वाति, रोहिणी, श्रवण, पूर्वाषाढ़ा, जेष्ठा, श्लेषा, रेवती, चित्रा, हस्त, घनिष्ठा यह नक्षत्र यज्ञ में शुभ माने गये हैं।

5.7.5 सामगी का गुण विश्लेषण – यज्ञ कार्य में प्रयुक्त होने वाले सम्पूर्ण सामग्री जैसे काष्ठ पात्र, पूजन पात्र, धूपदीप नैवेद्य एवं हवन सामग्री। इनकी शुद्धता एवं पवित्रता भी यज्ञ की महत्ता में विशेष स्थान रखता है।

ऋतुओं के आधार पर हवन सामग्री प्रयोग में लाया जाता है। छः ऋतुओं के लिए अलग–अलग हवन सामग्री प्रयुक्त होता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. यज्ञोपैथी का सिद्धान्त विज्ञान के किन मूल सिद्धान्त पर आधारित हैं ?
2. देवताओं के लिए ..... की समिधा कहा गया हैं ?

5.8 यज्ञ का ज्ञान–विज्ञान

सब विद्वान जानते हैं कि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म अधिक शक्तिशाली होता है तथा सूक्ष्म–सूक्ष्म में प्रवेश कर सकता है। आटे में मिले हुए बूरे के सूक्ष्म परमाणु पृथक करने को मनुष्य की स्थूल अंगुलियाँ असमर्थ हैं, पर चींटी की सूक्ष्म मुंह से उसे सुगमता से पृथक कर सकता है। सोने का एक छोटा टुकड़ा मनुष्य खा ले जो उस पर कोई प्रभाव न होगा पर उसी टुकड़े को सूक्ष्म करके अर्क बनाकर खाएं तो प्रथम दिन से ही उसकी गरमी अनुभव होगी और कुछ समय में चेहरे पर लाली और शरीर में शक्ति आ जाएगी।

होम्योपैथिक चिकित्सा विधि से इसी नियम के आधार पर औषधियों की पोटेन्सी तैयार की जाती है और औषधि का भाग जितना सूक्ष्म होता जाता है उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि जो औषधि स्थूल रूप में दिन में बार–बार खाने से साधारण रोग दूर कर सकती है, वही औषधि बहुत सूक्ष्म रूप में केवल एक मात्रा खाने से बड़े–बड़े रोगों को दूर कर देती है।

इस नियम पर दृष्टि रखते हुए विचार कीजिए कि क्षय कीटाणु की लम्बाई 1/15000 इंच और चौड़ाई 1/150000 इंच होती है। इतनी सूक्ष्म चीज पर बड़े कण वाली औषधियों की पहुँच जब न हुई तब वैज्ञानिकों ने उसको सूक्ष्मतम करने को इंजेक्शन की प्रथा चलाई, पर यह सब जानते हैं कि अग्नि से अधिक पदार्थों को सूक्ष्म और कोई नही कर सकता। हम नित्य ही देखते हैं कि एक लाल मिर्च को घोंटने लगे तो पास बैठे अनेक लोगों को खांसी आने लगेगी। अब यदि उसी मिर्च को आग में डाल दें तो उसकी धूम्र का प्रभाव दूर–दूर तक बैठे मनुष्यों पर हो जाएगा। इसी प्रकार हवन–यज्ञ में डाली औषधियों के परमाणु बहुत बारीक होकर श्वास द्वारा सीधे रक्त में प्रवेश करके रक्त को शुद्ध कर देते हैं। इसके वैज्ञानिक परीक्षण किए गए तो ज्ञात हुआ कि लौंग, जायफल जलाने पर गैंसों में तेलों के परमाणु 1/10000 से 1/100000000 सेंटीमीटर तक व्यास वाले पाए गए। अतः यह रोग–कृमि से अधिक सूक्ष्म होने के कारण सुगमता से उनके भीतर प्रवेश कर सकते हैं और अपने वैज्ञानिक गुण के कारण उनको मार सकते हैं।

यह पदार्थ विज्ञान से सिद्ध हो चुका है कि किसी पदार्थ का नाश नहीं होता केवल रूप बदल जाता है। अतः अग्नि में हवि जलाने से उसके परमाणु ही सूक्ष्म हो जाते हैं, उसका नाश नहीं होता। गुग्गल, घी, कपूर, इत्यादि क्षति भरने का कार्य नहीं ले सकते पर अग्नि में जलाकर उनके सूक्ष्म परमाणु सुगमता और सरलता से फैफड़ों में पहुंचा सकते हैं।

यजुर्वेद के 40 वें अध्याय के प्रथम मंत्र में संसार को जगत्याम् जगत्' बताकर इस सिद्धान्त का ज्ञान प्रभु ने कहा है कि जगत का प्रत्येक परमाणु गतिशील है। आज के वैज्ञानिक भी परीक्षण के पश्चात इस सिद्धान्त को सत्य स्वीकार करते हैं और साथ ही यह भी बताते हैं कि यह गति किसी नियम में बंधी हुई है। प्रत्येक परमाणु की गति एक सी नहीं होती। किन्तु किसी की गति एक समान होती है और किसी की एक दूसरे के विपरीत। दो समान वस्तुएं एक दूसरे को अपनी ओर खींचती हैं और दो विरुद्ध वस्तुएं एक दूसरे को भगाती हैं। अतः जिन दो वस्तुओं के परमाणु एक सी गति करते हैं, उनमें परस्पर आकर्षण होता है और विरुद्ध गति वाले परस्पर एक दूसरे को भगाते हैं।

इस नियम के आधार पर जो लोग शरीर में सड़न उत्पन्न करने वाले पदार्थ मांस, तम्बाकू इत्यादि प्रयोग करते हैं, उनके निकट जब क्षय कीटाणु पहुंचते हैं तो समानता के कारण उनका शरीर अपनी ओर उन्हें खींच लेता है और जो लोग लौंग, गुग्गल, घी इत्यादि

क्षयनाशक पदार्थों से हवन यज्ञ करके उनके सूक्ष्म परमाणु अपने शरीर में रखते हैं तो जब क्षय–कीटाणु उनके निकट आते हैं तब विरुद्ध गति होने के कारण वह दूर भाग जाते हैं। इसी कारण नित्यप्रति नियमपूर्वक यज्ञ करने वाले को कभी क्षय रोग नहीं हो सकता।

क्षय रोग के विशेषज्ञ डॉक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं कि क्षय रोगी को अधिक मात्रा में ऑक्सीजन युक्त वायु की आवश्यकता होती है। इसी कारण असाध्य रोगी को भी पहाड़ पर जाने की सहमति दी जाती है और बहुत असाध्य दिखने वाले रोगी भी इस प्राकृतिक ढंग से अच्छे भी हो जाते हैं, क्योंकि ऑक्सीजन फेफड़ों और आंतों की क्षति को शीघ्र सुखाने की शक्ति रखता है। साथ ही ऑक्सीजन की रगड़ से शरीर में अग्नि उत्पन्न होकर पाचनशक्ति को बढ़ाती है, जो क्षय रोगी में न्यून हो जाती है। इस ऑक्सीजन का एक सूक्ष्म भाग ओजोन होता है, जो बहुत धीमी सुगंध से शरीर में प्राणशक्ति का संचार करता है। जिस पहाड़ पर चीड़ के वृक्ष अधिक होते हैं उस पर ओजोन का यह भाग अधिक पाया जाता है। वैज्ञानिक ढंग से परीक्षण करके देख लिया गया है कि हवन–गैस में ओजोन का यह भाग बड़ी मात्रा में पाया जाता है।

संसार के समस्त वैज्ञानिकों के पास कोई ऐसी औषधि नहीं है कि जो क्षयरोगी को पौष्टिक पदार्थ अधिक मात्रा में पचा दे, पर हवन यज्ञ में हलवा, लड्डू, खीर, मेवा, घी इत्यादि सभी पदार्थ बड़ी मात्रा में जलाकर उनके सूक्ष्म परमाणु रोगी के रक्त में पहुंचा सकते हैं जो नाश न होने वाले वैज्ञानिक सिद्धान्त से शरीर में पहुंचकर उसकी प्राणशक्ति को बढ़ाएंगे और अग्नि को मंद करने के स्थान में अपने ओषजन के गुण से और तीव्र करेंगे।

5.8.1 यज्ञोपैथी का वैज्ञानिक परीक्षण :– अनुभव से देखा गया है कि जो रात–दिन सुस्त पड़े रहकर मौत की प्रतीक्षा करते थे, वही यज्ञ चिकित्सा करने पर कुछ दिनों में उत्साह और शक्ति का प्रदर्शन करने लगे। इसके पक्ष में अनेक युक्तियाँ दी जा सकती हैं पर विस्तार में न जाकर हम वैज्ञानिकों के कुछ परीक्षण लिखते हैं।

मद्रास के अंग्रेजी राज्य के सिनेटरी कमिश्नर डॉ. कर्नल किंग आर एम.एस. ने वहाँ प्लेग फैलने पर कॉलेज के विद्यार्थियों को उपदेश दिया कि घी, चावल और केशर मिलाकर जलाने से तुम रोग से सुरक्षित रहोगे।

फ्रांस के विज्ञानवेता प्रोफेसर टिलवट साहब कहते हैं कि जलती हुई खांड, शक्कर के धुंए में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति है। इससे हैजा, तपैदिक, चेचक इत्यादि का विष शीघ्र नष्ट हो जाता है। डॉ. टाटलिट साहब ने मुनक्का, किशमिश इत्यादि सूखे फलों को जलाकर देखा और मालूम किया कि इनके धुएं से टाइफाइड ज्वर के कीटाणु केवल आधा घंटे में और दूसरे रोगों के कीटाणु घंटे से दो घंटे में समाप्त हो जाते हैं।

फ्रांस के हेफकिन साहब, जिन्होंने चेचक के टीके का अविष्कार किया है, कहते हैं कि घी जलाने से रोग–कृमि का नाश हो जाता है।

कविराज पं. सीताराम शास्त्री अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि ''मैंने कई वर्षों की चिकित्सा के अनुभव से निश्चय किया कि जो महारोग, औषधि–भक्षण से दूर नहीं होते, वह वेदोक्त यज्ञों द्वारा अर्थात् यज्ञ– चिकित्सा से दूर हो जाते हैं।''

बरेली निवासी डॉ. फुन्दनलाल अग्निहोत्री ने अपनी पुस्तक में लिख है '' मैं प्रथम 25 वर्ष तक खोज और परीक्षण के पश्चात अब 26 वर्ष से क्षय–रोग की यज्ञ द्वारा चिकित्सा सैकड़ों रोगियों की कर चुका हूँ। उनमें ऐसे भी रोगी थे, जिनके क्षति, केविटी कई–कई इंच लम्बी

थी और जिनको वर्षों सेनिटोरियम और पहाड़ पर रहने पर भी अंत में डॉक्टरों ने असाध्य बता दिया पर वह यज्ञ चिकित्सा से पूर्ण निरोग होकर अब अपना कारोबार कर रहे हैं।

यज्ञ चिकित्सा की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा अब यह सिद्ध हो गया है कि वासा तथा गुग्गल जैसी औषधियों के हवन से उत्पन्न ऊर्जा तपेदिक जैसी घातक बीमारियों के जीवाणुओं को नष्ट कर देती है। अपराजिता नामक धूम्र ऊर्जा का उपयोग सभी प्रकार के कीटाणुओं–विषाणुओं का शमन करने में होता है। इसी प्रकार के गुण नीम, नागरमेथा और वच में भी हैं। इनका अधिकतर उपयोग रक्त शोधन एवं व्रण आदि में किया जाता है। इसकी पुष्टि भावप्रकाश नामक प्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रन्थ में भी की गई है। परीक्षणोपरांत निष्कर्ष निकाला गया है कि गुग्गल, लौंग, घी, शर्करा, चन्दनचूरा आदि का नित्य हवन करने वाले साधकों के शरीर में अग्नि–तत्व की प्रधानता होती है। फलस्वरूप रोग प्रतिरोधी क्षमता में अभिवृद्धि एवं जीवनीशक्ति का विकास साथ–साथ होता है। इसी तरह जायफल, गुग्गल आदि का मिश्रण हव्य रूप में प्रयुक्त करने पर जो यज्ञीय ऊर्जा वातावरण में फैलती है उससे प्रायः उसी प्रकार के रोगकारक जीवाणु–विषाणु नष्ट हो जाते हैं। रासायनिक विश्लेषण की दृष्टि से भी जायफल, जावित्री, चंदन, अगर, नागरमोथा जैसे पदार्थों में मनुष्य शरीर में पाए जाने वाले रोगों का निराकरण करने की क्षमता बताई गई है। सुगंधित तेल, गैसों का फेफड़ों की दृढ़ता पर अच्छा प्रभाव पड़ने की बात कही गई है। इसी तरह अग्निहोत्र से जो प्रचंड ऊर्जायुक्त सुगंधित ऊष्मा उत्पन्न होती है उससे आस–पास का वातावरण गरम हो जाता है और उससे एक प्रकार का फाइगोसाइटोटिस चक्र विनिर्मित होता है। एम्यूनिटी और फाइगोसाइटोटिस दोनों प्रक्रियाएं यजनकर्त्ता को स्वास्थ्य संवर्द्धन का लाभ देती है।

शरीरशास्त्रियों के अनुसार एक सामान्य युवा व्यक्ति के फेफड़ों में 230 वर्ग इंच वायु रहती है जिसमें से केवल 30 वर्ग इंच तक की वायु सांस छोड़ने पर बाहर निकलती है। शेष फेफड़ों में ही जमी रहती है। पर यदि जोर से गहरी श्वास ली जाए तो 130 वर्ग इंच तक अंदर की दूषित वायु बाहर निकल सकती है। इस प्रकार जितनी अधिक मात्रा में विषैली वायु बाहर निकलती है, श्वसन तंत्र में उतनी ही अधिक परिमाण में शुद्ध प्राणवायु भीतर भर जाती है। इस तरह अधिक मात्रा में प्रविष्ट हुई शुद्ध प्राणवायु उसी अनुपात से रक्त परिशोधन एवं शरीर का पोषण करती है। जीवनशक्ति की अभिवृद्धि होती है और अग्नि प्रदीप्त होकर रस और रक्त में सिंचित विषाक्तता को निष्कासित करती है। देखा गया है कि जहां यज्ञ आयोजन हो रहा होता है, वहां के वातावरण में यदि मनुष्य स्वाभाविक रूप से गहरी श्वास–प्रश्वास लें और अपने फेफड़ों को प्राणवायु से भरें, तो इसका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा एवं स्थायी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

इस संदर्भ में मूर्द्धन्य चिकित्सा विज्ञानी डॉ. त्रिले ने गहन खोजें की हैं। उनके अनुसार अग्निहोत्र में अग्नि के प्रज्वलन से वायु भार कम होता है और वह तीव्र गति से फैलता है। प्रकाश की अधिकता एवं तीव्र ताप के कारण सुगन्धित हव्य सामग्री शाकल्य के परमाणु वायु को शुद्ध करते हैं और श्वास तथा रोम–कूपों द्वारा शरीर में प्रवेश कर स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। पाया गया है कि वनौषधि और समिधाओं के जलने से जो उपयोगी वाष्पीभूत धूम्र एंव ताप ऊर्जा निकलती है, उससे सभी प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणुओं का शमन होता है। साथ ही वातावरण में प्राण की सशक्त तरंगें प्रवाहित होने लगती हैं और काया से प्रवेश कर नवजीवन प्रदान करती हैं। प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाती है एवं सामर्थ्य भरती

हैं। यज्ञीय ऊर्जा से शारीरिक, मानसिक व्यथाएं तो दूर होती ही हैं, मस्तिष्कीय क्षमताओं, विचारणाओं, भावनाओं में उच्च स्तरीय परिवर्तन का लाभ भी हस्तगत होता है।

5.8.2 यज्ञ एक आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान :– वस्तुतः यज्ञ एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान है, जिसमें औषधि के रूप में द्रव्य होम किए जाते हैं। ये बिना नष्ट हुए रूपांतरित होकर उच्चारित गायत्री महामंत्र की सम्मिलित एवं प्रभावपूर्ण स्वर शक्ति से परिपूरित होकर वातावरण में आध्यात्मिक तरंगे फैलाती हैं, जिससे मानव मन में संव्याप्त विकृतियों, विद्वेष, दुर्भाव, अनीति, अत्याचार, संकीर्ण स्वार्थपरता, कुटिलता आदि बुराईयों का शमन होता है तथा तनाव मिटता है। इस तथ्य का अन्वेषण प्राचीनकाल में ऋषियों ने बहुत पहले कर लिया था और यज्ञ को जीवन का एक अभिन्न अंग मानकर उसे दिनचर्या में सम्मिलित किया था।

अथर्ववेद के सूत्र **इदं मे अग्रे पुरुषां मुमुरवम्**' में कहा गया है कि उन्माद–सनकी व्यक्ति भी इस यज्ञाग्नि के प्रभाव से रोगमुक्त हो जाते हैं। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि यज्ञ चिकित्सा के क्षेत्र में हुए आधुनिकतम अनुसंधानों का सिलसिला अब विश्वभर में चल पड़ा है। कैलीफोर्निया की अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी एंव सोलिसवर्ग, स्विटजरलैंड की यूरोपियन रिसर्च यूनिवर्सिटी ने इस सम्बन्ध में गहरे अन्वेषण किए हैं और इसके परिणामों से विज्ञान क्षेत्र की प्रतिभाओं को अवगत कराया है। वर्जीनिया में एक अग्निहोत्र मंदिर की ही स्थापना की गई है, जिसमें विशेष स्तर की अग्नियों पर कुछ विशेष प्रकार के पदार्थ एवं वनस्पतियां हवन की जाती हैं, साथ ही खाद्य पदार्थ पकाए और रोगियों को खिलाए जाते हैं। यज्ञाग्नि से बची हुई भस्म का भी औषधियों की तरह प्रयोग किया जाता है। इसी तरह के प्रयोग–परीक्षण चिली, पोलैंड तथा पश्चिमी जर्मनी में भी चल रहे हैं।

इन प्रयोगों में न केवल अनेक वनौषधियां प्रयुक्त होती हैं, वरन अनेक स्तर की समिधाओं का भी एक दूसरे से भिन्न प्रकार का प्रतिफल पाया गया है। अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि जिन क्षेत्रों में इस प्रकार के यज्ञ आयोजन हुए हैं, वहां अपराधों की संख्या कम हुई है। नशेबाजी, घटना, हड़तालें कम होना, सड़क दुर्घटनाओं में कमी होना, मानसिक तनाव एवं पारस्परिक मनोमालिन्य में घटोतरी दिखाई पड़ना आदि यज्ञीय वातावरण की प्रत्यक्ष उपलब्धियाँ देखी गयी हैं। जिन परिवारों में अग्निहोत्र का प्रचलन हुआ है, उनमें बीमारी के प्रकोप एवं औषधि व्यय में कमी हुई है। कैलीफोर्निया में सीनेटर रॉबर्ट बोडार्ड एवं अमेरिकी मनोवैज्ञानिक बेरी राथनेर ने इस दिशा में बहुत काम किया है।

अमेरिका के रेंडल टाउन, मैरीलैंड स्थित लेडी लिंडका का 'अग्निहोत्र संस्थान' हवन चिकित्सा के लिए ख्याति प्राप्त कर रहा है। वहां नित्य नियमित रूप से यज्ञ होता है और रोगियों पर उसके प्रभाव–प्रतिफल की वैज्ञानिक जांच–पड़ताल की जाती है। अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि यज्ञीय धूम्र–ऊर्जा का लाभदायक परिणाम तो होता ही है, यज्ञ भस्म भी चमत्कारी सत्परिणाम प्रस्तुत करती है। इसके प्रयोग से हर कोई लाभान्वित हो सकता है।

यज्ञ भस्म हवनकुण्ड में शेष बची हुई राख को कहते हैं। यों इसे अधिक से अधिक कोई मांगलिक पदार्थ माना जा सकता है, पर कई बार उसके उपयोग से बहुमूल्य औषधियों से भी अधिक प्रभावी परिणाम निकलता देखा गया है। उसे पौष्टिक खाद्य पदार्थों के रूप में स्वास्थ्य –संवर्द्धन के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। सूक्ष्म सामर्थ्य से सम्पन्न यज्ञ भस्म–चरू अथवा कोई भी पदार्थ अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक, बलवर्द्धक हो सकता है। जिसकी

तुलना महंगी औषधियाँ एवं फल–मेवे भी नहीं कर सकते। पश्चिम जर्मनी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक बर्ट होल्ड जैहल ने हवन की भस्म पर गहन अनुसंधान किया है। वे इस राख का विभिन्न बीमारियों पर नये–नये परीक्षण करने में निरत हैं। उनका कथन है कि हवन से बची अवशिष्ट राख रोगों के उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। होम्योपैथी दवाओं की तरह तथा आयुर्वेद के अनुपान भेद की विधि द्वारा रोगियों को देन के उपरान्त उसका परिणाम जांचने–परखने के बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि सामान्य सी लगने वाली इस भस्म में असामान्य रोग निरोधक क्षमता विद्यमान होती है। होम्योपैथी एंव एलोपैथी दवाओं के प्रयोग से होने वाले साइड इफेक्ट का शमन करने की क्षमता इसमें विद्यमान है। अपने अनुसंधान कार्य को आगे बढ़ाते हुए अब तक हवन–भस्म को खाने, मलहम लगाने, अग्निहोत्र आईड्राप, अग्निहोत्र शलाका, अग्निहोत्र क्रीम इत्यादि के निर्माण में सफलता पाई है। शारीरिक रोगों से अधिक इन दिनों मानसिक रोग फैले हैं। व्यक्तित्व को विकृत बनाने वाली सनकें तथा आदतें ऐसी मानसिक बीमारियां हैं, जो मनुष्य को अर्द्ध विक्षिप्त बनाए रखती हैं। ऐसे व्यक्ति स्वयं दुःख भोगते और साथियों को दुःख देते हैं। उनका कारगर उपचार अन्य चिकित्सा पद्धतियां तो प्रस्तुत नहीं कर सकीं, पर विश्वास है कि यज्ञोपचार शारीरिक और मानसिक रोगों से उससे कहीं अधिक छुटकारा दिला सकेगा जितना कि अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियां मिल–जुलकर दिलाती हैं।

5.8.3 यज्ञ द्वारा वायुमण्डल शोधन :– अग्निहोत्र से न केवल मनुष्य लाभान्वित होता है, वरन अन्यान्य प्राणियों के स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन प्रक्रिया के अतिरिक्त भी इसके अनेकानेक लाभ हैं। वायुमण्डल में व्याप्त विषाक्तता का अनुपात कम करने, उसे निरस्त करने की उसमें अपूर्व क्षमता है। हवन की गैसों में कार्बन मोनोऑक्साइड का अत्यल्प अंश रहने पर भी औषधियों, घृत आदि द्रव्य पदार्थों का वाष्पीय प्रभाव उसे नष्ट करके लाभकारी बना देता है। उसमें स्थित उड़नशील सुरभित पदार्थ निर्विघ्न रूप से लाभदायक परिणाम प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त हवन–गैस से स्थान, जल, मिट्टी आदि अनेक तत्वों की शुद्धि हो जाती है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है और पोषक अणुओं को बढ़ाने वाले आवश्यक तत्व उसमें बढ़ जाते हैं। इसी कारण अग्निहोत्र धूम्र से पूरित पर्जन्य से युक्त मेघ अणु और औषधियों को निर्मलता तथा पुष्टि प्रदान करते हैं।

5.8.4 रोगाणु निरोधक एवं कीटनाशक के रूप में उपयोग :–

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने रोग–कीटाणुओं के नाश के लिए दो पदार्थ निकले हैं – 1. एन्टीसेप्टिक, विष विरोधी और 2. डिस इन्फैक्ट्स, छूत के प्रभाव को रोकने वाले। प्रथम श्रेणी के पदार्थ रोग–कीटाणुओं से मनुष्य की रक्षा करते हैं, मारते नहीं। इस श्रेणी में फिनाइल, क्रियोजोट, हाइड्रोजन परऑक्साइड आदि की गणना की जाती है। दूसरी श्रेणी के पदार्थ रोगाणुओं को सीधे मार देते हैं। कुछ पदार्थों में दोनों गुण उसकी सघनता और विरलता की स्थिति के अनुसार पाए जाते हैं, पर इन तत्वों का सही प्रयोग कुशल वैज्ञानिक ही कर सकते हैं। साधारण लोग उसकी मात्रा का सही परिणाम नहीं कर सकने के कारण लाभ के स्थान पर हानि भी उठा सकते हैं और यह हानि तीव्र घातक होती है।

हवन–गैस इस दोष से रहित है। कदाचित कुछ विषैला अंश रहे भी तो घृत का वाष्पीय प्रभाव उसे नष्ट करके लाभकारी बना देता है। इसमें स्थित क्रियोजोट, एल्डीहाइड, फिनायल और दूसरे उड़नशील सुरभित पदार्थ वैसा ही लाभ देते हैं, जिससे सभी निर्विघ्न रूप से लाभ उठा सकते हैं।

शुद्ध वायु के अतिरिक्त हवन गैस से स्थान, जल आदि अनेक तत्वों की शुद्धि भी हो जाती है, जिससे पर्जन्य के द्वारा अन्न और औषधियाँ भी निर्मल और परिपुष्ट हो जाती हैं। इससे मानव शरीर रोगाणु निरोधक अणुओं से भरपूर हो जाता है। फिर उस पर रोगों का आक्रमण हो जाए तो कदाचित सफल भी हो जाए तो उसके शरीर में स्थित शक्तिशाली रोग–विध्वंशक अणु उसे अधिक समय तक जीवित रहने नहीं देते, उनका शीघ्र ही विनाश कर देते हैं।

खरगोश और चूहों पर ये परीक्षण करके हवन–गैस की रोग निरोधक और रोग विनाशक शक्तियाँ सिद्ध कर ली गई हैं।

परीक्षण के लिए रोग–कीटाणुओं का घोल तैयार किया गया है। उसे सबल–स्वस्थ जानवरों को देह में प्रवेश कराने से वह उस रोग से आक्रांत हो जाता है। उसी के या दूसरे स्वस्थ जानवरों के शरीर में जब उस घोल में हवन–गैस मिश्रित कर प्रवेश कराया जाता है, तब वह रोगी नहीं होता। बारम्बार यह प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है।

5.8.5 कृषि में यज्ञोपैथी का सफल प्रयोग :–कृषि में भी हवन–गैस की लाभदायकता सिद्ध हो चुकी है। मिट्टी में दो तरह के कीटाणु होते हैं, उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाल तथा दूसरे उसे नष्ट करने वाले। पाश्चात्य विज्ञान ने उर्वरा शक्ति नष्ट करने वाले कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए जो घातक द्रव्य तैयार किया है उसे मिट्टी में मिला देने से उर्वरा शक्ति–विनाशक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, जिससे पोषक कीटाणुओं की वृद्धि होकर उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। पर उनमें दोष यह है कि उसे शीघ्र ही मिट्टी से अलग नहीं करने पर वह उर्वरा शक्तिवर्द्धक कीटाणुओं का भी विनाश कर डालती है।

इस संदर्भ में अमेरिका के वाशिंगटन शहर में एक अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी की स्थापना की गई है। इसे साईं परांजये ने स्थापित किया है। वे यज्ञ द्वारा खेतों में फसल के बढ़ने का प्रतिपादन करते हैं। रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाओं से ऊबे अमेरिकनों को वे विकल्प के रूप में मंत्रोच्चार से दी गई घी की आहुतियों का मार्ग सुझाते हैं। विश्वविद्यालय की यह मान्यता है कि फसलों के सभी रोगों का रामबाण इलाज यज्ञ है। यज्ञ से फसल उत्पादन में वृद्धि की इस पद्धति को उन्होंने 'होम थेरेपी फार्मिंग' नाम दिया है।

खेतों में नियमित किए गए यज्ञ से वातावरण शुद्ध होता है एवं इससे पौधों में तेजी से बढ़ने व जमीन से अधिक शक्ति खींचने की सामर्थ्य आती है। इससे जो फसल होती है वह स्वादिष्ट होती है। 200 एकड़ तक के खेतों के मध्य किए गए यज्ञ से पौधों की जड़ों का स्वरूप ही बदल जाता है। लंबाई में भले ही कोई फरक न आए, उनकी जमीन से पोषकतत्व खींचने की सामर्थ्य में निश्चित ही वृद्धि होती है। इसके लिए विश्वविद्यालय ने अपने खेतों पर ही प्रयोग किए हैं, निष्कर्ष यह निकाले गए हैं कि यज्ञ करने से जमीन में नमी ज्यादा बनी रहती है। यदि पानी की सिंचाई के साथ स्नेह, श्रद्धा का पुट हो एवं मंत्रोच्चार भी किए जाए तो परिणाम और भी अच्छे होते हैं। पौधे भी स्नेह के भूखे हैं। यदि किसान अपनी फसल से प्यार करे, उन्हें पुचकारे तो वे बीमार नहीं होते, अच्छा उत्पादन देते हैं।

सभी का अनुभव है कि पौधों की बीमारियों के लिए प्रयुक्त कीटनाशक दवाओं से जमीन कमजोर होती है एंव फसल का उत्पादन भले ही बढ़ जाए, गुणवत्ता की दृष्टि से वह गौण होती है। इसी कारण कीटनाशक दवाओं के उपयोग पर अब पुनर्विचार किया जा रहा है। अग्निहोत्र विश्वविद्यालय कीटाणुओं के नाश के लिए यज्ञ की राख एंव गोबर की खाद का

प्रचार कर रहा है। पानी में राख मिलाकर उसकी सिंचाई से पौधों की जीवनीशक्ति में वृद्धि होती है, जिससे वे कीटाणुओं से ठीक तरह लड़ पाते हैं। मंत्रोच्चार के साथ की गई सिंचाई पौधों की सामर्थ्य में और भी वृद्धि कर देती है। अग्निहोत्र विश्वविद्यालय के अनुसार ये मंत्र पौधों के लिए टॉनिक का काम करते हैं।

आज की फसलों की गिरती गुणवत्ता के पीछे वे वातावरण प्रदूषण को मुख्य कारण मानते हैं। इसीलिए यज्ञ की महत्ता भी प्रतिपादित करते हैं, जो वातावरण को शुद्ध करता है। धूम्रकृत औषधियाँ, घी, धान, हवा में मिलकर उसे शुद्ध करती हैं एवं फिर वर्षा के माध्यम से जमीन में पहुंचकर जड़ों का पोषण करती हैं। उनके अनुसार यज्ञ का धुआँ पहले पूरब की ओर उड़ता है, फिर घड़ी की तरह घूमता है। इसका प्रभाव आठ किलोमीटर की परिधि में होता है। इससे उन्हें विश्वास है कि अमेरिका के दक्षिणी भाग में लगने वाले 'अल्बीनो' नामक फसल नाशक कीड़े को समाप्त कर सकेंगे।

वैज्ञानिकों द्वारा हवन–गैस को कुछ समय तक मिट्टी पर डालकर देखा गया है और पाया गया कि इससे उसकी उर्वराशक्ति बहुत बढ़ जाती है और पोषक अणुओं को बढ़ाने वाले आवश्यक तत्व उसमें भर जाते हैं। उनका निष्कर्ष है कि इन्हीं तत्वों के कारण यज्ञीय–गैसों से पूरित पर्जन्य और बादल अन्न और औषधियों को निर्मलता और पुष्टि प्रदान करते हैं।

5.8.6 सात्विक गुणों के अभिवर्द्धन एवं मानसिक संतुलन में उपयोगी :– बादलोंको सात्विक गुणों वाले एंव निर्मल– पुष्ट बनाने के लिए यज्ञ–धूम्र के अणुओं का उसमें प्रविष्ट कराना सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिए जिस देश में अधिक अग्निहोत्र और यज्ञ कर्म होते हैं, वहां की सृष्टि सवगुणों से भरी होने के कारण अन्न और औषधियों में भी वे गुण ओत–प्रोत हो जाते हैं। अन्न का सूक्ष्म अंश ही मन की पुष्टि करता है। अतः यज्ञीय देशों के निवासियों का मन भी सात्विक निर्मलता से अनुप्राणित होता रहता है। वहां के निवासियों के जीवन और गति में सात्विक तत्व संचरित होता है। आज सारे संसार में ही अग्निहोत्र करने की विशेष आवश्यकता है। गत महायुद्ध में भिन्न–भिन्न विषैली गैसों के कारण आकाश, वायु, बादल आदि सभी में वह विष भर रहा है। इसी से सर्वत्र विषैली राजसी–तामसी भावनाओं ने ही अन्न, वनस्पति, सभी प्राणी और मनुष्यों में अपना आधिपत्य जमा रखा है। फलतः सर्वत्र रोग, पीड़ा अशांति और संघर्ष फैला हुआ है। इसके निवारण का एक ही हल है सभी देशों और स्थानों में शास्त्रीय विधि से किए गए विभिन्न अग्निहोत्र।

अग्निहोत्र से जो वायुमण्डल में घी और हवन–सामग्रियों के धुंए के अणु फैलते हैं, उनमें नेगेटिव चार्ज के विद्युत अणु प्रवेश कर जाते हैं। यह आज के भौतिक विज्ञान के प्रयोग द्वारा सिद्ध हो चुका है कि नेगेटिव चार्ज के लिए विद्युत अणु वायुमंडल में से नमी को खींच लेते हैं अैर धीरे–धीरे इसके आस–पास बादल के खंड बन जाते हैं। ये बादल यज्ञीय धूम्र अणुओं से ओत–प्रोत रहते हैं। इनका विषैला अंश नष्ट हो जाता है। ऐसी वृष्टि से भी केवल मनुष्य में ही नहीं प्राणीमात्र, वनस्पति और मिट्टी में भी साविक भावों का संचार हो जाता है।

जर्मनी में वैज्ञानिकों द्वारा किए प्रयोगों से भी अब यह सिद्ध हो गया है कि रोग–कीटाणुओं को मारने की जितनी शक्ति यज्ञ ऊर्जा में है उतनी सरल, व्यापक और सस्ती पद्धति अभी तक नहीं खोजी जा सकी है। यज्ञ को प्राचीनकाल में शारीरिक व्याधियों और मानसिक व्याधियों के शमन में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा रहा है। यज्ञ चिकित्सा के खोये हुए पृष्ठ यदि फिर से ढूंढ़े जा सकें और इस विज्ञान को नये सिरे से सुव्यवस्थित किया जा

सके तो ऐसे सत्परिणामों की पूरी–पूरी संभावना है कि शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोगों का भी सफल उपचार किया जा सके। चिकित्सा पद्धतियों में यज्ञ चिकित्सा को इसलिए वरिष्ठता मिल सकती है कि औषधियों को सूक्ष्म वायुभूत बनाकर शरीर में अत्यन्त सरलता से पहुंचाया जा सकता है। औषधि उपचार में स्थूल प्रक्रिया अपनाये जाने के कारण इतनी गहरी पैठ इतनी जल्दी नहीं हो सकती। आज के रुग्णता का पर्यवेक्षण करने से प्रतीत होता है कि शारीरिक रोगों से भी अधिक अर्द्ध–विक्षिप्तता, सनकें, बुरी आदतें, अपराधी प्रवृत्तियां, उच्छृंखलता, आवेशग्रस्तता, अचिंत्य, चिंतन, दुर्भावना जैसी मानसिक व्यथाएं मनुष्य को कहीं अधिक दुःख दे रही हैं और विपत्ति का कारण बन रही हैं। इस संकट का निवारण यज्ञोपचार का सुव्यवस्थित रूप बन जाने पर भली प्रकार हो सकता है। जिस–तिस रूप में चल रही वर्तमान यज्ञ–प्रक्रिया में किसी न किसी रूप में शारीरिक और मानसिक व्याधियों के समाधान में बहुत कुछ सहायता मिलती है।

यज्ञोपचार प्रक्रिया में किस रोग में, किस विधान से, किस मंत्र एवं औषधि का उपयोग किया जाए, इसकी रहस्यमयी विद्या का मंथन आज फिर से किया जाना जरूरी है। शांतिकुंज के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में यज्ञविद्या को, विशेषतया अग्निहोत्र को अपने शोध में सम्मिलित किया गया है। ब्रह्मवर्चस अग्निहोत्र प्रयोगशाला विश्व में अपने ढंग की अनोखी है। उसमें बहुमूल्य वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा इस प्रक्रिया का समग्र विश्लेषण किया जा रहा है। एक विशाल वनौषधि उद्यान भी यहां लगाया गया है। इन प्रयोगों से जो प्रतिफल सामने आए हैं, वे आशाजनक एंव उत्साहवर्द्धक हैं।

5.9 यज्ञोपैथी व रोगोपचार

यज्ञ–चिकित्सा पद्धति में भी अन्य पद्धतियों के समान यह देखा जाता है कि शरीर में किन–किन तत्त्वों की कमी है, क्योंकि रोगों का प्रमुख कारण शरीर में अनावश्यक तत्वों की वृद्धि एवं आवश्यक तत्वों की कमी ही होती है। आचार्य श्रीराम शर्मा ने शरीर की रोगनिरोधक सामर्थ्य की वृद्धि में 'यज्ञकर्म' को प्रधानता दी है। इस पद्धति को 'यज्ञ चिकित्सा' के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने इस महत्वपूर्ण चिकित्सा पद्धति के कुछ आयामों को **'ब्रह्मवर्चस की वैज्ञानिक यज्ञशाला'** में सिद्ध करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार रोग निरोधक सामर्थ्य को विकसित करने में 'यज्ञ में होमकृत' पदार्थों या हविष्य को प्रमुख माना गया है। इस हविष्य में औषधियों का सम्मिश्रण, घृत, समिधाएँ एवं पूर्णाहुति में डाले जाने वाले पदार्थ प्रमुख हैं। इन सभी के गुण व प्रभावकारी घटक पृथक–पृथक हैं।

सर्वरोगहारी औषधि — आचार्य श्रीरामशर्मा ने कुछ प्रमुख औषधियों को सभी रोगों के निवारण हेतु लाभदायी पाया है। उन्होंने इन औषधियों का निर्धारण वेदों तथा आयुर्वेदिक पद्धति के आधार पर किया है, जिसे प्रयोग व परीक्षाण के आधार पर उपयुक्त सिद्ध किया जा चुका है।

ये औषधियाँ हैं – अगर, तगर, देवदारु, चन्दन, रक्त चन्दन, गुग्गुल, जायफल, लौंग, चिरायता, अश्वगंध इत्यादि। इन दस औषधियों को समान मात्रा में , रोगानुसार निर्धारित अन्य औषधियाँ को भी इसी मिश्रण में मिला लेना चाहिए, तैयार मिश्रण में उसके दसवें भाग के बराबर शर्करा एवं दसवाँ भाग घृत मिलाना चाहिए। तत्पश्चात् इस मिश्रण से हवन करना लाभदायी है।

5.9.1 विभिन्न रोगों की विशेष हवन–सामग्री

रक्त विकार की विशेष हवन–सामग्री :–

1. धमासा, 2. सारिवा 3. कुटज कुड़े की छाल 4. अडूसा 5. शरपुंखा, 6. मजीष्ठा, शुद्ध रास्त्रा, 8. खदिर खैर, 9. शीतल चीनी, 10. चोप चीनी, नीम के फूल या पत्ते, 12. दारूहलदी, 13. कपूर, 14. मेथी के बीज, 15. पद्माख, 16. मेंहदी पत्र, 17. चक्रमर्द बीज, 18. चमेली के पत्ते, 19. हरड़।

नोट सभी 19 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम को जल से खिलाएं। परहेज खटाई एवं तली चीज नहीं खाएं। इसी सामग्री से विधिपूर्वक सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करें।

खांसी की विशेष हवन सामग्री :– सर्दी, जुकाम एंव सम्बन्धित ज्वरों पर

1. मुलहठी, 2. पान जड़, कुरदान, 3. हलदी 4. अनार, 5. कंटकारी, 6. बहेड़ा 7. उन्भाव, 8. अंजीर की छाल।

नोट– सभी 8 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम को शहद से खिलाएं।

इसी सामग्री से विधिपूर्वक सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करें।

चर्मरोग की विशेष हवन सामग्री :–

1. चोप चीनी, 2. नीम के फूल या पत्ते, 3. चमेली के पत्ते, 4. दारूहलदी 5. कपूर, 6. मेथी के बीज, 7. पद्माख, 8. मेंहदीपत्र, 9. चकोड़ा चक्रमर्द बीज।

नोट– सभी 9 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम जल से खिलाएं। परहेज खर्टा एवं गरिष्ठ पदार्थ न खायें।

दस्त की विशेष हवन–सामग्री – डायरिया, आंव एंव सम्बन्धित रोगों में

1. सफेद जीरा, 2. दालचीनी, 3. अजमोद, 4. बेलगिरी, 5. चित्रक 6. अतीस, 7. सोंठ, 8. चव्य।

नोट– सभी 8 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम दही, मठ्ठा या जल से लें।

परहेज दूध, तली एवं गरिष्ठ चीजें न लें।

इन्हीं औषधियों की हवन सामग्री से सूर्य गायत्रीमंत्र से हवन करें।

वात–व्याधि की विशेष हवन–सामग्री :– साइटिका, कमर दर्द, जोड़ों के दर्द

1. ग्वारपाठे की जड़ , 2. रास्ना, 3. गुरगुल, 4. सलई गोंद 5. बालछड़ जटामांसी, 6 सहजन मुनगा छाल, मेथी के बीज, पुनर्नबा, 9. तेजपत्र, 10. निर्गुंडी सम्हालू।

नोट सभी 10 चीजों को मिलाकर एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम शहद से खिलाएं। परहेज खटाई एवं ठंडी चीजें न लें।

इन्हीं औषधियों की हवन–सामग्री से सूर्य गायत्रीमंत्र से हवन करें।

शीतज्वर की विशेष हवन–सामग्री :– – पटोल पत्र, नागरमोथा, कुटकी, नीम की छाल, गिलोय, कुडे की छाल, करन्जा, नीम के पुष्प।

खाँसी की विशेष हवन–सामग्री :– मुलहठी, पान, हल्दी अनार, कटेरी, बहेड़ा, उन्नाव, अंजीर की छाल।

सरस्वती पंचक विशेष हवन सामग्री :–

बुद्धिवर्धक, मेधासंवर्द्धक, दिमागी थकान, मिरगी आदि मस्तिष्कीय रोगों में

1. ब्राह्मी, 2. शंखपुष्पी 3. शतावर, 4. गोरखमुंडी, 5. मीठी वच।
नोट – सभी 5 चीजों को मिलाकर हवन व एक–एक चम्मच सुबह, एक चम्मच शाम दूध या घी–शक्कर से सेवन कराएँ।

5.9.2 यज्ञ चिकित्सा में प्रमुख उपयोगी मंत्र :–

1. सूर्य गायत्री मंत्र भास्कराय विद्महे, दिवाकराय धीमहि। तन्नो सूर्य्यः प्रचोदयात्।
2. चन्द्र गायत्री मंत्र क्षीरपुत्राय विद्महे, अमृत–तत्वाय धीमहि। तन्नो चंद्रः प्रचोदयात्।
3. सरस्वती गायत्री मंत्र सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्र्ये धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।

अभ्यास प्रश्न – ग

1. प्लेग के रोग में किन–किन हवन सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है ?
2. भारतवर्ष में मन्त्र व यज्ञोपैथी का प्रथम प्रयोगशाला कहाँ स्थापित है ?
3. बुद्धिवर्धक, मेधासंवर्द्धक हवन सामगी का क्या नाम हैं ?

5.9.3 सावधानियाँ –

यज्ञोपैथी द्वारा रोगों की चिकित्सा के लिए निम्न प्रक्रिया एंव सावधानियां अपनानी पड़ती हैं–

1. सर्वप्रथम रोगानुसार औषधि हवन सामग्री का चयन करते हैं।
2. अग्नि प्रज्ज्वलन हेतु समिधा का चयन करते हैं। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख समिधाएँ हैं।
आम्र, पीपल, बेल, अशोक इत्यादि।
3. रोगानुसार मुख्य हवन सामग्री एवं सामान्य हवन सामग्री निश्चित करते हैं।
4. जिस विशेष हवन सामग्री का चयन यज्ञ के लिए किया जाता है उसका उपयोग चूर्ण के रूप में किया जाता है।
5. हवन–सामग्री के साथ गोघृत का प्रयोग किया जाता है।
6. रोगानुसार मंत्र का प्रयोग करते हैं। सामान्यतः शारीरिक रोगों में सूर्य गायत्री मंत्र का प्रयोग किया जाता है तथा मानसिक रोगों में चन्द्रगायत्री मंत्र का प्रयोग किया जाता है।
7. हवन सामग्री को जलती हुई अग्नि के मध्य डालें एवं प्रत्येक आहुति के पश्चात लम्बी गहरी श्वास लें। यज्ञ के पश्चात यज्ञ स्थल पर प्राणायाम करें।
8. यज्ञ प्रातःकाल में पूर्ण मनोयोग से स्वच्छ सूती वस्त्र धारण कर सम्पन्न करें।

5.10 सारांश

प्राचीनकाल में यज्ञ किसी विशेष साधना या मंत्र–तंत्र की तरह नहीं समझे जाते थे, वरन् वे मनुष्य जीवन का एक स्वाभाविक अंग थे। यज्ञों के जो विभाग किए गए थे, उनमें से कुछ ऋतुओं के आधार पर थे, कुछ मनुष्यों के कर्त्तव्य कर्म को दृष्टिगोचर रखकर नियत किए थे और कुछ राष्ट्रीय व्यवस्था से सम्बन्ध रखते थे। इस प्रकार आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समस्याओं की पूर्ति के लिए जो सामुदायिक और सामाजिक कार्य किए जाते थे।

पंच महायज्ञों द्वारा सौर और चन्द्र संसार को आप्लावित करके अतिथियों, वृद्धों, रोगियों, पतितों, पशु–पक्षियों और कीट पतंगों तक को आहार पहुंचाने से बढ़कर सेवा की भावना

और पुण्य कार्य क्या हो सकता है ? इससे मनुष्यों में करूणा, क्षमा, अहिंसा के भावों की वृद्धि होती है और उनका जीवन केवल भौतिक में न रहकर दैवी गुणों से सम्पन्न होता है। जो मनुष्य इतना सब करके भी निःस्वार्थ भाव से कहता है 'इदं न मम' अर्थात यह मेरा नहीं है, जो कुछ है सब ईश्वर का ही है, वह सांसारिक प्रपंच और कर्म–बंधन में नहीं फंस सकता है। यही निष्काम भावना 'यज्ञ' की सबसे बड़ी विशेषता है। जैसा भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है **यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः** अर्थात यज्ञीय कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्म बंधन करने वाले ही हैं। इस प्रकार यज्ञ का कर्म समझने वाला और तदनुसार आचरण करने वाला मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

5.11 शब्दावली

1. सूक्ष्मीकरण – स्थूल वस्तुओं का सबसे छोटा सा छोटा रूप करना।
2. श्वेतप्रहरी – सफेद रक्त कणिकाएँ।
3. यज्ञशिष्ट – यज्ञोपरान्त बचा हुआ प्रसाद।
4. पोटेन्सी – शक्ति, क्षमता।
5. पंचक – पांच औषधियों का समूह।

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. लघु सूर्य 2.तीन 3. ब्रह्म, देव, पितृ, नृ और भूत बलि (वैश्वदेव यज्ञ) अभ्यास प्रश्न – ख 1. ध्वनि, ताप व प्रकाश 2. पलाश वृक्ष
अभ्यास प्रश्न – ग 1. घी, चावल और केशर मिलाकर 2. ब्रह्मवर्चस हरिद्वार 3. सरस्वती पंचक

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.	यज्ञ चिकित्सा	–	ब्रह्मवर्चस्
2.	यज्ञ का ज्ञान–विज्ञान वांगमय 25	–	पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
3.	यज्ञ एक समग्र उपचार प्रक्रिया वांगमय 26	–	पं. श्रीरामशर्मा आचार्य
4.	आर्यों की यज्ञ प्रक्रिया	–	डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त
5.	अध्यात्म के स्वर	–	डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

5.113 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यज्ञ के अर्थ एवं स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालिए ?
2. यज्ञ के प्रकारों का सोदाहरण विस्तार पूर्वक वर्णन किजिए ?
3. यज्ञ की क्या महत्ता है ? उदाहरण सहित लिखिए।
6. यज्ञ मानव जाति का मूल धर्म रहा है। इस तथ्य की पुष्टि कीजिए।
7. यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए ?

इकाई–6 विभिन्न मन्त्रों द्वारा आरोग्य प्राप्ति

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मन्त्र–संस्कार
6.4 मन्त्र सिद्धि के स्वरूप
6.4.1 मन्त्र सिद्धि के लक्षण
6.4.2 मन्त्र सिद्धि के बाद–कर्तव्य
6.4.3 मन्त्रसिद्धि के उपाय
6.5 मन्त्र–विद्या की आध्यात्मिक दीक्षा
6.5.1 दीक्षा के प्रकार
6.5.2 मन्त्र–साधक
6.5.3 मन्त्रशास्त्रों में वर्णित मन्त्रसाधक के गुण
6.6 मन्त्र जप की महिमा
6.6.1 मन्त्र जप के प्रकार
6.6.2 वाणी के आधार पर जप के चार प्रकार
6.7 मन्त्र–साधकों के लिए कुछ आवश्यक नियम
6.7.1 शौच (पवित्राता)
6.7.2 स्थान एवं वातावरण
6.7.3 आसनों की स्थिति एवं व्यवस्था
6.7.4 साधना के चार आधार स्तम्भ
6.7.5 साधना हेतु आहार–विहार
6.7.6 साधना हेतु अपरिहार्य नियम
6.7.7 माला सम्बन्धी नियम
6.7.8 साधना में प्रयुक्त सामग्री
6.7.9 पुरश्चरण काल के विशेष अनुबन्ध
6.7.10 विशिष्ट साधना के लिए विविध अनिवार्य अनुशासन
6.7.11 सूतक सम्बन्धी नियम
6.8 भोजन विधान
6.9 मन्त्र चिकित्सा के विधि
6.10 मन्त्र योग की वैज्ञानिकता
6.11 विभिन्न मन्त्रों द्वारा आरोग्य प्राप्ति
6.12 सारांश
6.13 शब्दावली
6.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.15 सन्दर्भ ग्रन्थ
6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मनुष्य अक्षय शक्तियों का भण्डार है किन्तु उसकी शक्तियाँ बाहरी प्रपंचों के कारण निर्बल, क्रियाहीन तथा चेतनाशून्य बनी हुई हैं। उन्हें क्रमशः जाग्रतकर सत्कर्म में प्रेरित करने का मुख्य एवं सुकर साधन मन्त्र है। मन्त्र एक ऐसा सूक्ष्म, किन्तु महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसके द्वारा स्थूल एवं सूक्ष्म पर नियन्त्रण किया जाता है। विराट् को स्फूर्तिमान रखने का अद्भूत साधन है और पिण्ड में ब्रह्माण्ड को देखने की उत्तम दृष्टि है। प्रकृति को वश में करने की अपूर्व शक्ति मन्त्र में विराजमान है। मन्त्र शक्ति की जिज्ञासा, कार्य–सिद्धि के लिए उसकी उपयोगिता, उपासना के प्रकार तथा वास्तविक तथ्य इन सबको सूक्ष्मता से समझने की मानवीय प्रवृत्ति इसी का परिणाम है।

मन्त्र के भीतर ऐसी गूढ़ शक्ति छिपी है जो वाणी से प्रकाशित नहीं की जा सकती अपितु उस शक्ति से वाणी स्वयं प्रकाशित होती है। मन्त्र शक्ति अनुभवगम्य है जिसे कोई चर्मचक्षुओं द्वारा नहीं देख सकता वरन् इसकी सहायता से चर्म चक्षु स्वयं दीप्तिमान होकर त्रिकालदर्शी हो जाते हैं। शब्दों में सम्पूरित दिव्यता ही मन्त्र है।

प्रस्तुत इकाई में मन्त्र संस्कार, मन्त्र सिद्धि के स्वरूप से परिचित होंगे। मन्त्र विद्या के आध्यात्मिक दीक्षा व मन्त्र जप महिमा का अवलोकन होगा तथा मन्त्र के लिए आवश्यक नियमों पर प्रकाश डाला जाएगा। भोजन संबंधि नियम व मन्त्र चिकित्सा विधि तथा वैज्ञानिकता का विस्तृत वर्णन होगा।

हमें पूर्ण विश्वास है कि मन्त्र चिकित्सा के इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर आपको मन्त्रसाधना के विषय में उठने वाली विभिन्न जिज्ञासाओं की पूर्ति व नई ज्ञान की प्राप्ति होगी।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत निम्न उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया है –

- मन्त्र को संस्कारित करने के विधा से परिचित हो सकेंगे।
- मन्त्रसिद्धि व सिद्धि के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों से अवगत होंगे।
- मन्त्रदीक्षा के आध्यात्मिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो सकेंगे।
- मन्त्र जप स्वरूप व विभिन्न प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- मन्त्रसाधना के नियमों से रूबरू हो सकेंगे।
- मन्त्रचिकित्सा के विधि–विधानों का रहस्योद्घाटन हो सकेंगे
- मन्त्रचिकित्सा व उनके वैज्ञानिकता को अनुभव कर सकेंगे।

6.3 मन्त्र–संस्कार

मन्त्र सर्वशक्तिमान् देवता का स्वरूप है। ऐसा अनुभव कर एक–एक मन्त्र के उच्चारण में परमानन्द का अनुभव करते हुए मन्त्र का जाप करने से मन्त्राधिष्ठातृ देव प्रसन्न हो जाता है, तब उसमें शक्ति का उदय होता है तथा शक्ति उदित होने पर शीघ्र सिद्धि मिल जाती है।

कहा जाता है कि भगवान शिव के डमरू से सात करोड़ मन्त्रों की उत्पत्ति हुई। कालान्तर में धीरे–धीरे वे अनेक प्रकार के दोषों से युक्त हो गये। सम्प्रति प्रायः सभी मन्त्र किसी न

किसी दोष से अवश्य युक्त है। मन्त्र संस्कार के द्वारा इन दोषों को दूर किया जाता है। संस्कारित मन्त्र ही अभीष्ठ की सिद्धि करने में समर्थ होते हैं।

मन्त्र सिद्धि के लिए मन्त्रों का संस्कार आवश्यक है। **उड्डीशतन्त्र** में मन्त्रों के विशुद्धीकरण या **'मन्त्र संस्कार'** के लिए दशविध संस्कारों का विधान किया गया है। भगवान शिव, रावण से कहते हैं– यदि सम्यक् अनुष्ठानूपूर्वक मन्त्र जप करने पर भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता तो उसको पुनः जपना चाहिए, यदि फिर भी सिद्ध नहीं होता तो पुनः उसका जप करना चाहिए, किन्तु यदि फिर भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता तक उस मन्त्र का संस्कार करना चाहिए। अक्षर–भ्रान्ति, लुप्त, छिद, हुस्व, दीर्घ आदि दोषों की निवृत्ति के मन्त्र की पुनः दीक्षा लेनी चाहिए तथा शेष दोषों की निवृत्ति के लिए मन्त्र के संस्कार करने चाहिए।

शारदातिलक – मन्त्रों के दश संस्कार करने पर वे सिद्धि प्रदान करते हैं। वे दस संस्कार इस प्रकार हैं:–

1 जनन 2 जीवन 3 ताड़न 4 बोधन 5 अभिषेक

6. विमलीकरण 7. आप्यायन 8. तर्पण 9. दीपन और गुप्ति।

इन संस्कारों से मन्त्र शुद्ध हो जाते हैं।

6.4 मन्त्र सिद्धि के स्वरूप

मन्त्र सर्वशक्तिमान् और इष्टदेवता का वर्णमय स्वरूप है। ऐसा अनुभव जप के समय करते हुए मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के उच्चारण से और एक–एक मन्त्र के उच्चारण में परमानन्द का अनुभव करने से मन्त्र के अधिष्ठातृ देव प्रधान होते हैं। उनकी प्रसन्नता से भक्ति का उदय होता है तथा भक्ति की तीव्रता से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा रचित वांगमय गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि में मन्त्र साधना हेतु चार प्रधन तत्त्वों की व्याख्या की गई है जो कि मन्त्र सिद्धि में सम्मिलित रूप से काम करते हैं।

1. ध्वनि विज्ञान के आधार पर विनिर्मित शब्द श्रृंखला का चयन और उसका विधिवत उच्चारण।
2. साधक की संयम द्वारा निग्रहीत प्राण शक्ति और मानसिक एकाग्रता का संयुक्त समावेश।
3. उपासना में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ उपकरणों का भौतिक किन्तु सूक्ष्म शक्ति।
4. भावना, प्रवाह, श्रद्धा, विश्वास एवं उच्च स्तरीय लक्ष्य दृष्टिकोण।

6.4.1 मन्त्र सिद्धि के लक्षण :– तप ही सिद्धि का द्वार खोलता है। अनवरत परिश्रम ही हर क्षेत्र में सफलता की कुन्जी है। मन्त्र सिद्धि में तप एक विशिष्ट सूत्र है। इसी माध्यम से वह सफल होता है। मन्त्र सिद्धि के लिए समय, तप, एकाग्रता और सारे विधि–विधान के पालन की अपेक्षा है। इसके साथ–साथ गुरुकृपा और मन्त्र पर अटूट श्रद्धा–विश्वास का होना भी एक आवश्यक उपाय है।

'वक्रतुण्डकल्प' में कहा है कि चित्त की प्रसन्नता, मन की सन्तुष्टि, अल्पभोजन, निद्रानाश एवं स्वप्न में जलाशय या पके फलों का दर्शन होना शीघ्र ही मन्त्र सिद्धि के चिन्ह होते हैं। मन्त्र सिद्ध होने पर साधक सर्वत्र प्रकाश देखता है अथवा उसका शरीर प्रकाशयुक्त हो जाता है। साधक का शरीर देवतामय हो जाता है। 'चित्त प्रसन्न रहता, मन सन्तुष्ट रहता है। स्वल्पहारिता आती है, स्वप्न में ही परांगमुखता रहती है, स्वप्न में परिपक्व फल दीख

पड़ते हैं'। 'समस्त शरीर में ज्योति ही ज्योति दिखाई पड़ती है। सारा शरीर प्रकाशयुक्त हो जाता है। समस्त शरीर में देवतामय अवस्था का ज्ञान होने लगता है।

मन्त्र सिद्ध साधक निरोग, वैराग्य हृदय वाला, त्याग, सुस्मृति, शय, दया से युक्त, माया से रहित हो जाता है। वह ऐश्वर्य, कविता रस, धनजन, लक्ष्मी, जापन, उल्लास, सुतधन, सम्मान, सन्मार्ग इच्छासागर रत्न की पूर्णता, कान्ता समूह के आमोद, संकेत मन्त्र, प्रियत्व, हरिहर ब्रह्मैकभाव, लोक–गुरुत्व तथा शिवानन्दैकमुद्रा से युक्त हो जाता है।

6.4.2 मन्त्र सिद्धि के बाद–कर्तव्य :– मन्त्र सिद्धि प्राप्त कर लेने वाले साधक को ज्ञान प्राप्ति के लिए जप की संख्या में निरन्तर वृद्धि का यत्न करते रहना चाहिए। जब वेदान्त प्रतिपादित (अयमात्माब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, श्वेतोकेतो इत्यादि) तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त हो जाये तब साधक कृतार्थ हो जाता है और संसार बन्धन से छूट जाता है। साधक मृत्यु को अपने वश में कर लेता है। जगत्पति (ईश्वर) में उसकी बुद्धि होने लगती है, अथवा उनके उत्तम दर्शन उसे होते हैं। उसका योग बिना क्लेश किये ही आगे बढ़ता रहता है।

वह भोगेच्छा से विरत रहता है, रोगों को नष्ट कर लेता है और हृदय से विरक्त हो जाता है, उसे वैराग्य और भक्ति अच्छी लगती है। वह मायारूप समुद्र के जाल का त्याग कर देता है। उसका हृदय कमल उल्लसित रहता है। मन्त्रसिद्धि भण्डागार में कहा गया है कि हमारा मन्त्र फलीभूत होगा, ऐसा दृढ़ विश्वास मन्त्रसिद्धि का प्रथम लक्षण है। दूसरा श्रद्धा से युक्त होना, तीसरा गुरु का पूजन करना चौथा समताभाव, पाँचवाँ पाँचों इन्द्रियों का निग्रह तथा छठा प्रतिमाहार, इसके अतिरिक्त कोई सिद्धि का लक्षण नहीं है।

6.4.3 मन्त्रसिद्धि के उपाय :– यदि विधिवत् मन्त्र का पुरश्चरण करने पर भी सिद्धि न मिले तो उस मन्त्र का पुनः पुरश्चरण करना चाहिए, क्योंकि बहुधा जन्मान्तरार्जित पाप सिद्धि में बाधक होते हैं। किन्तु तीन बार पुरश्चरण करने पर भी सिद्धि न मिले तो निम्न सात उपाय करने चाहिए।

1. भ्रामण, 2. रोधन, 3. वशीकरण, 4. पीडन, 5. पोषण, 6. शोषण तथा 7. दाहन।

उक्त सातों उपायों को एक साथ करने की आवश्यकता नहीं होती। इनमें से पहला उपाय करने पर सिद्धि न मिले तो दूसरा, दूसरा करने पर सिद्धि न मिले तो तीसरा और उसके करने पर भी सिद्धि न मिले तो चौथा, इस क्रम से ये जप करने चाहिए। इन उपायों के द्वारा निश्चित रूप से मन्त्र सिद्धि मिलती है। मन्त्रमहोदधि में कहा गया है कि निश्चय, उत्साह, धैर्य, तत्त्वज्ञान का दर्शन, अल्पभोजन, संघ का त्याग इन छः उपायों से मन्त्र सिद्ध होता है। 'कुलप्रकाशतन्त्र' में कहा गया है कि उपदेश के सामर्थ्य से, गुरु की प्रसन्नता से मन्त्र के प्रभाव से तथा भक्ति से मन्त्र की सिद्धि होती है। शिवतन्त्र में कहा है कि मन्त्र का निग्रह करना, शौच, मौन, मन्त्र के अर्थ का चिन्तन, चंचल न होना, निन्दा न करना, ये सब मन्त्र जप की सिद्धि में कारक है।

मन्त्र सिद्धि के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारण माने जाते हैं जैसे–1. गुरु के मन्त्रोपदेश में वह बल और सामर्थ्य होता है, जिसके प्रभाव से मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। 2. गुरुदेव का इतना प्रसादपूर्ण अनुग्रह होता है कि उनके शक्तिपात से मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। 3. स्वयं मन्त्र में ही इतना प्रभाव होता है कि मन्त्र स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। और 4. मन्त्राशक्ति में श्रद्धा और भक्ति का आधिक्य है, इसके प्रभाव से भी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न – क

3 मन्त्रों के दोष निम्न में से नहीं हैं –
क. अक्षर–भ्रान्ति, ख. लुप्त, ग. दीक्षा

4 'वक्रतुण्डकल्प' में मन्त्रसिद्धि के लक्षण क्या बताया गया हैं ?

5 मन्त्र सिद्धि का उपाय हैं –
क. सम्मोहन ख. वशीकरण, ग. जागरण

6.5 मन्त्र–विद्या की आध्यात्मिक दीक्षा –

दीक्षा एक दिव्य एवं दैवी घटना है, जहाँ अध्यात्म का बीज अंकुरित एवं पल्लवित होना प्रारम्भ करता है। आध्यात्मिक होने की प्रबल अभीप्सा दीक्षा से प्रारम्भ होती है। उपयुक्त गुरु से दीक्षा प्राप्त कर अध्यात्म के दुर्लभ एवं अद्‌भुत् जगत् में विचरण करने की पात्रता दीक्षा से ही मिलती है। दीक्षा के पश्चात् आन्तरिक चेतना में रूपान्तरण की प्रक्रिया चल पड़ती है। आकृति तो वही रहती है परन्तु प्रकृति बदलाव की ओर मुड़ जाती हैं दिखता सब कुछ पहले जैसा ही परन्तु होता कुछ और है यही होने एवं बदलने की प्रक्रिया जहाँ से चल पड़ती है, उस बिन्दु को ही दीक्षा कहते हैं।

दीक्षा आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ है। 'दीक्षा एक तेज पूजं है दीक्षा वस्तुतः 'आत्मसंस्कार' का ही नामान्तर है। दीक्षा, गुरु और शिष्य के बीच पारस्परिक समर्पण ही है। शिष्य, गुरु को अपना विश्वास एवं भक्ति अर्पित करता है। इसके बदले वे गुरु उसका आध्यात्मिक मार्ग दर्शक होने का उत्तरदायित्व स्वीकार करते हैं। वे उसे अन्धकार से प्रकाश की ओर या बन्धन से मुक्ति की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। दीक्षा के बाद गुरु–शिष्य परस्पर पूरक बन जाते हैं। गुरु की शक्ति शिष्य के उत्कर्ष के लिए लगती है जब गुरु की सिद्धि–शिष्य की साधना, गुरु की प्रेरणा, शिष्य की सक्रियता, गुरु का स्नेह–शिष्य की श्रद्धा, गुरु का अनुशासन–शिष्य का अनुगमन यह दो पक्ष मिल जाते हैं तो उसी तरह चमत्कार उत्पन्न होते हैं, जैसे बिजली के दो तार मिलने से करण्ट (प्रकाश)।

'दीक्षा' का एक अन्य अर्थ होता है 'प्राण प्रत्यावर्तन'। अर्थात गुरु अपने प्राणों को, अपनी शक्तियों को शिष्य में समर्पित करना। दीक्षा दो आत्माओं की आध्यात्मिक क्षेत्र की घनिष्ठता है। दीक्षा के अन्तर्गत शिष्य अपनी श्रद्धा एवं संकल्प के सहारे समर्थ गुरु से जुड़ता है। दीक्षा में समर्थ गुरु के विकसित प्राण का एक अंश शिष्य के अंदर स्थापित किया जाता है। इसमें गुरु ज्योति का अंश होता है। शिष्य उसे तेल बाती दे जलाना आरम्भ कर तद्रुप बनता है। अपूर्णता को पूर्ण बनाने की विधा है 'दीक्षा'।

6.5.1 दीक्षा के प्रकार :– दीक्षा एक दृष्टि से गुरु की ओर से आत्मदान, ज्ञान संचार अथवा शक्तिपात है तो दूसरी दृष्टि से शिष्य में सुषुप्त ज्ञान और शक्तियों का उद्‌बोधन है। दीक्षा से ही शरीर की समस्त अशुद्धियाँ मिट जाती है और देह शुद्ध होने से देवपूजा का अधिकार मिल जाता है।

दीक्षा के तीन भेद बतलाये गये हैं– १. शाक्ती २. शाम्भवी ३. मान्त्री

शाक्ती दीक्षा में मूलाधर से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त शिष्य की चिद्रूपाशक्ति को जगाकर तथा उसे ब्रह्मनाड़ी में से ले जाकर 'परं' शिव में सायुज्य कर दिया जाता है। यहाँ पर उसकी प्रकाश लहरों से ही गुरु, पाप–पाशों को दग्ध कर देते हैं। शाम्भवी दीक्षा का महात्म्य वायवीय संहिता में मिलता है कहा गया है कि 'श्रीगुरुदेव' अपनी प्रसन्ना से दृष्टि अथवा स्पर्श के द्वारा एक क्षण में स्वरूप स्थित कर देते हैं। रुद्रयामल में कहा गया है कि भगवान शम्भू के चरण द्वय से सम्भूत दीक्षा ही शाम्भवी दीक्षा है। चरण द्वय का अर्थ है शिव और शक्ति दोनों के चरण। सहस्रदल कमल की कर्णिका पर चन्द्रमण्डल की सुधधरा से आप्लावित उन चारों चरणों का चिन्तन करना चाहिए। तीन चरण तीन गुणों का द्योतक है एवं चौथा निर्वाण तथा परमानन्दस्वरूप है। उनके वर्ण शुक्ल, रक्त, मिश्र एवं वर्णातीत है। गुरु की दृष्टिमात्र से शिष्य का सहस्रार प्रफुल्लित हो जाता है वह समाधिस्थ होकर कृतकृत्य हो जाता है।

मान्त्री दीक्षा अथवा आणवी दीक्षा–मन्त्र, पूजा, आसन न्यास, ध्यान आदि से सम्पन्न होती है। इसमें गुरुदेव शिष्य को मन्त्रोपदेश करते हैं। उपर्युक्त दोनों दीक्षाओं से तत्काल सिद्धि प्राप्त हो जाती है। परन्तु मात्री दीक्षा से उसका अनुष्ठान करने पर क्रमशः सिद्धि लाभ होता है। फल सबका एक ही है। सभी साध्क शक्तिपात के पात्र नहीं हो सकते। मान्त्री दीक्षा से शक्तिपात की पात्रता प्राप्त होती है और मन्त्रदेवात्मक शक्ति से सिद्धि भी प्राप्त होती है। 'तन्त्र' के ग्रन्थों में आणवी दीक्षा के दस भेद बतलाये गये हैं। यथा– स्मार्ती, मानसी, यौगी, चाक्षुषी, स्पार्शिकी वाचिकी, मान्त्रिकी, होत्री शास्त्री और अभिषेचिका।

6.5.2 मन्त्र–साधक– साधना मनुष्य जीवन का महापुरुषार्थ है। अपने सौभाग्य के निर्माण की सुनिश्चित विधि है। असम्भव को सम्भव करने वाला प्रचण्ड पराक्रम है। साधना सिर्फ माला के मनकों के साथ किया जाने वाला खिलवाड़ नहीं है, और न ही मन्त्र के शब्दों के साथ जिह्वा की उलट–पुलट है। आँख बंद करके चुपचाप बैठे रहने से भी साधना नहीं सधती, यह तो सत्चिन्तन, सत्प्रवृत्ति एवं सत्कर्मो की त्रिवेणी में हर क्षण किया जाने वाला पुण्य स्नान है।

जो साधक है वे एक पल के लिए भी सत्चिन्तन से नहीं डिगते, क्षण भर के लिए भी वे सत्प्रवृति को नहीं छोड़ते। बड़ी से बड़ी बाधायें और आपदायें भी उन्हें सत्कर्मो से हटा नहीं पाती। ऐसे ही संकल्पवान और साहसी साधकों पर देवशक्तियों के दिव्य अनुदान बरसते है, उन्हीं पर महाशक्ति माता जगदम्बा के आंचल की छाया होती हैं। वही अपने सद्गुरु की सच्ची सन्तान होते है।

6.5.3 मन्त्रशास्त्रों में वर्णित मन्त्रसाधक के गुण :– मन्त्रशास्त्र कें ग्रन्थ 'भैरवपद्मावतीकल्प' में महाकवि शेखर श्रीमल्मिषेणसूरी जी ने मन्त्रसाधकों के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि 'जिन्होंने कामदेव के उपद्रव को नष्ट कर दिया है और क्रोधदिक को जीत लिया है, कितना भी कारण मिलने पर, स्त्री आदि का उपद्रव होने पर भी, विचलित नहीं होते और क्रोधविष्ट नहीं होते हैं, सम्पूर्ण विकथाओं का त्याग कर दिया है और महादेवी के पूजन में अटूट श्रद्धा रखने वाला भगवान् श्री जिनेन्द्र देव के चरणों के परम भक्त इतने लक्षणों से जो सहित होते हैं, उन्हीं को मन्त्र साधन करने का अधिकार है। अर्थात् वे ही 'मन्त्री' हो सकते है। साधक के चित्त में किसी प्रकार की क्रुरता न हो, शुद्धात्मा, व्यसन से रहित परिश्रमी वेदज्ञ, लोकशास्त्र कुशल और काम–वासना से सतत् दूर रहने वाला होना चाहिए।

मन्त्र साधक को शीलवान गुणज्ञ, निश्छल, श्रद्धालु, धैर्यवान, स्वस्थ, कार्य–सक्षम, बुद्धिमान्, सच्चरित्र, इन्द्रिय संयमी और कुल का पोषक होना चाहिए। शिवसंहिता में भगवान आदिनाथ ने साधक के गुणों को इंगित करते हुए कहा है– 'फल प्राप्त होगा ही, इस प्रकार का दृढ़ विश्वास, श्रद्धा से ओतप्रोत रहना, गुरु की श्रद्धासिक्त आराधना, संयता का भाव रखना, इन्द्रियों को वश में रखने वाला एवं परिमित भोजन (मिताहार) करने वाला होना चाहिए। ऐसे ही साधक को साधना में सिद्धि मिलती है। तन्त्रासार में जो व्यक्ति पुण्यवान, धर्मिक, शुद्धान्तःकरण, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय दानशील और ईश्वराराधना में तत्पर हो वही व्यक्ति शिष्य पद के योग्य होने की बात कही गई है।

हमारी वसीयत और विरासत में '**पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी**' ने 'मन्त्र साधना या दैवी अनुग्रह अर्जित करने के लिए शुद्ध जीवन की आवश्यकता पर बल दिया है और कहा है कि साधक ही सच्चे अर्थों में उपासक हो सकता है। जिससे जीवन साधना नहीं बन पड़ी,

उसका चिन्तन, चरित्र, आहार–विहार, मस्तिष्क अवांछनीयताओं से भरा रहेगा। फलतः मन लगेगा नहीं। लिप्सायें और तृष्णाएं जिनके मन को हर घड़ी उद्विग्न किये रहती हैं उससे न एकाग्रता सधेगी और न चित्त की तन्मयता आयेगी। अतएव मन्त्रसाधक का जीवन क्रम ही शुद्ध और सात्विक होना अति आवश्यक है।

6.6 मन्त्र जप की महिमा :–

जप साधना हिन्दू धर्म के 'आध्यात्मिक कर्मकाण्ड का मेरुदण्ड है।' इससे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है, इसलिए भगवान कृष्ण ने इसे सब यज्ञों में श्रेष्ठ कहा है और अपनी विभूति मानी है। **'यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि'** यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूँ। भगवान मनु ने अपने अनुभव से कहा है–'और कुछ करें या न करें, केवल जप से ही ब्राह्मण सिद्धि वाला है।' महाभारत में कहा है– 'यज्ञों में आहुति देकर सिद्धि प्राप्त करने वाला यज्ञ उत्तम है और यही वैदिक कर्मकाण्ड वालों का मत है। परन्तु भक्तिमार्ग में हविर्यज्ञ की अपेक्षा नामयज्ञ का विशेष महत्त्व है।'

जप एक आध्यात्मिक व्यायाम है और एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका हमारे मानसिक और बौद्धिक क्षेत्र पर सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है उससे अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है। साधक का मनोबल दृढ़ होता जाता है। विचारों में विवेकशीलता आती है। बुद्धि, निर्मल व पवित्र बनती है। आत्मा में प्रकाश आता है।

'जप' धतु का अर्थ है– 'जप व्यक्तायां वाचि' स्पष्ट बोलना और दूसरा 'जप मानसे च' मन से उसे कहना। मन्त्र के बार–बार उच्चारण को जप कहते है। अग्नि पुराण में ऋषि ने कहा है **जकारो जन्म विच्छेदः, पकारः पाप नाशकः** अर्थात् : 'ज' का अर्थ है जन्म का रूक जाना और 'प' का अर्थ है पाप का नाश होना। इसलिए पाप को मिटाने वाले और पुनर्जन्म प्रक्रिया रोकने वाले को 'जप' कहा है।

'जप' जापक द्वारा चैतन्य तत्त्व के साथ तादात्म्य प्राप्ति की एक प्रक्रिया है न कि जप अक्षरों की पुनरावृत्ति मात्र। **योगिनीहृदयदीपिका** में ग्रन्थकार ने बाह्य जप को जप स्वीकार ही नहीं किया। **न तु बाह्य जपो जपः**। विकल्पात्मक विविध वर्णो के सन्धान से विनिर्मित मन्त्रों का बाह्योच्चारण जप नहीं है। बल्कि 'इन्द्रियों की बहिर्मुख प्रवृत्ति को रोककर आन्तर अनाहत नाद की निरन्तर भावना करना ही 'जप' है।' 'मन्त्र को चित्तत्व की रश्मियाँ' 'जप' वर्णों के उच्चारण की प्रक्रिया मात्र नहीं है, प्रत्युत सुषुम्ना मार्ग में नादोच्चारण है। इसीलिए कहा गया है कि वर्ण रूप मन्त्र 'पशु' भाव' में स्थित होते है और जब वे सुषुम्ना मार्ग से उच्चारित होने लगते है तो 'पशुपति' बन जाते है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्णातीत परतत्त्व के विदित हो जाने पर मन्त्राधिप भी मन्त्र के साथ मांत्रिक के किंकर (वशीभूत) हो जाते हैं।

6.6.1 मन्त्र जप के प्रकार :– 'मन्त्र जप' एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जिससे आध्यात्मिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ और सूक्ष्म शरीर को बलवान बनाने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि जप है अक्षरवृत्ति अर्थात् मन्त्र के अन्तर्गत अक्षरों के उच्चारण को जप कहा है।

जप के प्रकार :– सामान्यतः तीन प्रकार के जप को मुख्य माने जाते हैं–

1. वाचिक, 1. उपांशु, 3. मानस।

1. वाचिक जप :– इस प्रक्रिया में मन्त्र का उच्चारण ऊँचे स्वर में बाह्य वायु की सहायता से किया जाता है। बैखरी वाणी के द्वारा होता है तथा इसमें शब्द व अर्थ के बीच अन्तर

होता है। यह मन्त्र साधक की प्रारम्भिक अवस्था होती है। विशुद्धेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि साधारण लोक समूहों में वेद्य (ज्ञान विषयीभूत) जो जप, वह निगद् अथवा वाचिक है।

2. उपांशु जप :– मन्त्र जप की इस प्रक्रिया में जीभ व होंठ का किन्चित चालन जो स्वयं को सुनाई दे, ऐसे मंद स्वर में बोला जाता है। इसमें मन्त्र देवता पर ध्यान एवं अर्थ समझने का प्रयत्न किया जाता है। विशुद्धेश्वर तन्त्र में अपने कर्ण के गोचर (श्रवण योग्य) जप को उपांशु कहा है। मध्यमा वाणी के साथ शांतिकर्म, पुष्टि कर्म, सकाम साधना इत्यादि के लिए उपयोग किया जाता है। **'उपांशु स्यात् शतगुणः** वाचिक जप की अपेक्षा उपांशु जप द्वारा सौ गुना अधिक लाभ होता है।

3. मानस जपः– इसमें शब्दों (वर्णों) का उच्चारण बिल्कुल नहीं होता। मन ही मन जपा जाता है। इस प्रक्रिया में मनश्चक्षुओं को व सूक्ष्म कर्मेन्द्रियों को शब्दों का ज्ञान होता है। अर्थात् जो जप अपने कर्ण के अगोचर, श्रवण के अयोग्य हों वह मानस जप कहलाता है। इसका जप पश्यन्ति वाणी के साथ निष्काम साधना हेतु उपयोग किया जाता है।

6.6.2 वाणी के आधार पर जप के चार प्रकार :–

1. बैखरी, 2. मध्यमा, 3. पश्यन्ति, 4. परा।

शुरू–शुरू में उच्च–स्वर से जो जप किया जाता है, उसे **'बैखरी मन्त्र जप'** कहते हैं।

दूसरी मध्यमा– इसमें होंठ भी नहीं हिलते व दूसरा कोई व्यक्ति मन्त्र को सुन भी नहीं सकता।

जिस जप में जिह्वा भी नहीं हिलती, हृदयपूर्वक जप होता है और जप के अर्थ में हमारा चित्त तल्लीन होता जाता है उसे पश्यन्ति मन्त्र जप कहते हैं।

परा – मन्त्र के अर्थ में हमारी वृत्ति स्थिर होने की तैयारी हो, मन्त्र जप करते–करते आनन्द आने लगे तथा बुद्धि परमात्मा में स्थिर होने लगे, उसे परा मन्त्र जप कहते हैं।

6.7 मन्त्र–साधकों के लिए कुछ आवश्यक नियम :–

मन्त्रों की साधना की एक विशेष विधि–व्यवस्था होती है। नित्य साधना–पद्धति से निर्धारित कर्मकाण्ड के अनुसार मन्त्रों का अनुष्ठान, साधना, पुरश्चरण करना होता है। विधिपूर्वक किये हुए अनुष्ठान सदा शीघ्र सिद्ध होते हैं और उत्तम परिणाम उपस्थित करते हैं। इसके विपरीत अविधि–पूर्वक किया गया अनुष्ठान साधक के लिये हानिकार सिद्ध होता है और लाभ के स्थान पर उससे अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है।

साधना के लिए स्वस्थ और शान्तचित्त की आवश्यकता होती है। चित्त को एकाग्र करके मन को सब ओर से हटाकर, तन्मयता, श्रद्धा और भक्तिभावना से की गयी साधना सफल होती है। श्रद्धा, विश्वास एवं एकाग्रता उत्पन्न होने से सफलता की ओर तेजी से कदम बढ़ने लगते हैं।

6.7.1 शौच (पवित्रता) – 'पवित्रता' अध्यात्मिक साधना का प्रथम सोपान है। इसके बिना तो कुछ भी सम्भव नहीं है। मन्त्र साधना हेतु शरीर को शुद्ध करके साधन पर बैठना चाहिए। साधरणतः स्नान के द्वारा ही शुद्धि होती है पर किसी विवशता, ऋतु–प्रतिकूलता या अस्वस्थता की दशा में हाथ–मुंह धोकर या गीले कपड़े से शरीर पोंछकर भी काम चलाया जा सकता है। पुरश्चरण काल में केवल आंवले या पन्चगव्य से शास्त्रोक्त विधि से स्नान करना, स्नान, आचमन एवं भोजन मन्त्रोच्चारण पूर्वक करना, प्रतिदिन सन्ध्या, तर्पण, बलि, हवन एवं तीनों समय दो समय या एक समय इष्टदेव का विधिवत् पूजन करना चाहिए।

स्नान एवं तर्पण किये बिना अपवित्र हाथ से, नग्न अवस्था में, या सर पर वस्त्र रखकर जप करना निषिद्ध माना गया है।

यदि जप करते समय एक शब्द भी बोलना पड़े तो एक बार प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। यदि कठोर शब्द बोलना पड़े तो प्राणायाम और यदि वार्तालाप करना पड़े तो विधिवत आचमन प्राणायाम एवं न्यास करना चाहिए। जप करते समय लघुशंका एवं शौच का वेग हो तो उसे रोकना नहीं चाहिए, क्योंकि इस स्थिति में ईष्टदेव एवं मन्त्र का चिन्तन न होकर मल–मूत्र की ओर ध्यान चले जाने के कारण जप–पूजन आदि अपवित्र हो जाता है। जप के समय आलस्य, जँभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अंगों का स्पर्श, क्रोध, चित्त में व्याकुलता, क्षोभ, भ्रान्ति, भूख लगना एवं शरीर में पीड़ा होना–ये सब बातें निषिद्ध मानी गयी हैं।

6.7.2 स्थान एवं वातावरण – साधना के लिए एकान्त खुली हवा की एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ का वातावरण शान्तिमय हो, खेत, बगीचा, जलाशय का किनारा, देव–मन्दिर इस कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं। लिंग पुराण के अनुसार जप के उपयुक्त स्थान का होना आवश्यक माना गया है। पवित्रा आश्रमों, देवालयों, पर्वत–शिखर पर, देव हृदय पर, समुद्र तट पर, यह लाभ करोड़ गुना हो जाता है। ध्रुवतारा सूर्य के अभिमुख होकर और गौ, अग्नि, दीपक और जल के सामने जप करने पर भी फल श्रेष्ठ माना गया है। सुविधा के लिये घर का स्वच्छ एवं सात्विक स्थान लेना अभिष्ट है।

6.7.3 आसनों की स्थिति एवं व्यवस्था – मन्त्र साधना हेतु ध्यानात्मक आसन ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इस आसन में बैठकर आत्मचिन्तन, ब्रह्मचिन्तन, समाधि तथा देवोपासना (मन्त्र जपादि) आदि कार्य सम्पन्न करने होते हैं। आसन शारीरिक स्थिति के अनुसार पालथी मारकर सीधे–सादे ढंग से बैठना चाहिए। कष्टसाध्य आसन लगाकर बैठने से शरीर को कष्ट होता है और मन बार–बार उचटता है। इसलिये इस तरह बैठना चाहिये कि देर तक बैठे रहने में असुविधा न हो। आसनों में कमर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी को सदा सीध रखना चाहिए क्योंकि कमर झुकाकर बैठने से मेरूदण्ड टेढ़ा हो जाता है और सुषम्ना नाड़ी में प्राण का आवागमन होने में बाधा उत्पन्न होती है। मन्त्र साधना हेतु प्रातः पूर्व की ओर, मध्यान्ह को उत्तर की ओर, शाम को पश्चिम की ओर मुंह करके बैठना चाहिए।

शास्त्रीय दृष्टि :– यहाँ पर आसन का तात्पर्य है–जिस पर हम बैठते हैं। जैसे चटाई, कम्बल, मृग छाल इत्यादि। स्वामी ब्रह्मानन्द गिरि ने कहा है कि – बुद्धिमान साधक, सौभाग्य तथा ज्ञानवर्धक कुश, कम्बल, वस्त्र को अथवा सिंह, व्याघ्र, चैलासन अथवा कपास निर्मित आसन सौभाग्य तथा ज्ञान को बढ़ाने वाले आसनों का उपयोग करना चाहिए। कृष्ण सार मृग के आसन से ज्ञान सिद्धि एवं व्याघ्र चर्म के आसन से मुक्ति होती है ऐसा कहा गया है। वस्त्रासन में बैठने पर व्याधिनाश तथा कम्बलासन में दुःख नाश होता है। कुशासन से आयु वृद्धि, व्याघ्र चर्म के आसन में मोक्ष, मृगचर्म के आसन में पुत्रवान तथा कम्बलासन से उत्तम सिद्धि होती है। शांतिकर्म में श्वेत वर्ण आसन, पौष्टिक कर्म में कौशेय आसन तथा चित्तकबरा आसन सर्वार्थ सिद्धिप्रद होता है।

अभिचार (मारण) कर्म की सिद्धि के लिए आसन नीले रंग का होना चाहिए। वशीकरण आदि कर्म के लिए लाल रंग का आसन होना चाहिए। मोक्ष और शांति कर्म के लिए सफेद आसन ठीक होता हैं चितकबरा कम्बल सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करता है। इन सबके अभाव में आसन के लिए कुशा का आसन ही ग्राह्य है। '**हंस माहेश्वर तन्त्र**' में कहा गया है कि रोम

से बने आसन पर साधक जब बैठता है तब उसका सब विनष्ट हो जाता है। रोम के स्पर्श मात्र से सिद्धि का नाश हो जाता है। कुशा के आसन पर मन्त्र की सिद्धि होती है इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आसनों में दिशा का महत्त्व :– इस क्रम में उत्तर दिशा शान्ति कार्यों के लिए, पूरब दिशा वशीकरण के लिए मारण कर्म के लिए दक्षिण दिशा एवं धन प्राप्ति के लिए पश्चिम दिशा उपयुक्त मानी गई है।

6.7.4 साधना के चार आधार स्तम्भ –

क. चित्त की एकाग्रता – आचार्य पं श्रीराम शर्मा जी ने साधना हेतु प्रथम चित्त की एकाग्रता पर बल दिया है ताकि मन इधर–उधर न उछलता फिरे। यदि चित्त बहुत दौड़े तो उसे ईष्ट की सुन्दर छवि के ध्यान में लगाने की बात कही है।

ख. ईष्ट के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास – ईष्ट के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास का होना जरूरी है। अविश्वासी और शंका–शंकित मति वाले पूरा लाभ नहीं उठा पाते। शास्त्रोक्त कथन है– **'संदिग्धें हि हतो मन्त्री व्यग्रचित्ते हतो जपः** सन्देह करने से मन्त्र हत हो जाता है और व्यग्रचित्त से किया हुआ जप निष्फल रहता है।

ग. अटूट निष्ठा – दृढ़ता के साथ साधना पर अड़े रहना चाहिए। अनुत्साह, मन उचटना, नीरसता प्रतीत होना, जल्दी लाभ न मिलना, अस्वस्थता तथा अन्य सांसारिक कठिनाइयों का मार्ग में आना साधना के विघ्न हैं। इन विघ्नों से लड़ते हुए अपने मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ते चलना चाहिए।

घ. निरन्तरता – निरन्तरता साधना का आवश्यक नियम है। अत्यन्त कार्य होने या विषम स्थिति आ जाने पर किसी न किसी रूप में चलते–फिरते ही सही पर ईष्ट की उपासना अवश्य करना, किसी भी दिन नागा या भूल नहीं करना, समय को रोज–रोज नहीं बदलना, कभी दोपहर, कभी तीन बजे तो कभी दस बजे ऐसी अनियमितता उपयुक्त नहीं। इन चार नियमों के साथ की गयी साधना बड़ी प्रभावशाली होने की बात आचार्य श्री ने कही है।

6.7.5 साधना हेतु आहार–विहार – साधना की सफलता साधक के आहार–विहार पर निर्भर करती है। साधक का आहार–विहार शुद्ध सात्विक होना ही चाहिए। श्रीमद्भागवत् गीता में भी कहा गया है। **'युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टस्य कर्मसु'** आहार में सतोगुणी, सादा, सुपाच्य, ताजे तथा पवित्र हाथों से बनाये हुए पदार्थ होने चाहिए। अधिक मिर्च–मसाले, तले भूने हुए पकवान, मिष्ठान, बासी, दुर्गन्धित, मांस, नशीले अभक्ष्य, उष्ण, दाहक, अनीति उपार्जित, गन्दे मनुष्यों द्वारा बनाये हुए, तिरस्कार पूर्वक दिये हुए भोजन से मन्त्र–साधक को बचना चाहिए। साधक को पराया अन्न नहीं खाना चाहिए। वह जिसका अन्न खाता है, उसी को फल मिलता है।

साधक का व्यवहार जितना ही प्राकृतिक धर्म संगत, सरल एवं सात्विक रह सके उतना ही उत्तम है। फैशन परस्ती, रात्रि में अधिक जगना, दिन में सोना, सिनेमा, नाच–रंग अधिक देखना, पर निन्दा, छिद्रान्वेषण, कला, दुराचार, ईर्ष्या निष्ठुरता, आलस्य, प्रमाद, मद, मत्सर से हमेशा ही दूर रहना चाहिए।

6.7.6 साधना हेतु अपरिहार्य नियम – साधना, अनुष्ठान के दिनों में कुछ विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है जो कि निम्न हैं–

1. ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। शास्त्र कथन है– **'जीवनम् बिन्दु धारणात् मरणं बिन्दु पातेन।** साधना काल में स्त्री–संसर्ग उनकी चर्चा तथा जहाँ वे रहती हो वह स्थान छोड़ देना चाहिए। ऋतुकाल के अतिरिक्त अपनी परिणीता पत्नी से भी संसर्ग नहीं करना चाहिए। स्त्री साधिकाओं के लिए अपने पति के विषय में यही बात समझनी चाहिए। किन्तु स्त्री साधिका को अपने सिद्ध पति से दीक्षा प्राप्त हो तो उसे अपने पति के साथ यौन सम्पर्क के अतिरिक्त अन्य सम्पर्क निषिद्ध नहीं है। **2.** ठोड़ी के सिवाय सिर के बाल न कटाएँ ठोड़ी के बाल अपने हाथ से ही बनायें। **3.** चारपाई पर न सोयें, तखत या जमीन पर सोना चाहिए। उन दिनों अधिक दूर नंगे पैरों न चलें। चाम के जूते के स्थान पर खड़ाऊ आदि का उपयोग करना चाहिए। 4. इन दिनों एक समय आहार, एक समय फलाहार लेना चाहिए। 5. अपने शरीर और वस्त्रों से दूसरों का स्पर्श कम से कम होने दें।

6.7.7 माला सम्बन्धी नियम – माला मन्त्र साधना हेतु एक आवश्यक एवं अपरिहार्य साधन है। इसका निर्धारण साधक को साधना की प्रकृति के आधार पर करना चाहिए। तुलसी एवं चन्दन की माला सात्विक साधना हेतु उत्तम है। रुद्राक्ष, लाल चन्दन, शंख आदि की माला तान्त्रिक साधना में प्रयुक्त किये जाते हैं।

प्रातःकाल सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व और एक घण्टे बाद तक, सांय सूर्यास्त से दो घण्टे पूर्व तथा एक घण्टे बाद तक माला जप किया जा सकता है। किन्तु नवरात्रि आदि पर्व विशेष पर कोई बन्धन नहीं होता। यदि किसी दिन अनिवार्य कारण से साधना स्थगित करना पड़े तो दूसरे दिन एक माला अतिरिक्त जप दण्ड स्वरूप करनाा चाहिए। एकान्त में जप करते समय माला खुले रूप से जपा जा सकता है। किन्तु जहाँ सामुहिक जप या जहाँ बहुत आदमियों की दृष्टि पड़ती है। वहाँ कपड़े से ढक कर या गोमुखी में हाथ डालकर माला के द्वारा मन्त्र जप करने का विधान हमारे ऋषियों ने बताया है।

माला जपते समय सुमेरु (माला के आरम्भ का सबसे बड़ा दाना) का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। एक माला पूरी करके उसे मस्तक तथा नेत्रों से लगाकर पीछे की तरफ उलटा ही वापस कर लेना चाहिए। इस प्रकार माला पूरी होने पर हर बार उलट कर ही नया आरम्भ करना चाहिए। गा–गा कर जपना, सिर हिलाना, लिखे हुए को पढ़ना, मन्त्रार्थ को न जानना तथा बीच–बीच में भूल जाना–ये सब मन्त्र सिद्धि में बाधक हैं। जप करते समय ईष्ट देव, गुरु एवं मन्त्र ये तीनों एक हैं, ऐसा ध्यान रखना चाहिए तथा मन्त्रार्थ की भावना सहित मनोयोग पूर्वक जप करना चाहिए।

प्रतिदिन एक जैसी संख्या में जप करना चाहिए। किसी दिन कम और किसी दिन अधिक संख्या में नहीं। इस प्रकार निश्चित संख्या में जप पूरा करके उसके दशांश का हवन उसके दशांश का तर्पण, उसे दशांश का मार्जन एवं उसके दशांश का तुल्य ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए।

6.7.8 साधना में प्रयुक्त सामग्री – मन्त्र साधना में प्रयुक्त होने वाली सभी सामग्रियों का स्वच्छ व पवित्र होना आवश्यक है। पूजन सामग्रियों का स्पर्श स्वच्छ (स्नानादि) होकर ही करना चाहिए। पूजा के लिए ईष्ट के अनुरूप फूलों का चयन करना चाहिए। किन्तु सात्विक साधना में सभी मान्य हैं।

साधना के उपरान्त पूजा से बचे हुए अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, पफूल, जल, दीपक की बत्ती, हवन की भस्म आदि को यों ही जहाँ–तहाँ ऐसी जगह नहीं फेंकना चाहिए। जहाँ वह पैरों तले कुचलती फिरे। उन्हें किसी तीर्थ, नदी, जलाशय, देव–मन्दिर, कपास, जौ,

चावल का खेत आदि पवित्र स्थानों पर विसर्जित करना चाहिए। चावल चिड़ियों के लिए डाल देना चाहिए। नैवेद्य आदि प्रसाद के रूप में बाँट देना चाहिए। जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ्य देना चाहिए।

6.7.9 पुरश्चरण काल के विशेष अनुबन्ध – पुरश्चरण करने वाले व्यक्ति को प्रातःकाल से मध्यान्ह पर्यन्त उपांशु या मानस जप करते रहना चाहिए। त्रिकाल स्नान करना चाहिए और अभ्यंग (मालिश) आदि का सेवन नहीं करना, व्यग्रता, आलस्य, क्रोध, पैर–फैलाना, अन्यों से बोलना (मौन) एवं अत्यन्जों को देखना, यह सब साधक के लिए जपकाल में वर्जित है। स्त्री एवं शूद्रों से संभाषक, निन्दा करना, पान–खाना, दिन में सोना, दान लेना, नाचना–गाना एवं कुटिलता (धूर्तता) करना यह सब साधक को सदैव वर्जित है।

6.7.10 विशिष्ट साधना के लिए अनिवार्य अनुशासन – साधना काल में मन्त्रसिद्धि के लिए ऋषि मुनियों ने बारह नियम–अनुशासन बताये गये हैं– 1. भूमिशयन, 2. ब्रह्मचर्य, 3. मौन, 4. गुरुसेवा, 5. त्रिकाल स्नान 6. पापकर्म परित्याग 7. नित्यपूजा, 8. देवस्तुति एवं कीर्तन, 9. नैमित्तिक पूजा, 10. नित्यदान, 11. ईष्टदेव एवं गुरु में विश्वास तथा 12. जप निष्ठा।

6.7.11 सूतक सम्बन्धी नियम – जन्म या मृत्यु का सूतक हो जाने पर शुद्धि होने तक माला आदि की सहायता से किया जाने वाला विधिवत जप स्थगित रखना चाहिए। केवल मानसिक जप मन ही मन चालू रख सकते हैं। अनुष्ठान या पुरश्चरण काल में कोई भी सूतक आ जाये तो उतने दिनों अनुष्ठान स्थगित रखना चाहिए। सूतक निवृत्त होने पर उसी संख्या पर से जप आरम्भ किया जा सकता है। जहाँ से छोड़ा था। उस विशेष काल की शुद्धि के लिए एक हजार जप विशेष रूप से करने चाहिए।

6.8 भोजन विधान :–

पुरश्चरण एवं अनुष्ठान के समय साधक को पवित्र भोजन करना चाहिए क्योंकि भोजन के रस से ही शरीर, प्राण एवं मन का निर्माण होता है। अपवित्र भोजन करने से शरीर में रोग, प्राणों में क्षोभ तथा मन में विचार उत्पन्न होते हैं। विकृत मन से देवता एवं मन्त्र की साधना नहीं की जा सकती है इसके विपरीत शुद्ध अन्न लेने से चित्त के विक्षेप एवं मूल नष्ट हो जाते हैं। निर्मल मन में ही देवता मन्त्र के प्रभाव का उदय करता है। अतः पुरश्चरणादि में भोजन की पवित्रता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

मुख्यतः भोजन के 3 दोष माने गये हैं :– 1. जातिदोष 2. आश्रय दोष एवं 3. निमित्त दोष। स्वभाव से ही भोज्य पदार्थ में रहने वाले दोष जाति दोष कहलाता है। प्याज, लहसुन, मांस, मछली, अण्डा आदि में जाति दोष होता है। पवित्र वस्तुएँ भी जब निकृष्ट व्यक्ति या स्थान का आश्रय प्राप्त कर लेती है तो उनमें आश्रय दोष आ जाता है। जैसे कसाई की दुकान या शराब खाने में रखा हुआ दूध भी अपवित्र माना जाता है। पवित्र स्थान पर रखी हुई पवित्र वस्तुयें भी कभी–कभी निमित्त दोष से दूषित हो जाती हैं। जैसे देव मन्दिर में रखे हुए दूध को कुत्ता पी जाय तो वह अपवित्र हो जाता है।

साधक का भोजन इन तीनों दोषा से मुक्त होना चाहिए। उसे मुख्य रूप से हविष्यान्न ग्रहण करना चाहिए तथा जिस देश में जिन वस्तुओं की पवित्रता शिष्ट सम्मत हो या जिस आचार में जो वस्तु ग्राह्य मानी गयी हो उन्हीं चीजों को भोजन में लेना चाहिए। अगस्त संहिता में गाय का दूध, दही एवं घी, सफेद तिल, मूंग कंद, केला, आम, नारियल, आंवला, जड़हन, धन, जौ, जीरा एवं नारंगी को हविश्यान्न कहा गया है। मतान्तर में हैमन्तिक धान्य,

सैघवनमक फल, मेवा, दूध से बने पदार्थ एवं वे वस्तुएँ जो तेल में न तली गयी हो ये सब हविष्यान्न कहलाती है। साधनाकाल में इन्हीं वस्तुओं को भोजन में लेना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न – ख

6 दीक्षा, गुरु और शिष्य के बीच पारस्परिक ..... ही है ?

7 विशुद्धेश्वर तन्त्र में जप किसे कहा गया है ?

8 मन्त्र साधना हेतु श्रेष्ठ आसन है –

क. ध्यानात्मक ख. शीर्षासन, ग. शरीर संवर्धनात्मक आसन

6.9 मन्त्र चिकित्सा के विधि :–

मन्त्रचिकित्सा अध्यात्मविद्या का महत्त्वपूर्ण आयाम है। इसके द्वारा असाध्य रोगों को ठीक किया जा सकता है। कठिनतम परिस्थितियों पर विजय पाई जा सकती है। व्यक्तित्त्व की कैसी भी विकृतियाँ व अवरोध दूर किया जा सकता है। **'मननात् त्रायते इति मन्त्रः'** जिसके मनन से त्राण मिले। यह अक्षरों का ऐसा दुर्लभ एवं विशिष्ट संयोग है, जो चेतना जगत को आंदोलित, आलोड़ित एवं उद्वेलित करने में सक्षम होता है। इससे अन्तःकरण के समस्त कल्मष (नकारात्मकता) धुल जाते हैं। शब्द शक्ति को लेजर से भी अधिक सामर्थ्य पूर्ण शक्तिपुंज कहा गया है एवं इसी के आधर पर विज्ञान ने खगोल जगत् में ब्रह्माण्डीय आदान–प्रदान की तथा कार्य जगत में सूक्ष्म तत्त्वों की जानकारी एवं चिकित्सा की शोध उपलब्धियाँ अर्जित की है। मनोरोग का मूल कारण व्यवहार में कम, चरित्र और चिन्तन के तलों पर अधिक होते हैं, जिससे प्राणों का अतिशय क्षरण होता है। भारतीय मनोविज्ञान की समस्त पद्धतियों का उद्धेश्य प्राणों का क्षरण रोकना एवं ऊर्जा को संरक्षित करना है।

मन्त्र की संरचना किसी विशेष अर्थ या विचार को ध्यान में रखकर की नहीं जाती। इसका तो एक ही मतलब है– ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की किसी विशेष धारा से संपर्क, आकर्षण, धारण और उसके सार्थक नियोजन की विधि का विकास। मन्त्र की संरचना व निर्माण कोई बौद्धिक क्रियाकलाप नहीं है। कोई भी व्यक्ति भले ही कितना प्रतिभावान या बुद्धिमान क्यों न हो वह मन्त्र की संरचना नहीं कर सकता। यह तो तप साधना के शिखर पर पहुँचे सूक्ष्मद्रष्टाओं व दिव्यदर्शियों का काम है। ये महासाधक अपनी साधना के माध्यम से ब्रह्माण्ड़ीय ऊर्जा की विभिन्न व विशिष्ट धाराओं को देखते हैं। इनकी अधिष्ठातृ शक्तियाँ जिन्हें देवी या देवता कहा जाता है, उन्हें प्रत्यक्ष करते हैं। इस प्रत्यक्ष के प्रतिबिम्ब के रूप में मन्त्र का संयोजन उनकी भावचेतना में प्रकट होता है। इसे ऊर्जाधारा या देवशक्ति का शब्दरूप भी कह सकते हैं। मंत्रविद्या में इसे देवशक्ति या मूलमन्त्र कहते हैं। इस देवशक्ति के ऊर्जा–अंश के किस आयाम को और किस प्रयोजन के लिए ग्रहण–धारण करना है, उसी के अनुरूप इस देवता के अन्य मन्त्रों का विकास होता है। यही कारण है कि एक देवता या देवी के अनेकों मन्त्र होते हैं। यथार्थ में इनमें से प्रत्येक मन्त्र अपने विशिष्ट प्रयोजन को सिद्ध व सार्थक करने में समर्थ होता है।

प्रक्रिया की दृष्टि से तो मन्त्र की कार्यशैली अद्भूत है। इसकी साधना का एक विशिष्ट क्रम पूरा होते ही यह साधक की चेतना का संपर्क बह्माण्ड की विशिष्ट ऊर्जा धारा या देवशक्ति से कर देता है। इसके दूसरे आयाम के रूप में यह साथ ही साथ साधक के अस्तित्त्व या

व्यक्तित्त्व को उस विशिष्ट ऊर्जाधारा अथवा देवशक्ति के लिए ग्रहणशील बनाता है। इसके द्वारा मन्त्र साधक के कतिपय गुह्य केंद्र जाग्रत हो जाते हैं। ऐसा होने पर ही वह सूक्ष्म शक्तियों को ग्रहण करने, धारण करने एवं उनका नियोजन करने में समर्थ होता है। किसी मन्त्र की साधना में साधक को मन्त्र की प्रकृति के अनुसार अपने जीवन की प्रकृति बनानी पड़ती है। मन्त्र साधना के विधि विधान के सम्यक् निर्वाह के साथ उसे अपने खानपान, वेश–विन्यास, आचरण–व्यवहार को देवता या देवी की प्रकृति के अनुसार ढ़ालना पड़ता है। मन्त्र सिद्ध होने का मतलब है मन्त्र की शक्तियों का साधक की चेतना में क्रियाशील हो जाना। यह स्थिति कुछ इसी तरह से है, जैसे कि कोई श्रमशील किसान किसी महानदी से पर्याप्त बड़ी नहर खोदकर उसका पानी अपने खेतों तक ले आए। जैसे नदी से नहर आने पर किसान के समूचे क्षेत्र में जलधाराएँ उफनती–उमड़ती रहती है, उसी तरह से मन्त्र सिद्ध होने पर देवशक्ति का ऊर्जा प्रवाह हर पल हर क्षण साधक की अर्न्तचेतना में उफनता–उमड़ता रहता है। इसका मनचाहे ढ़ंग से अपने संकल्प के अनुसार नियोजन कर सकता है। मंत्र की शक्ति व प्रकृति के अनुसार ही असाध्य बीमारियों को ठीक कर सकता है।

उपचार विधि– अथर्ववेद में मनोरोगों के निराकरण एवं स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए ऋषि ने कहा है– कृणोमि ते प्राणापाणौ..... (8/2/11) अर्थात प्राण और अपान के संयम से दीर्घायु प्राप्त होती है। अथर्ववेद में इस चिकित्सा पद्धति को अथर्वणी चिकित्सा के रूप में जाना जाता है। मन्त्र चिकित्सा के अर्न्तगत –

1. **संकल्प (ऑटोसजेशन),**
2. **सादेश (सजेशन),**
3. **समवशीकरण (हिप्नोसिस).**
4. **कर्मकाण्ड (रिचुअल),**
5. **नाट्यविधि (ड्रामा),**
6. **बह्मकवच (मनोवैज्ञानिक रक्षात्मक विश्वास)** आते हैं।

मंत्रों के द्वारा रोग के बीज को ही नष्ट कर दिया जाता है, मन्त्र चिकित्सा द्वारा असम्भव को भी सम्भव करके देखा जा सकता है और व्यक्तित्त्व के सभी आयामों को विकसित करके जीवन के शिखर को प्राप्त किया जा सकता है।

6.10 मन्त्र योग की वैज्ञानिकता

वाणी में अद्भूत सामर्थ्य है, जो परिशोधित अवस्था में अमृत और विकृत अवस्था में विष का काम करती है। वाक् एक सूक्ष्म ऊर्जा है जो शरीर के सूक्ष्म केन्द्रों को प्रभावित करता है। मन्त्र शक्ति की वैज्ञानिकता को जानने के लिए कुछ कतिपय वैज्ञानिक सिद्धान्तों को जानना आवश्यक है। वैज्ञानिक शोध निष्कर्षों से यह जाना गया है कि ब्रह्माण्ड गोल है सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि सभी ग्रह–उपग्रहों की बनावट गोल है। अर्थात् घूमते या लुढ़कते रहने वाले हर वस्तु गोल बन जाती है। अथवा घूमने की प्रतिक्रिया गोलाई ही हो सकती है।''गोलाई और गति का सम्मिलन हो जाने से एक चक्र बनता है, पहिया घूमता है और आगे बढ़ता हैं, और बढ़ते–बढ़ते अन्ततः अपने पुराने स्थान पर ही लौट आता है।'' यदि गति को अनवरत क्रम से जारी रखा जाय तो पदार्थ अपनी जगह पर वापस लौट आता है।'' ग्रह नक्षत्र इसी आधार पर अपनी कक्षायें बनाते और उनमें परिभ्रमण करते रहते हैं।

परमाणु के अन्दर में काम करने वाले इलेक्ट्रॉन आदि घटक भी अपनी धूरी पर अपनी कक्षा में ग्रह–नक्षत्रों की भान्ति घूमते रहते हैं।

''ध्वनि कम्पन्नों के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त लागू होता है कि वे जिस उद्‌गम स्रोत से निःसृत होते हैं, वहाँ से निकल कर द्रुतगति से आगे बढ़ता है पर बढ़ते रहना अन्ततः गोलाई के चक्र की पकड़ में आ जाता है और फिर सुदूर अन्तरिक्ष की यात्रा करते हुए, सजातीयता के सिद्धान्तानुसार अपने सजातीय गुण धर्म वाले दैवी शक्तियों को साथ लेकर अपने मूल स्थान पर वापस लौट आता है। वहाँ से फिर आगे बढ़ता और फिर वापस लौटता है शब्द कम्पनों की यात्रा इसी गति, इसी चक्र में होती रहती है। वे दूसरों को भी प्रभावित करते हैं परन्तु उनका सबसे अधिक प्रभाव मन्त्र साधक के ऊपर ही होता है। क्योंकि उनका प्रत्येक यात्रा चक्र अपने मूल उद्‌गम को चिरकाल तक प्रभावित करता रहता है।

मन्त्रों में सन्निहित शक्ति वस्तुतः शब्द की पराशक्ति का चमत्कार है। मन्त्र की प्रत्यक्ष रूप ध्वनि है। ध्वनि भी क्रमबद्ध, लयबद्ध और वृत्ताकार एक क्रम से निरन्तर एक ही शब्द विन्यास का उच्चारण किया जाता रहे तो उसका एक गति चक्र बन जाता है तब शब्द तरंगें सीधे चलने की अपेक्षा वृत्ताकार घूमने लगती है। जैसे–रस्सी में पत्थर के टुकड़ा बाँधकर उसे तेजी से चारों ओर घुमाया जाय तो उसके दो परिणाम होंगे–पहला वह एक गोल घेरा दिखाई देगा रस्सी और ढ़ेले का एक स्थानीय स्वरूप बदल कर गतिशील चक्र बन जाता है। दूसरा–उस वृत्ताकार घुमाव से एक असाधरण शक्ति उत्पन्न होगी। इस तेज घूमते हुए पत्थर के टुकड़े से किसी पर प्रहार किया जाय तो जान ले सकता है और यदि उसे खुले आसमान पर फेंक दिया जाय तो सनसनाता हुआ दूर निकल जायेगा। मन्त्र जप से भी यही हेाता है जब कुछ शब्दों को एक रस, एक स्वर, एक लय के अनुसार बार बार दुहराने से अन्तरंग पिण्ड में तथा बहिरंग ब्रह्माण्ड में एक असाधरण शक्ति प्रवाह उत्पन्न करता है। जिसे लोग मन्त्र के चमत्कार के रूप में देखते हैं।

वर्तमान में ध्वनि कम्पनों से बनने वाले रूप आकारों का अध्ययन करने वाली विज्ञान की एक नई शाखा विकसित हुई है जिसे **'साइमेटिक्स'** कहते हैं। इस क्षेत्र में अनुसन्धानरत वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि हर स्वर, हर नाद, हर कथन, एक विशेष आकार को जन्म देता है। मूर्धन्य वैज्ञानिक 'हिंग्टन' और डूयबी' ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ''ब्रह्माण्ड के प्रत्येक घटक का अपना एक वाद्यमण्डल होता है और अपना इलेक्ट्रानिक नाद होता है। जर्मन के सुप्रसिद्ध भौतिकविद् 'अरनेस्ट क्लाडनी' ने वायलिन वादन के माध्यम से बालुई सतह पर सुन्दर आकृतियाँ उभारने में सफलता पाई है। इस उपकरण से मनुष्य की आवाज को या उच्चारित मन्त्र ध्वनि को जड़ वस्तुओं पर केन्द्रित करके उसकी तरंगों को त्रिआयामीय (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) स्वरूप में क्रमबद्ध रूप से सजते देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह कि इस वैज्ञानिक रीति से मन्त्राशक्ति द्वारा चेतना को समुन्नत बनाया जा सकता है। डॉ. उसिक एडला, मुनत डोनाल्ड, लेकसेल हर्ज तथा हगेज ने विभिन्न प्रयोगों में यह पाया कि अश्रव्य ध्वनि का चिकित्सा में सफल प्रयोग किया जा सकता है। भ्रूण, पित्ताशय आदि के परीक्षण एवं बीमारियों में इसी अश्रव्य ध्वनि तरंगों को शरीर के कोमल ऊतकों में प्रविष्ट कराकर वहाँ की स्थिति की जानकारी तथा रोगनिवारण करते हैं। अमेरिका के कोलोरेडा विश्वविद्यालय के चिकित्सा शासी डॉ जोऐफ होम्स ने अल्ट्रासाउण्ड के प्रयोग द्वारा ऊतकों के साफ अध्ययन में सफलता पाई है। यह कार्य जिस यन्त्र से सम्पन्न होते है उसे **'ट्रांस्डूसर'** कहते है। इस यन्त्र द्वारा विद्युत ऊर्जा को ध्वनि ऊर्जा में

बदला जाता है। जो कि एक सेकिण्ड में बीस हजार से भी अधिक की गति से ध्वनि तरंग प्रसारित करता है। यह तरंग जाकर जिस माध्यम से टकराती है उसी वस्तु का परार्वतन कम्पनों से चित्र तैयार कर देती है। इस यन्त्र द्वारा शब्द कम्पनों को चिमटी की आकृति में बदलकर बारीक से बारीक कीटाणुओं और विषाणुओं को भी पकड़ कर खींचा जा सकता है। विज्ञान की यह उपलब्धि यह बताती है कि क्रमबद्ध, ध्वनि कम्पनों में जबरदस्त सामर्थ्य है, मन्त्रों में इन्हीं सिद्धान्तों का समावेश है। मनोगति के सम्मिश्रण के द्वारा यह शक्ति और भी बढ़ जाती है।

वैज्ञानिकों का कथन है कि शब्द शक्ति से **'इलेक्ट्रोमैग्नेटिक'** लहरें उत्पन्न होती है जो स्नायु संस्थान पर वान्छित प्रभाव डालकर उनकी सक्रियता ही नहीं बढ़ाती वरन विकृत चिन्तन को रोकती व मनोविकार मिटाती है। विशिष्ट बात यह है कि पृथ्वी, जिसका चुम्बकत्त्व 0.5 गॉस है, और वह हमेशा 0.9 से 100 साइकल्स प्रति सेकण्ड के गति से स्पन्दन छोड़ती रहती है। इन चुम्बकीय धराओं को **'शूमैन्स रेजोनेन्स'** कहा जाता है। इसकी गति साढ़े सात साइकल्स प्रति सैकण्ड़ है यह चुम्बकीय प्रभाव लगभग उतना ही है जितना कि मस्तिष्क के विद्युत तरंगों का प्रभाव। ब्रेन वेव्स तरंग भी अल्फा एवं बीटा वेव्स के मध्य साढ़े सात साइकल्स की होती है। यह तथ्य व्यक्ति चेतना के उस महत चेतना से विद्युत चुम्बकीय सम्बन्धों को सिद्ध करता है। मन्त्र शक्ति के कम्पन्न इन दोनों ही चेतन धाराओं को 'इनट्यून' करके उन्हें बड़े विस्तार से समग्र ब्रह्माण्ड में फैला देते हैं। और इच्छित वस्तुओं को हस्तगत भी कर लेते हैं।

रेडियों प्रसारणों में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक वेव पर साउण्ड को सुपर इम्पोज कर रिकार्ड कर लिया जाता है। फलस्वरूप वे पलक झपकते ही सारे संसार की परिक्रमा कर लेने जितनी शक्ति प्राप्त कर लेती है। इन शक्ति तरंगों के सहारे ही अन्तरिक्ष में भेजा गया रोकटों की उड़ान को धरती पर से नियन्त्रित करने, उन्हें दिशा देने, उनकी यान्त्रिक खराबी दूर करने का प्रयोजन पूरा किया जाता है। लेसर स्तर की बनी शक्ति किरणें और भी अधिक सामर्थ्यवान् होती हैं। एक फूट मोटी लोहे की चादर में सुराख कर देना उसके लिए सामान्य सी बात है। चिकित्सा जगत् में उपचार हेतू इन किरणों का प्रयोग होने लगा है। **'सुपर–सोनिक'** स्तर की तरंगों का जप प्रक्रिया के द्वारा उत्पादन और समन्वय होता है। जप के समय उच्चारण किये गये शब्द एवं उसके साथ' आत्मनिष्ठा, श्रद्धा एवं संकल्प के समन्वय से वही क्रिया उत्पन्न होती है।'' जो रेडियों स्टेशनपर बोले गये शब्दों में होता है। इससे समस्त संसार के वातावरण ही प्रभावित नहीं होता बल्कि साधक का व्यक्तित्व भी परिष्कृत होकर जगमगाने लगता है। रेडियों स्टेशन से प्रसारण एवं लेसर किरणे फेंकने पर स्थानीय स्तर पर कोई विलक्षणता नहीं दिखाई पड़ती, वे उन स्थनों को ही प्रभावित करती हैं जहाँ उनका आघात होता है। जप प्रक्रिया के साथ ऐसी बात नहीं है इसमें साधक और वातावरण को प्रभावित करने की दुहरी शक्ति होती है। मन्त्र की शक्ति को विज्ञान ने शारीरिक विद्युत के साथ वैज्ञानिक व्याख्या प्रदान की है उनके अनुसार हमारे शरीर के दो मुख्य भाग है एक मस्तिष्क और दूसरा शेष शरीर। दोनों में से विद्युत पैदा होती है। सम्पूर्ण शरीर में धमनी और शिराओं के द्वारा रक्त का सन्चरण और गति है। फेफड़ा, लीवर, पाचनतन्त्र, हृदय इत्यादि सभी अंग अवयव अपना–अपना काम करता है इससे प्रत्येक में अपना–अपना एक विशेष ध्वनि तरंग उत्पन्न होती है इन ध्वनि तरंगों से आपस में संघर्षण पैदा होता है। संघर्षण से विद्युत उत्पन्न होती है। इसे **'घार्षनिक विद्युत'** कहा जाता है। एक विद्युत हमारे मस्तिष्क में पैदा होती है, जो कि अल्फा, बीटा, थीटा, और डेल्टा तरंगों

के रूप में होती है। इसे **'धरावाही विद्युत'** कहा जाता है। दोनों में ही बड़ी शक्ति है। जब हम किसी ईष्ट मन्त्रों का जाप करते है तब मन्त्रों के शब्द के साथ दोनों प्रकार की विद्युत जुड़ जाती है और शब्द, शक्ति शाली हो जाती है। उसमें अपार शक्ति पैदा हो जाती है। इससे साधक का व्यक्तित्व प्रखरित हो उठता है।

मानसिक स्वस्थ्यता के क्षेत्र में प्रभाव :– मानसिक रोग जैसे चिन्ता, तनाव, विसाद एवं प्रतिगमन,पिट्यूटरी ग्रन्थी से निकलने वाल एस. टी. एस. हर्मोन्स सीध शरीर को प्रभावित करता है। इनकी अधिकता से शरीर में व्यग्रता, अधीरता, बेचैनी बढ़ती है और आँतों में जख्म हो जाती है। पाचन सम्बन्धित अनेक रोग घेर लेते है। ऐड्रिनल ग्रन्थी के बाहरी भाग (कोरटेक्स) से कोरेटीन नामक हार्मोन्स निकलता है तथा मध्यभाग मैडूला से ऐड्रीनैलीन नामक हार्मोस निकलता है इनके प्रभाव अधिक होने से चिन्ता व क्रोध अधिक हो जाता है तथा व्यक्ति के सोचने व समझने तथा कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है आत्मविश्वास की कमी होने लगती है। व्यक्ति अपने अतीत में खोने लगता है। फलतः तनाव के कारण सरदर्द अल्सर, उच्चरक्तचाप, रूमेटिक अर्थराइटिस, हृदयरोग, गेस्ट्रिक अल्सर व अन्य विकार उत्पन्न होते है। किन्तु मन्त्र जप के फलस्वरूप गहरे ध्यान की अवस्था में पिट्युटरी ग्रन्थि से जो हार्मोन्स निकलते है जो शरीर को सन्तुलित रखने हेतु सक्रिय होते है और व्यक्ति मनोविकारों से मुक्त हो जाते हैं। सात्विकता के साथ साकारात्मक दृष्टिकोण बढ़ता है। और जीवन में शान्ति, प्रफुल्लता, उत्साह व आशा का जागरण होता है।

6.11 विभिन्न मन्त्रों द्वारा आरोग्य प्राप्ति

'मन्त्र' शब्द–ब्रह्म का प्रकट स्वरूप है। वह एक प्रकार की दिव्य शक्ति है, जिसका प्रयोग किसी भी दिशा में, किसी भी रू॰ में सम्भव है। मानव जीवन की रक्षा और दूसरे चमत्कारी कर्म मन्त्र के प्रभाव से सम्पन्न हो सकते हैं। सारांश यह कि मन्त्र एक शब्दात्मक शक्ति है। काम्य कर्मों के लिए, सकाम प्रयोजनों के लिये अनुष्ठान करना आवश्यक होता है। सवालक्ष का पूर्ण अनुष्ठान, चौबीस हजार का आंशिक अनुष्ठान अपनी–अपनी मर्यादा के अनुसार फल देते हैं। जितना गुड़ डालो उतना मीठा वाली कहावत इस क्षेत्र में भी चरितार्थ होती है। साधना और तपश्चर्या द्वारा जो आत्म–बल संग्रह किया गया है, उसे जिस काम में भी खर्च किया जायेगा, उसका प्रतिफल अवश्य मिलेगा। बन्दूक उतनी ही उपयोगी सिद्ध होगी, जितनी बढ़िया और जितने अधिक कारतूस होंगे। किसी मन्त्र की प्रयोग विधि एक प्रकार की आध्यात्मिक बन्दूक है। तपश्चर्या या साधना द्वारा संग्रह की हुई आत्मिक शक्ति कारतूसों की पेटी है। दोनों के मिलने से ही निशाने को मार गिराया जा सकता है। कोई व्यक्ति प्रयोग विधि जानता हो, पर उसके पास साधना का बल न हो, ऐसा ही परिणाम होगा, जैसा खाली बन्दूक का घोड़ा बार–बार चटकाकर कोई यह आशा करे कि अचूक निशाना लेगा। इसी प्रकार जिनके पास तपोबल है, पर उसका काम्य प्रयोजन के लिए विधिवत प्रयोग करना नहीं जानते, वैसे हैं जैसे कोई कारतूस की पोटली बांधे फिरे और उन्हें हाथ से फेंक–फेंक कर शत्रुओं की सेना का संहार करना चाहे। यह उपहासास्पद तरीके हैं। नीचे कुछ खास–खास प्रयोजनों के लिये मन्त्र प्रयोग की विधियाँ दी जाती हैं–

रोग निवारण – स्वयं रोगी होने पर जिस स्थिति में भी रहना पड़े, उसी में मन ही मन गायत्री का जप करना चाहिये। एक मन्त्र समाप्त होने और दूसरा आरम्भ होने के बीच में एक ''बीज मन्त्र'' का सम्पुट भी लगाते चलना चाहिये। सर्दी प्रधान (कफ) रोग में 'एं' बीज मंत्र, गर्मी प्रधान पित्त रोगों में 'ऐं' अपच एवं विष तथा वात रोगों में 'हूं' बीज मंत्र का प्रयोग

करना चाहिये। निरोग होने के लिये वृषभ वाहिनी हरित वस्त्रा का गायत्री का ध्यान करना चाहिये।

उदाहरण – ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् **ऐं** ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

दूसरों को निरोग करने के लिये भी इन्हीं बीज मन्त्रों का और इसी ध्यान का प्रयोग करना चाहिये। रोगी के पीड़ित अंगों पर उपर्युक्त ध्यान और जप करते हुए हाथ फेरना, जल अभिमत्रित करके रोगी पर मार्जन देना एवं छिड़कना चाहिये। इन्हीं परिस्थितियों में तुलसी पत्र और कालीमिर्च गंगाजल में पीसकर दवा के रूप में देना, यह सब उपचार ऐसे हैं, जो किसी भी रोग के रोगी को दिये जाएं, उसे लाभ पहुंचाये बिना न रहेंगे।

विष–निवारण :– सर्प, बिच्छू, बर्र, ततैया, मधुमक्खी और जहरीले जीवों के काट लेने पर बड़ी पीड़ा होती है। साथ ही शरीर में विष फैलने से मृत्यु हो जाने की सम्भावना रहती है, इस प्रकार की घटनायें घटित होने पर गायत्री शक्ति द्वारा उपचार किया जा सकता है।

पीपल वृक्ष की समिधाओं से विधिवत् हवन करके उसकी भस्म को सुरक्षित रख लेना चाहिये। अपनी नासिका का जो स्वर चल रहा है उसी हाथ पर थोड़ी–सी भस्म रखकर दूसरे हाथ से उसे अभिमंत्रित करता चले और बीच में 'हूं' बीजमंत्र का सम्पुट लगावे तथा रक्तवर्ण अश्वारूढ़ा गायत्री का ध्यान करता हुआ उस भस्म को विषैले कीड़े के काटे हुए स्थान पर दो–चार मिनट मसले। पीड़ा में जादू के समान आराम होता है।

सर्प के काटे हुए स्थान पर रक्त चंदन से किये हुए हवन की भस्म मलनी चाहिये और अभिमंत्रित करके घृत पिलाना चाहिये। पीली सरसों अभिमंत्रित करके उसे पीसकर दशों इन्द्रियों के द्वार पर थोड़ा–थोड़ा लगा देना चाहिये। ऐसा करने से सर्प–विष दूर हो जाता है।

उदाहरण – ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् **हूँ** ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

बुद्धि–वृद्धि :– गायत्री प्रधानतः बुद्धि को शुद्ध प्रखर और समुन्नत करने वाला मन्त्र है। मन्द बुद्धि स्मरण शक्ति की कमी वाले लोग इससे विशेष रूप से लाभ उठा सकते हैं। जो बालक अनुर्तीण हो जाते हैं, पाठ ठीक प्रकार याद नहीं कर पाते, उनके लिये निम्न उपासना बहुत उपयोगी है।

सूर्योदय के समय की प्रथम किरणें पानी से भीगे हुए मस्तक पर लगने दें। पूर्व की ओर मुख करके अधखुले नेत्रों से सूर्य का दर्शन करते हुए आरम्भ में तीन बार ऊँ का उच्चारण करें। कम से कम एक माला (108 मंत्र) अवश्य जपना चाहिये। पीछे हाथों की हथेली का भाग सूर्य की ओर इस प्रकार करें मानों आग पर ताप रहे हों। इस स्थिति में बारह मंत्र जपकर हथेलियों को आपस में रगड़ना चाहिए और उन उष्ण हाथों को मुख, नेत्र, नासिका, ग्रीवा, कर्ण, मस्तक आदि समस्त शिरोभाग पर फिराना चाहिये।

उदाहरण – ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

राजकीय सफलता :– किसी सरकारी कार्य, मुकदमा, राज्य स्वीकृति, नियुक्ति आदि में सफलता प्राप्त करने के लिये गायत्री का उपयोग किया जा सकता है। जिस समय अधिकारी के सम्मुख उपस्थित होना हो अथवा कोई आवेदन पत्र लिखना हो, उस समय यह देखना चाहिये कि कौन सा स्वर चल रहा है। यदि दाहिना स्वर चल रहा हो तो पीतवर्ण ज्योति का मस्तिष्क में ध्यान करना चाहिये और यदि बायां स्वर चल रहा हो तो हरे रंग के प्रकाश का ध्यान करना चाहिये। मन्त्र में व्याहृतियाँ (ऊँ भूः भुव स्वः महः जनः

तपः सत्यम्) लगाते हुए बारह मंत्रों का मन ही मन जप करना चाहिये। दृष्टि उस हाथ के अंगूठे के नाखून पर रखनी चाहिये, जिसका स्वर चल रहा हो। भगवती की मानसिक आराधना, प्रार्थना करते हुए राजद्वार में प्रवेश करने से सफलता मिलती है।

उदाहरण – ऊँ भूः भुव स्वः महः जनः तपः सत्यम् तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

दरिद्रता का नाश :– दरिद्रता, हानि, ऋण, बेकारी, साधनहीनता, वस्तुओं का अभाव, कम आमदनी, बढ़ा हुआ खर्च, कोई रुका हुआ आवश्यक कार्य आदि की व्यर्थ चिंता से मुक्ति दिलाने में गायत्री साधना बड़ी सहायक सिद्ध होती है। उससे ऐसी मनोभूमि तैयार हो जाती है, जो वर्तमान अर्थ–चक्र से निकालकर साधक को सन्तोषजनक स्थिति पर पहुँचा दें।

दरिद्रता–नाश के लिये गायत्री की 'श्री' शक्ति की उपासना करनी चाहिये। मन्त्र के अंत में तीन बार 'श्री' बीज का सम्पुट लगाना चाहिये। साधना काल के लिये पीत वस्त्र, पीले पुष्प, पीला यज्ञोपवीत, पीला तिलक, पीला आसन प्रयोग करना चाहिये और रविवार को उपवास करना चाहिये। शरीर पर शुक्रवार को हल्दी मिले हुए तेल की मालिश करनी चाहिये और रविवार को उपवास करना चाहिये। पीताम्बर धारी, हाथी पर चढ़ी हुई गायत्री का ध्यान करना चाहिये। पीतवर्ण लक्ष्मी का प्रतीक है, भोजन में भी पीली चीजें प्रधान रूप से लेनी चाहिये। इस प्रकार की साधना से धन की वृद्धि और दरिद्रता का नाश होता है।

उदाहरण – ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् श्री श्री श्री

शत्रुता का संहार :– द्वेष, कलह, मुकदमाबाजी, मनमुटाव को दूर करना और अत्याचारी, अन्यायी, अकारण, आक्रमण करने वाली मनोवृत्ति का संहार करना, आत्मा तथा समाज में शान्ति रखने के लिये चार 'क्लीं' बीजमंत्रों के सम्पुट समेत रक्त लगाना तथा ऊन का आसन बिछाना चाहिये। लाल वस्त्र पहनकर सिंहारूढ़, खड्ग हस्ता, विकराल बदना, दुर्गा वेषधारी गायत्री का ध्यान करना चाहिये।

जिन व्यक्तियों का द्वेष–दुर्भाव निवारण करना हो उनका नाम पीपल के पत्ते पर रक्त चंदन की स्याही और अनार की कलम से लिखना चाहिये। इस पत्ते को उल्टा रखकर प्रत्येक मंत्र के बाद जल पात्र में से एक छोटी चम्मच भरके जल लेकर उस पत्ते पर डालना चाहिये। इस प्रकार 108 मन्त्र जपने चाहिये। इससे शत्रु के स्वभाव का परिवर्तन होता है और उसकी द्वेष करने वाली सामर्थ्य घट जाती है।

उदाहरण – ऊँ क्लीं भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

दूसरों को प्रभावित करना :– जो व्यक्ति अपने प्रतिकूल हैं उन्हें अनुकूल बनाने के लिये, उपेक्षा करने वालों में प्रेम उत्पन्न करने के लिये गायत्री द्वारा आकर्षण क्रिया की जा सकती है। वशीकरण तो घोर तांत्रिक क्रिया द्वारा ही होता है, पर चुम्बकीय आकर्षण जिससे किसी व्यक्ति का मन अपनी ओर सद्भावनापूर्वक आकर्षित हो, गायत्री की दक्षिण मार्गी इस योग साधना से हो सकता है।

गायत्री मन्त्र का जप तीन प्रणव लगाकर करना चाहिये और ऐसा ध्यान करना चाहिये कि अपनी त्रिकुटी (मस्तिष्क के मध्य भाग) में से एक नील वर्ण विद्युत–तेज की रस्सी जैसी शक्ति निकलकर उस व्यक्ति तक पहुँचती है, जिसे आपको आकर्षित करना है और उसके चारों ओर अनेक लपेट मारकर लिपट जाती है। इस प्रकार लिपटा हुआ वह व्यक्ति अर्द्धतंद्रित अवस्था में धीरे–धीरे खिंचता चला आता है और अनुकूलता की प्रसन्न मुद्रा उसके चेहरे पर छाई हुई होती है। आकर्षण के लिये यह ध्यान बड़ा प्रभावशाली है।

किसी के मन में, मस्तिष्क में से उसके अनुचित विचार हटाकर उचित विचार भरने हो, तो ऐसा करना चाहिये कि शान्तचित्त होकर उस व्यक्ति को अखिल नील आकाश में अकेला सोता हुआ ध्यान करें और भावना करें कि उसके कुविचारों को हटाकर आप उसके मन में सद्विचार भर रहे हैं। इस ध्यान–साधना के समय अपना शरीर भी बिल्कुल शिथिल और नील वस्त्र से ढका होना चाहिये।

उदाहरण – ऊँ ऊँ ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

रक्षा कवच :– किसी शुभ दिन उपवास रखकर केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, गोरोचन इन पाँच चीजों के मिश्रण की स्याही बनाकर अनार की कलम से पाँच प्रणव संयुक्त गायत्री मंत्र बिना पालिश किये हुए कागज या भोजपत्र पर लिखना चाहिये। कवच चांदी के ताबीज में बन्द करके जिस किसी को धारण कराया जाए, उसकी सब प्रकार की रक्षा करता है। रोग, अकाल मृत्यु, शत्रु, चोर, हानि, बुरे दिन, कलह, भय, राज्य दण्ड, भूत–प्रेत, व्यभिचार आदि से यह कवच रक्षा करता है। इसके प्रताप और प्रभाव से शारीरिक, आर्थिक और मानसिक सुख साधनों में वृद्धि होती है।

कांसे की थाली में उपर्युक्त प्रकार से गायत्री मंत्र लिखकर उसके प्रसव कष्ट से पीड़ित प्रसूता को दिखाया जाय और फिर पानी में घोलकर उसे पिला दिया जाय तो कष्ट दूर होकर सुख पूर्वक शीघ्र प्रसव हो जाता है।

उदाहरण – ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

बुरे स्वप्नों के फल का नाश :– रात्रि या दिन में सोने में कभी–कभी कई बार ऐसे भयंकर स्वप्न दिखाई पड़ते हैं, जिससे स्वप्न काल में भयंकर त्रास और दुःख मिलता है एवं जागने पर भी उसका स्मरण करके दिल धड़कता है। ऐसे स्वप्न कभी अनिष्ट की आशंका का संकेत करते हैं। जब ऐसे स्वप्न हों, तो एक सप्ताह तक प्रतिदिन दस–दस मालायें गायत्री चालीसा का पाठ भी दुःस्वप्नों के प्रभाव को नष्ट करने वाला है।

बेचैनी मिटाने का मन्त्र –किसी भी स्त्री अथवा पुरुष का खूब बेचैनी का अनुभव होता हो तो निम्न मन्त्र का बीस बार जप करके पानी को अभिमंत्रित कर पिला दें। इससे शीघ्र ही स्वस्थता का अनुभव होगा। पानी नहीं पी सके तो यही मन्त्र बोलते हुए पानी से छींटे देने चाहिए।

मन्त्र – ऊँ हंसः हंसः

असाध्य रोग निवारण मन्त्र

ऊँ नमो भगवति मृतसंजीवनि 'अमुकस्य' शान्ति कुरु कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र को 'अमृतसंजीवनी मन्त्र' कहते हैं। इस मन्त्र का यदि रोगी स्वयं जप करे तो 'अमुकस्य' के स्थान पर 'मम' कहे और जप करता रहे और यदि किसी दूसरे से जप करवाये तो अमुकस्य के स्थान पर रोगी का नाम बोले। नाम के साथ षष्ठी विभक्ति का प्रयोग करें। इसके जप से असाध्य, कष्टसाध्य एवं सामान्य सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

महामारी विनाष के लिए –

जयन्ती मंगला काली, भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते।।

आरोग्य और सौभाग्य प्राप्ति के लिए –

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्।

रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि।।

अभ्यास प्रश्न – ग

1 मन्त्र चिकित्सा विधि का अंग है –
क. आज्ञा ख. चर्चा ग. सादेश
2 शब्द शक्ति से कौन सी लहरें उत्पन्न होती है ? ''
3 रक्षा कवच हेत् गायत्री मन्त्र में कितने ऊँ की सम्पुट लगाया जाता है ?

6.12 सारांश –

शब्द ब्रह्म एक सेतु है, जिसका सम्बन्ध संसार के सभी वस्तुओं से है।' 'प्रत्येक वस्तु जो प्रकृति के अन्तर्गत है वे सभी एक कम्पन में स्पन्दित होने वाली तरंगें है। वैज्ञानिक रीति से मन्त्रशक्ति द्वारा चेतना को समुन्नत बनाया जा सकता है, **'मननात् त्रायते इति मन्त्रः'** जिसके मनन से त्राण मिले। यह अक्षरों का ऐसा दुर्लभ एवं विशिष्ट संयोग है, जो चेतना जगत् को आंदोलित, आलोड़ित एवं उद्वेलित करने में सक्षम होता है। इससे अन्तःकरण के समस्त कल्मश (नकारात्मकता) धुल जाते हैं। शब्द शक्ति को लेजर से भी अधिक सामर्थ्य पूर्ण शक्तिपुंज कहा गया है एवं इसी के आधर पर विज्ञान ने खगोल जगत् में ब्रह्माण्डीय आदान–प्रदान की तथा कार्य जगत् में सूक्ष्म तत्त्वों की जानकारी एवं चिकित्सा की शोध उपलब्धियाँ अर्जित की है। मनोरोग का मूल कारण व्यवहार में कम, चरित्र और चिन्तन के तलों पर अधिकहोते हैं, जिससे प्राणों का अतिशय क्षरण होता है। भारतीय मनोविज्ञान की समस्त पद्धतियों का उद्धेश्य प्राणों का क्षरण रोकना एवं ऊर्जा को संरक्षित करना है। इस हेतु मन्त्र चिकित्सा के अर्न्तगत – संकल्प (ऑटोसजेशन); सादेश (सजेशन); समवशीकरण (हिप्नोसिस); कर्मकाण्ड (रिचुअल); नाट्यविधि (ड्रामा); बह्मकवच (मनोवैज्ञानिक रक्षात्मक विश्वास) आते हैं। मंत्रों के द्वारा रोग के बीज को ही नष्ट कर दिया जाता है, मन्त्र चिकित्सा द्वारा असम्भव को भी सम्भव करके देखा जा सकता है और व्यक्तित्त्व के सभी आयामों को विकसित करके जीवन के शिखर को प्राप्त किया जा सकता है। ''मन्त्र विद्या'' ने अपने आँचल में प्रकृति के गूढतम रहस्य को छिपाकर रखा है। यदि इसे आधुनिक विज्ञान के कसौटी में कसकर खरा सिद्ध किया जा सके तो 'मन्त्र' साधक के व्यक्तित्व की बिखरी हुई शक्तियों को केन्द्रिभूत कर उनके अन्दर देवत्व की शक्तियाँ विकसित की जा सकती हैं।

6.13 शब्दावली

मन्त्राधिष्ठातृ – मन्त्र के प्रमुख देवता।
चित्त – कर्माशय या कर्म संचित होने का स्थान ।
भोगेच्छा – सांसारिक विषय भोगों को भोगने की प्रबल इच्छा।
पुरश्चरण – इसका शाब्दीक अर्थ चलने से पूर्व की स्थिति है अर्थात् किसी श्रेष्ठ या बड़े संकल्पों की पूर्ति हेतु की जाने वाली जप या यज्ञानुष्ठान।
अनुबन्ध – नियम, अनुशासन।

6.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – क 1. दीक्षा 2.चित्त की प्रसन्नता, मन की सन्तुष्टि, अल्पभोजन, निद्रानाश एवं स्वप्न में जलाशय या पके फलों का दर्शन। 3. वशीकरण

अभ्यास प्रश्न – ख 1. समर्पण 2. अक्षरवृत्ति 3. ध्यानात्मक

अभ्यास प्रश्न – ग 1. सादेश 2. इलेक्ट्रोमैग्नेटिक 3. पाँच

6.15 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1 आचार्य पं.श्रीराम शर्मा (1998)–'शब्द–ब्रह्म, नाद–ब्रह्म,' वाड.मय खण्ड 19 अखण्ड ज्योति संस्थान,मथुरा, पृ. 2.16

2 आचार्य पं.श्रीराम शर्मा (1997) – 'मन्त्र महाविज्ञान,' संस्कृति संस्थान, बरेली उ.प्र.,पृ. 452.

3 देशिकेन्द्र श्रीलक्ष्मण (1998) – 'शारदा तिलकतन्त्र' द्वितीयपटल

4 अखण्ड ज्योति पत्रिका – पं. श्रीरामशर्मा आचार्य

5 शर्मा ऋतशील (1993) 'मन्त्र–कल्पतरु', कल्याण मंदिर प्रकाशन प्रयाग 6

6 अध्यात्म के स्वर – डॉ. अमृत गुर्वेन्द्र

6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1 मन्त्र सिद्धि के लक्षण एवं सिद्धोपरान्त पालनीय कर्त्तयों की व्याख्या कीजिए ?

2 जप क्या है ? जप प्रकारों का सविस्तार पूर्वक वर्णन करें ?

3 मन्त्र साधकों द्वारा साधना काल में पालन किए जाने वाले नियमों का विस्तृत वर्णन कीजिए ?

4 मन्त्र चिकित्सा के शास्त्रीय विधियों का वर्णन कीजिए ?

5 मन्त्रजप के वैज्ञानिकता का विश्लेषणात्मक वर्णन कीजिए ?

6 आरोग्य प्राप्ति हेतु किन्हीं तीन मन्त्रों का वर्णन कीजिए ?

इकाई – 7 संगीत चिकित्सा की अवधारणा एवं उपयोगिता

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 संगीत चिकित्सा की अवधारणा
7.4 संगीत के विभिन्न प्रकार
7.5 संगीत के चिकित्सा की उपयोगिता
7.6 संगीत के स्वरों का स्वास्थ्य पर प्रभाव
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.11 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठको, इससे पूर्व की इकाईयों में आपने प्रार्थना, मंत्र एवं यज्ञ चिकित्सा का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हम संगीत चिकित्सा के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे।

वर्तमान समय में मानव जीवन इतना अधिक अशान्त एवं तनावग्रस्त हो गया है कि प्रत्येक उम्र एवं वर्ग का व्यक्ति शांति की खोज में भटक रहा है। समस्त भौतिक सुविधायें होने के बावजूद जीवन में आनंद एवं शांति नहीं है। यह आनंद और शांति कहीं खो सी गई है। जिसका परिणाम है, विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक रोग एवं भावनात्मक घुटन। इन सब समस्याओं से छुटकारा पाने हेतु आज व्यक्ति अनेक प्रकार की वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों की ओर आकर्षित हुआ है। यूँ तो वर्तमान समय में अनेक वैकल्पिक चिकित्साओं का प्रचलन है, किन्तु इनमें से संगीत चिकित्सा पद्धति अत्यन्त सहज, सुलभ एवं निरापद है, जो मनुष्य के सम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

तो आइये, अब संगीत चिकित्सा के विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन करते हैं।

7.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों , प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- संगीत चिकित्सा की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- संगीत के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
- संगीत चिकित्सा की उपयोगित का विवेचन कर सकेंगे।
- संगीत के स्वरों का मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव पर विश्लेषण कर सकेंगे।

7.3 संगीत चिकित्सा की अवधारणा

प्रिय विद्यार्थियों, ध्वनि चिकित्सा के जितने भी रूप है, उनमें संगीत चिकित्सा सर्वाधिक लोकप्रिय है। यदि हम गहराई से अनुभव करें तो पायेंगे कि ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण संरचना ही संगीतमय है। सृष्टि के आदि में भी सर्वप्रथम अनाहत नाद अर्थात् **ऊँकार** की ध्वनि ही

उत्पन्न हुयी थी और उसके बाद फिर सृष्टि रचना का क्रम आरीा हुआ। इस प्रकार सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ लयबद्ध गति से गतिमान् हो रहा है। मानव जीवन भी अपने प्राकृत स्वरूप में संगीतमय है, किन्तु वर्तमान समय में भौतिकवादी जीवनशैली एवं इंसान के अपने स्वार्थ, अज्ञान एवं अहंकार के कारण जीवन का संगीत कहीं खो गया है। राग बेसुरा हो गया है, जीवन की लय बिगड़ गई है। जिस शरीर एवं मन से संगीत प्रवाहित होना चाहिये, वह शरीर व्याधियों से ग्रस्त और मन विक्षिप्त हो गया है। अतः आप संगीत चिकित्सा के माध्यम से पुनः जीवन संगीत को लयबद्ध करने की आवश्यकता है।

संगीत चिकित्सा की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। इसमें संगीत सुनने से लेकर संगीत लिखना, सुर बनाना, संगीत के माध्यम से प्रस्तुति देना, संगीत की चर्चा करना, संगीत के माध्यम से प्रशिक्षण इत्यादि सभी शामिल है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य संवर्द्धन हेतु संगीत का किसी भी रूप में उपयोग संगीत चिकित्सा के अन्तर्गत आता है।

7.4 संगीत के विभिन्न प्रकार –

प्रिय पाठकों, संगीत के अनेक प्रकार है और भिन्न – भिन्न प्रकार के संगीतों का प्रभाव भी भिन्न – भिन्न होता है। संगीत के विभिन्न प्रकार निम्नानुसार हैं –

क) भक्ति संगीत

ख) वाद्य संगीत एवं शास्त्रीय संगीत

ग) लोक संगीत

घ) फिल्मी संगीत

ड़) पॉप संगीत

इन सभी का विस्तार से विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है –

क) भक्ति संगीत – पाठकों, भक्ति संगीत भी दो प्रकार का माना गया है। एक, वह जिसके माध्यम से हम ईश्वर को पुकारते है, उनका भावभय स्मरण करते हैं। भारतीय संस्कृति में यह मान्यता है कि सुबह और सांयकाल सन्धिबेला में भक्तिसंगीत गाने और सुनने से हमारी भावनायें ईश्वर तक पहुँचती है ? और ऐसा संगीत प्राणिमात्र के हृदय में पवित्रता का संचार करके आत्मिक शान्ति एवं आनन्द प्रदान करता है। इसलिये हमारे यहाँ सुबह से मन्दिरों में, टी0वी0, रेडियों इत्यादि में भक्ति संगीत सुनने को मिल जाते है। इसके साथ ही यह भी मान्यता है कि दिन की शुरूआत भक्ति संगीत से करने पर पूरा दिन अच्छा बीतता है। सुबह के समान सांयकला भी मन्दिरों में भी मन्दिरों में भगवान् की आरती की जाती है। विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्र बजाये जाते है, लोग अपने घरों में भी आरती करते है। इससे सम्पूर्ण वातावरण भक्तिमय और संगीतमय हो जाता है। जो हमें तनावमुक्त करके अत्यन्त शांति एवं प्रसन्नता प्रदान करता है।

भक्ति संगीत का दूसरा प्रकार देशभक्ति संगीत है, जो प्रायः किसी विशिष्ट राष्ट्रीय पर्व पर गाये – बजाये जाते हैं और जिनको गाने और सुनने से हमारे मन में देशभक्ति की भावना उत्पन्न होती है, क्योंकि इन संगीतों में हमारे देश की स्वतंत्रता की अनेक घटनायें होती है, अनेक महापुरूषों की बलिदान की गाथायें होती है। उदाहरण के तौर पर 15 अगस्त (स्वतंत्रता दिवस), 26 जनवरी (गणतंत्र दिवस), 02 अक्टूबर (गाँधी जयन्ती एवं शास्त्री जयन्ती) को हमारे टी0वी0 चैनलो, रेडियो, विद्यालयों आदि में इस प्रकार के देशभक्ति से ओतप्रोत संगीत सुनने को मिलते हैं। जिनको सुनने – गाने मात्र से राष्ट्रप्रेम का संचार होने लगता है।

ख) वाद्य संगीत एवं शास्त्रीय संगीत – भिन्न – भिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों जैसे तबला, बासुरी, हारमोनियम, सितार, वीणा आदि द्वारा बजाया जाने वाला संगीत वाद्य संगीत और शास्त्रीय संगीत कहलाता है।

ग) लोक संगीत –यह संगीत का ऐसा प्रकार है जो अलग – अलग राज्यों में और अलग–अलग क्षेत्रों में उस राज्य की भाषा, उस क्षेत्र की भाषा में गाया – बजाया जाता है। इस प्रकार संगीत का लोग विभिन्न समारोहों तथा विवाह आदि उत्सवों में भी गायन – वादन करते है।

घ) फिल्मी संगीत – वर्तमान समय में फिल्मी संगीत अत्यन्त लोकप्रिय है। प्रत्येक उम्र का व्यक्ति चाहे वह बच्चा हो, युवक हो, प्रौढ़ हो या वृद्ध हो, स्त्री हो या पुरूष हो सभी इसे गाना एवं सुनना पसन्द करते हैं। विभिन्न समारोहों, उत्सवों में इस प्रकार के संगीत गाये–बजाये जाते हैं। इससे मन तनाव एवं चिन्ता से मुक्त होकर प्रसन्न रहता है।

ड़) पॉप संगीत – वर्तमान समय में युवा पीढ़ी के बीच पॉप संगीत अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। युवा प्रायः अपने कैरियर, रोजगार आदि को लेकर अत्यधिक तनावग्रस्त रहते है। पॉप संगीत इन्हें तनावमुक्त करके इनमें जोश, उमंग उत्साह का संचार करता है। वर्तमान समय में अनेक युवक – युवतियाँ पॉप संगीत के क्षेत्र में भी अपना कैरियर बना रहे हैं और तलाश रहे हैं, जिससे पॉप गायकों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार स्पष्ट है कि संगीत के अनेक प्रकार हैं, जिनका भिन्न – भिन्न प्रकार से उपयोग करके स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डाले जा सकते हैं।

7.5 संगीत के चिकित्सा की उपयोगिता

प्रिय विद्यार्थियों, संगीत का हमारे जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत प्राणीमात्र के जीवन में आनन्द, उल्लास, प्रसन्नता, स्वास्थ्य एवं शांति का संचार करता है। संगीत में अद्‌भुत सामर्थ्य है। यह प्राणी को आनन्द की गहराइयों में ले जाता है। संगीत के माध्यम से अचेतन में दमित इच्छायें, भावनायें, बाहर निकल जाती है और व्यक्ति का मन आनन्द तथा प्रसन्नता से भर जाता है। संगीत द्वारा व्यक्ति तनाव मुक्त होकर स्वयं को प्रफुल्लित एवं उत्साहित अनुभव करता है।

''ध्वनि और संगीत का मानव के स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। ध्वनि चिकित्सा का उपयोग अस्पतालों, विद्यालयों, कॉरपोरेट कार्यालयों और मनोवैज्ञानिक उपचारों में किया जाता है। इससे खिंचाव कम होता है। रक्तचाप कम होता है, दर्द दूर होता है। सीखने की अयोग्यता दूर होती है, गतिशीलता व संतुलन में वृद्धि होती है और सहनशक्ति तथा क्षमता में वृद्धि होती है।'' **(वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ)**

'' हमारे शरीर पर ध्वनियों का एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। तेज आवाजें तनाव, उच्च रक्तचाप, दबाव तथा अनिद्रा जैसे विकार उत्पन्न करती है, परन्तु यदि गंधव संगीत को कर्णप्रिय स्वरों तथा रागों के साथ बजाया जाये तो वह रोगियों को निश्चित रूप से लाभ पहुँचायेगा।'' **(आयुर्वेद और स्वस्थ जीवन)**

संगीत चिकित्सा के प्रभावों काा विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

1. **शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से**
2. **मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से**
3. **आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से**
4. **सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से**

5. **वनस्पतियों पर संगीत का प्रभाव**
6. **पशुओं पर संगीत का प्रभाव**

इन सभी का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है –

1. शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से –

शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से संगीत चिकित्सा का अत्यन्त महत्व है। विभिन्न रोगों को दूर करने में यह चिकित्सा पद्धति अत्यन्त कारगर सिद्ध हुयी है।

''ध्वनि चिकित्सा के सभी रूपों में संगीत चिकित्सा सर्वाधिक प्रचलित है। संगीत चिकित्सा हृदय गति को संतुलित कर सकती है रक्तचाप को सामान्य बना सकती हैं और दर्द व चिन्ता से मुक्त करती है। अस्पतालों में इसका उपयोग दर्द से मुक्ति देने में, रोगी की मनोवैज्ञानिक स्थिति को सुधारने के लिये और निराशा से छुटकारा दिलाने के लिये, शारीरिक गतिशीलता को बढ़ावा देने के लिये, शांतचित्तता लाने के लिये, निद्रा को प्रभावित करने के लिये भयमुक्त करने के लिये और माँसपेशीय तनाव को दूर करने के लिये किया जाता है। इसके अलावा चिकित्सालयों में भर्ती मरीज की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक गतिविधियों में रूचि बढ़ाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

(वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ)

शारीरिक स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से संगत चिकित्सा का प्रयोग अनेक प्रकार से किया जा सकता है। जैसे –

- **रक्तचाप को नियंत्रित करने के लिये।**
- **श्वसन गति का नियमन।**
- **रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि के लिये।**
- **नींद संबधी समस्याओं को दूर करने में।**
- **रक्त संचार को संतुलित करने में।**
- **दर्द में राहत देने के लिये।**
- **माँसपेशीय तनाव को दूर करने में।**
- **शल्य चिकित्सा के पहले तथा बाद की चिंता से छुटकारा दिलाने में।**
- **रसायनोपचार के दौरान मिचली तथा उल्टी से छुटकारा दिलाने में।**
- **प्रसव के दौरान एनेस्थीसिया को त्यागने में।**
- **पाचन प्रणाली के नियमन के लिये।**
- **विभिन्न शारीरिक रोगों को दूर करने में इत्यादि।**

वर्तमान समय में संगीत चिकित्सा अत्यधिक लोकप्रिय होती जा रही है। अब तक विश्व के अनेक देशों में इस चिकित्सा पद्धति के प्रभाव का अध्ययन टी0बी0, कब्ज, टायफाइड, माइग्रेन, हृदयरोग, अनिद्रा, दाँतरोग, मिरगी, मलेरिया, बेहोशी, वीर्यदोष, श्वेत प्रदर आदि का सफलतापूर्वक किया जा चुका है। अध्ययनों के अनुसार नये तथा तीव्र रोगों में संगीत चिकित्सा से शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होता है, जबकि जीर्ण रोगों में संगीत चिकित्सा के साथ–साथ अन्य वैकल्पिक चिकित्साओं जैसे – योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा आदि का उपयोग फायदेमंद होता है। संगीत चिकित्सा पर हुये एक प्रयोगात्मक अध्ययन के अनुसार कैंसर पीड़ित 19 बच्चों को जब मात्र 30 मिनट की एक संगीत

चिकित्सा दी गई तो इससे उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता में आश्चर्यजनक वृद्धि हुयी, जबकि उन 17 बच्चों की रोगप्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि नहीं हुयी। जिनको संगीत चिकित्सा नहीं दी गई थी। संगीत से मस्तिष्क की विकृत माँसपेशियाँ सशक्त एवं सक्रिय होकर संतुलित होती हैं, जिससे तनाव दूर होता है। अमेरिका में दाँतसंबधी समस्याओं और रोगों का दूर करने में संगीत चिकित्सा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है।

भिन्न – भिन्न रोगों का स्वास्थ्य पर भिन्न – भिन्न प्रभाव पड़ता है। संगीत विशेषज्ञों के अनुसार कुछ प्रमुख राग जो विभिन्न रोगों में उपयोगी हैं, वे निम्नानुसार हैं –

वातरोग में मेघमल्हार, खाँसी में भैरव, वीर्यरोग में आसावरी, टी0बी0 में रामकली, मुलतानी, तिलंग, विलावल राग, सिरदर्द, दाँत दर्द, अनिद्रा, उच्च रक्तचाप आदि उद्दीपक प्रभावक रोगों में मुलतानी, भैरवी, मालकौंस, तोड़ी पूर्वी, यूरिया, धानी, विहागखमाज राग, आलस्य एवं शौथिल्य की स्थिति में कामोद, अड़ाना, सोरठ आदि रागों को प्रभावी माना गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से संगीत चिकित्सा अत्यन्तउपयोगी है।

2. मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से –

संगीत का पभाव हमारे शरीर के साथ – साथ मन पर भी पड़ता है। तन और मन दोनों को प्रभावित करके संगीत हमारे जीवन में एक नया उल्लास और आनंद भर देता है। संगीत शोध विशेषज्ञों के अनुसार जब सुरताल के साथ संगीत बजाया या गाया जाता है तो एक विशेष आवृत्ति की ध्वनि तरंगे निकलती हैं, जो मानव मस्तिष्क की रासायनिक विद्युतीय संरचना पर प्रभाव डालती है। मस्तिष्क में प्रशामक शांतिदायक रसायन बीटा एडारेत्फिन का समुचित मात्रा में स्राव होने लगता है। लिम्बिक सिस्टम जिसका संबध हमारे संवेगों से है, उसके न्यूरॉन एडोरफिन को संगृहित कर लेते हैं। जिसके कारण मनोरोगों और मानसिक समस्याओं के कारण अव्यवस्थित जैसे – विद्युतीय परिपथ (Short Circuit) सामान्य अवस्था में आ जाते हैं और व्यक्ति की मनोदशा में सुधार होने लगता है।

रूसी वैज्ञानिक प्रो0 एस0 बी0 कोदाफ ने स्नायविक एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त लोगों पर संगीत चिकित्सा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। शिकागो के मनश्चिकित्सक डॉ0 बंकर, पीटर, न्यूमैन एवं माइकेल सेण्डर्ड के अनुसार मनोरोगों को दूर करने में संगीत चिकित्सा अन्य चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में अधिक प्रभावी एवं निरापद है। संगीत की तरंगों से व्यक्ति की अचेतन में दमित भावनायें चेतन में आकर निष्कासित हो जाती है। जिससे व्यक्ति स्वयं को हल्का और तनावमुक्त महसूस करता है।

''संगीत ध्वनि तरंगों का प्रभाव मस्तिष्क के बाँये तथा दायें गोलार्द्ध पर पड़ता है और वहाँ से उत्पन्न होने वाले रोगों को नियंत्रित तथा ठीक किया जा सकता है।''

संगीत विशेषज्ञों ने विभिन्न मनोरोगों के उपचार में कुछ विशेष रागों को प्रभावी बताया है। जैसे – उन्माद में बहार एवं बागेश्री, मिरगी में धानी एवं बिहाग, हिस्टीरिया में यूरिया, दरबारी कान्हड़ा, खमाज आदि को उपयोगी माना गया है।

''सुबह का संगीत मस्तिष्क को शांत करता है। शास्त्रीय संगीत को रोगों में अधिक प्रभावी पाया गया है। आनंद भैरवी उच्च रक्तचाप को कम करने में लाभदायक है। हिंडेला, भूपति, वसंत, कंदा, नीलांबरी, असावेक संगीत उत्तेजिज दिमाग को शान्त करते हैं। पागलपन के लिये सारंग राग उत्तम है। तोड़ी तथा शिवरंजिनी भी मनोरोगों में उपयोगी है। सुप्रभात प्रार्थना शरीर तथा मस्तिष्क के लिये अच्छी है।'' **(आयुर्वेद और स्वस्थ जीवन)**

''जब चिन्तामुक्त होने के लिये संगीत का उपयोग किया जाता है तो वह धीमा, नियमित, लयबद्ध, मध्यम स्वर, हल्के वाद्य और शांतिदायक मधुरता से युक्त होना चाहिये।''

(वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ)

संगीत चिकित्सा मुख्यतः निम्न मानसिक समस्याओं और मनोरोगों में उपयोगी है –

- **तनाव**
- **दुश्चिंता**
- **मिरगी**
- **हिस्टीरिया**
- **अवसाद**
- **उन्माद इत्यादि**

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि संगीत चिकित्सा का मानसिक स्वास्थ्य पर भी बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

3. आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से –

आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी संगीत का मानव जीवन में अनिर्वचीनय महत्व है। सृष्टि की उत्पत्ति के समय परब्रह्म ने स्वयं को सर्वप्रथम शब्द के रूप में ही अभिव्यक्त किया था। इसलिये कहा भी गया है –

''शब्दो वै ब्रह्म''

अर्थात्

''शब्द ही ब्रह्म है।''

सृष्टि के आदि में गुंजित होने वाला प्रथम स्वर ''**ऊँकार**'' है और इसी **ऊँकार** से सातों स्वर (सा, रे, ग, म, प, ध, नि) जन्में।

स्वर के उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण सृष्टि में उल्लास छा गया और प्राणीमात्र खुशी से झूम उठा।

यदि आध्यात्मिक दृष्टि से संगीत की बात की जाये तो शास्त्रों में इसका वर्णन **''नाद साधना''** के रूप में मिलता है। नाद का अर्थ है – ''ध्वनि'', जो मूलतः दो प्रकार की मानी गयी है – **1) आहत और 2. अनाहत।** आहत से तात्पर्य प्रयासपूर्वक उत्पन्न की जाने वाली ध्वनि से है और अनाहत से आशय बिना प्रयास के स्वतः उत्पन्न होने वाली ध्वनि से है। नादसाधना में साधक धीरे – धीरे स्वयं को पहले अपने अन्दर उत्पन्न होने वाली स्थूल ध्वनियों पर एकाग्र करता है, जैसे श्वास की , रक्त संचार की ध्वनि। इसके बाद जैसे – जैसे उसकी एकाग्रता बढ़ती जाती है, वैसे – वैसे वह अपने अन्दर और अधिक सूक्ष्म ध्वनियाँ सुनता है और सबसे अंतिम में अनाहत नाद के रूप में **ऊँकार** की ध्वनि सुनायी पड़ती है। जिससे साधक परमानंद को प्राप्त होता है।

यदि विश्व इतिहास पर भी हम दृष्टिपात करें तो अनेक ऐसे भक्त साधकों के उदाहरण हमें मिलते हैं, जिन्होंने भक्ति संगीत द्वारा उस परमात्मा का साक्षात्कार किया । जैसे – महान् भक्त चैतन्य महाप्रभु, कृष्ण भक्ति में लीन मीराबाई आदि। आज भी उनके भक्तिपूर्ण संगीत को सुनकर प्राणीमात्र में आध्यात्मिक भावनायें हिलोरें लेने लगती हैं।

अतः स्पष्ट है कि संगीत हमारे आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

4. सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और एक अच्छा समाजिक जीवन व्यतीत करने के लिये उसका सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है और संगीत इसमें महत्वपूर्ण भमिका निभाता है। एक ओर तो संगीत से व्यक्ति में उत्साह का संचार होता है, जो उसे सक्रिय बनाकर सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिये अभिप्रेरित करती है। दूसरी ओर संगीत हमारी भावनाओं में सकारात्मक परिवर्तन लाता है। इससे हमारे मन में दूसरों के प्रति सद्भाव उत्पनन होते हैं और इससे हमारे मन में दूसरों के प्रति सद्भाव उत्पन्न होते हैं और इससे हम संतोषजनक सामाजिक संबध कायम करने में सफल होते हैं।

इस प्रकार संगीत सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करता है।

5. वनस्पतियों पर संगीत का प्रभाव –

संगीत मनुष्यों को ही नहीं वरन् वनस्पतियों को भी प्रभावित करता है। प्राणीमात्र पर इसका प्रभाव पड़ता है। संगीत के वनस्पतियों पर प्रभाव को लेकर वैज्ञानिकों द्वारा अनेक शोध कार्य किये गये हैं और इनके परिणाम अत्यन्त आशाजनक रहे हैं।

चेन्नई के अन्नामलाई विश्वविद्यालय में वनस्पति विभाग के अध्यक्ष डॉ0 टी0एन0 सिंह ने चेन्नई तथा पांडिचेरी कृषिफार्मों में मूटर, धान, चना, सेम, सरसों आदि के पौधों पर संगीत के प्रभाव का अध्ययन किया। इन अध्ययनों के परिणामों में पाया गया कि संगीत से अन्नोत्पादन में वृद्धि होती है तथा फलों की गुणवत्ता तथा आकार में भी वृद्धि होती है।

अतः स्पष्ट है कि संगीत का प्रयोग करके विभिन्न वनस्पतियों की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों ही बढ़ायी जा सकती है।

6. पशुओं पर संगीत का प्रभाव –

पशुओं पर भी संगीत के प्रभावों को लेकर अनेक प्रयोगात्मक अध्ययन किये गये हैं। इस संबध में सोवियत रूस में एक प्रयोग किया गया, जिसके परिणाम में पाया गया कि संगीत के प्रभाव से दुधारू जानवरों की दुग्ध उत्पादन की क्षमता में वृद्धि हुयी तथा उनकी उत्तेजना एवं उद्विग्नता के स्तर में कमी आयी। रूस के महान् वैज्ञानिक **गलोना हुगी** था और विक्टर कोनकोव ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मानसिक रूप से शांत होने पर पशु अधिक दूध देते है। इसी प्रकार अन्य अध्ययनों के अनुसार संगीत से पशुओं के स्वास्थ्य में भी शीघ्र सुधार होता है।

7.6 संगीत के स्वरों का स्वास्थ्य पर प्रभाव –

संगीतशास्त्र या गान्धर्ववेद में सात प्रकार के स्वर बताये गये हैं ? जिनसे मिलकर ही सभी प्रकार की राग – रागनियॉं बनी है। ये सात स्वर हैं – **सा, रे, ग, म, प, ध, नि।** इन स्वरों का हमारे स्वास्थ्य से गहरा संबध है। विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों को दूर करने के लिये संगीत चिकित्सा के रूप में इन स्वरों को अलग – अलग ढंग से प्रयोग किया जाता है। ये सात स्वर किस प्रकार हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, इनका विवेचन निम्नानुसार है –

1. **स (शड्ज) –** सा को शड्ज भी कहा जाता है क्योंकि यह स्वर नासिका, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा एवं दॉंत – इन छः स्थानों के सहयोग से उत्पन्न होता है तथा शेष छः स्वरों की उत्पत्ति का आधार है।

इस स्वर का स्थान नाभि – प्रदेश है तथा प्रकृति ठंडी एवं रंग गुलाबी है। इसका देवता अग्नि माना जाता है। अतः पित्तज रोगों के शमन में लाभकारी है।

उदाहरण – मोर का स्वर षड्ज माना जाता है।

2. **रे (ऋश्भ) –** नाभि प्रदेश से उठती हुयी वायु जब कण्ठ एवं शीर्ष प्रदेश से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करती है तो वह स्वर ऋषभ या रे कहलाता है।

इस स्वर का स्थान ह्रदय – प्रदेश है तथा स्वभाव शीतल एवं शुष्क, वर्ण हरा और पीला मिला हुआ है। ब्रह्मा इसके देवता है। यह स्वर कफज एवं पित्तज रोगों को दूर करता है।

उदाहरण – पपीहे का स्वर ऋषभ माना जाता है।

3. **ग (गन्धार) –** नाभि से उठती हुयी वायु जब कण्ठ एवं शीर्ष प्रदेश से टकराकर नासिका की गंध से मिश्रित होकर निकलती है, तब वह गन्धार कहलाती है।

इसका स्थान फेफड़े हैं। स्वभाव शीतल, रंग नारंगी और देवता सरस्वती है। यह पित्तज रोगों के शमन में विशेष लाभकारी है।

उदाहरण – बकरे का स्वर गन्धार माना गया है।

4. **म (मध्यम) –** नाभि प्रदेश से उठती हुयी वायु जब वक्ष – प्रदेश (उर– प्रदेश) तथा ह्रदय से टकराकर मध्य भाग में ध्वनि करती है, तब उसे मध्यम स्वर कहा जाता है।

इसका स्थान कंठ है। प्रकृति शुष्क, वर्ण गुलाबी एवं पीला मिश्रित है। इसकी प्रकृति चंचल मानी गयी है और देवता महादेव है। मध्यम स्वर वातज एवं कफज रोगों का शमन करता है।

उहारण – कौआ का स्वर।

5. **प (पंचम्) –** सात स्वरों में पाँचवे क्रम पर होने के कारण तथा पाँच स्थान (नाभि, उर, ह्रदय, कण्ठ एवं शीर्ष) का स्पर्श करने के कारण यह स्वर पंचम् कहलाता है।

पंचम स्वर का देवता लक्ष्मी को माना गया है। इसका स्वभाव उत्साहपूर्ण, वर्ण लाल एवं स्थान मुख है। यह कफज रोगों के शमन में विशेष रूप से उपयोगी है।

6. **ध (धैवत) –** पहले के पाँच स्वरों का अनुसंधान करने वाले इस स्वर का स्वभाव मन को प्रसन्न ओर उदासीन दोनों बनाता है। इसका स्थान तालु माना गया है। इसके देवता गणेश हैं और यह पित्तज रोगों को दूर करने में लाभकारी है।

उदाहरण – जैसे मेंढक का स्वर।

7. **नि (निषाद) –** अपनी तीव्रता से अन्य सभी स्वरों को दबा देने के कारण यह स्वर निषाद कहलाता है।

इसकी प्रकृति शीतल एवं शुष्क तथा रंग काला है। इसका स्थान नासिका है। सूर्य इसके देवता माने गये है। इसका स्वभाव जोशीला एवं आहादकारी है। वातज रोगों के शमन के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण – हाथी का स्वर निषाद माना गया है।

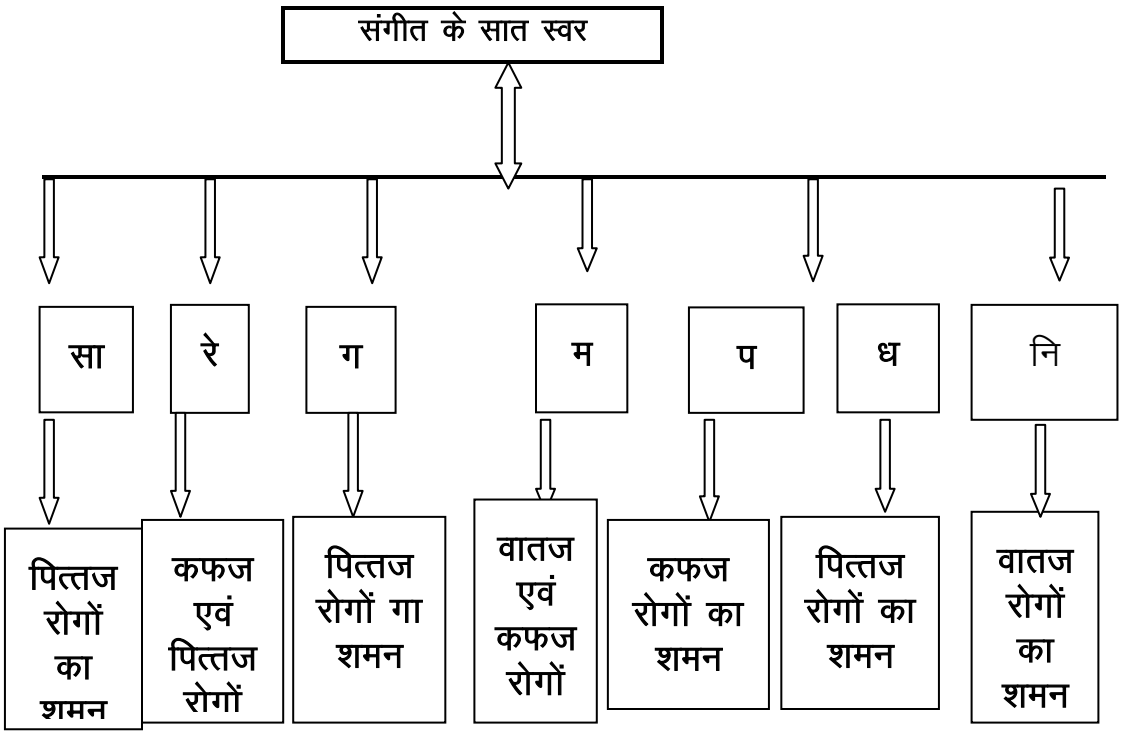

7.7 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से संगीत चिकित्सा कितनी उपयोगी तथा प्रभावी है। इसी कारण आज सम्पूर्ण विश्व में यह चिकित्सा पद्धति इतनी अधिक लोकप्रिय हो रही है। संगीत न केवल मनुष्य को वरन् सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को, चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन प्रभावित करता है। इतिहास इस बात का प्रमाण है। बैजू बावरा में मालकोस राग से पत्थर पिघलाने तथा तानसेन में दीपक राग से दीपक तक जलाने की सामर्थ्य थी। मेघमल्हार की ध्वनि से तो सुदूर अंतरिक्ष में फैले बादल तक पिघलकर बरस पड़ते थे। वैज्ञानिक तो यहाँ तक कहते हैं कि वाद्य यंत्र न उपलब्ध होने पर भी, गाना न आने पर भी प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्न मन से गाना चाहिये, क्योंकि गाने से शरीर के विभिन्न अंगों जैसे – हृदय, फेफड़ों आदि का अच्छा व्यायाम होता है। इससे शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न और आत्मा संतुष्ट होती है। अतः स्पष्ट है कि संगीत में अद्भुत सामर्थ्य है, जिसको पहचानकर एवं अनुभव कर हम अपने जीवन को खुशहाल बना सकते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

(सत्य/ असत्य)

1. संगीत का प्रभाव हमारे शरीर एवं मन दोनों पर पड़ता है। (सत्य/असत्य)
2. सातों स्वर को ऊँकार से उत्पन्न माना गया है। (सत्य/असत्य)
3. 'रे' स्वर को षड्ज भी कहा जाता है। (सत्य/असत्य)
4. कौए का स्वर मध्यम है। (सत्य/असत्य)

5. गन्धार स्वर पित्तज रोगों के शमन में अत्यन्त लाभकारी है। (सत्य/असत्य)

7.8 शब्दावली –

- **वात – पित्त – कफ –** वात – पित्त – कफ आयुर्वेद में इन्हें त्रिदोष की संज्ञा दी गई है और यह माना गया है कि इन तीनों दोषों में असंतुलन होने के कारण ही विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।
- **नाद –** ध्वनि
- **आहत नाद –** प्रयासपूर्वक या किसी आघात से उत्पन्न होने वाली ध्वनि।
- **अनाहत नाद –** बिना प्रयास या आघात के स्वतः उत्पन्न होने वाली ध्वनि। ऊँकार की ध्वनि को अनाहत नाद माना जाता है।
- **शड्ज –** छः स्थानों के सहयोग से उत्पन्न होने वाला। 'सा' स्वर को शड्ज इसलिये कहा जाता है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. सत्य 2 सत्य 3 असत्य 4 सत्य 5 सत्य

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. देवराज, टी0एल0 (2008), आयुर्वेद और स्वस्थ जीवन, ग्रन्थ अकादमी, नयी दिल्ली।
2. कल्याण – आरोग्य अंक, गीताप्रेस गोरखपुर।

7.11 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री –

1. वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ – डॉ0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात प्रकाशन नयी दिल्ली।

7.12 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1 : संगीत चिकित्सा की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये मानव जीवन में इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 8 – पिरामिड चिकित्सा की अवधारणा एवं उपयोगिता

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 पिरामिड का अर्थ
8.4 पिरामिड चिकित्सा की उपयोगिता
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.9 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना –

जिज्ञासु विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाई में हमने संगीत चिकित्सा का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम इसी क्रम को आगे को बढ़ाते हये पिरामिड चिकित्सा की अवधारणा एवं उपयोगिता के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रिय पाठको, आप सभी इस बात से सुपरिचित हैं कि **मिस्र के पिरामिड विश्वविख्यात हैं।** ये दुनिया के सात आश्चयों में से एक हैं। आज वैज्ञानिक इस बात का रहस्य जानने में जुटे हुये हैं कि आखिर ऐसा क्या है, जिसके कारण हजारों साल पहले पिरामिड के नीचे रखी हुयी लाशें, जिनको **'ममी'** कहा जाता है, वो अभी तक भी खराब क्यों नहीं हुयी हैं?

प्रिय विद्यार्थियों, इस सन्दर्भ में हुयी विभिन्न खोजों से यह प्रमाणित हो चुका है कि पिरामिड के अन्दर अद्भुत प्रकार की ऊर्जा तरंगे निरन्तर काम करती रहती हैं, जिनका प्रभाव जड़ एवं चेतन दोनों पर समान रूप से पड़ता है।

पाठकों, पिरामिड के अन्दर रखी हुयी इन ममी के ऊपर एवं नीचे विद्युत लहरें निरन्तर चलती रहती हैं, जिसके कारण ऊर्जा का प्रवाह सत्त बना रहता है और लाशे खराब नहीं होती हैं। पिरामिडों की इस शक्ति को वैज्ञानिकों ने **''पिरामिड पावर''** का नाम दिया है। पिरामिडों की इस शक्ति के कारण आज ''**पिरामिड चिकित्सा**'' के नाम से यह पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। स्वस्थ जीवन की प्राप्ति के लिये आज अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया जैसे देशों में अस्पतालों को पिरामिड जैसा आकार देने का प्रयास किया जा रहा है। पिरामिड संबधी विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि पिरामिडो की इस शक्ति का हम अपने दैनिक जीवन में भी लाभ उठा सकते है।

तो आइये, अब हम चर्चा करते हैं कि किस प्रकार इस चिकित्सा का उपयोग करके हम दैनिक जीवन में लाभान्वित हो सकते हैं।

8.2 उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- पिरामिड के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- पिरामिड चिकित्सा की उपयोगिता का विवेचन कर सकेंगे।

8.3 पिरामिड का अर्थ –

प्रिय पाठकों, क्या आप जानते है कि ग्रीक भाषा में **पायरा का अर्थ होता है – 'अग्नि' तथा मिड का अर्थ है – 'केन्द्र'** । इस प्रकार पिरामिड शब्द का अर्थ है – **'केन्द्र में अग्नि वाला पात्र'।** जैसा कि हम सभी जानते है कि प्राचीन काल से ही अग्नि को ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार पिरामिड का सामान्य शाब्दिक अर्थ है **'अग्निशिखा''** अर्थात एक ऐसी अदृश्य ऊर्जा जो अग्नि के समान हमारी अशुद्धियों का नाश करके हमें निर्मल कर सकती है। पाठकों, क्या आप जानते हैं कि पिरामिड यंत्र अंतरिक्ष से आने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों को संग्रहित करके इन्हें कल्याणकारी किरणों के रूप में परिवर्तित कर देता है। पिरमिड यंत्र के पाँच शीर्षो से प्राण ऊर्जा सर्पाकार कुण्डल रूप में सदैव ऊपर बहती रहती है। वर्तमान समय में वास्तुदोष निवारण के लिये पिरामिड यंत्र को अत्यन्त महत्व दिया जा रहा है। वैदिक ज्यामिति के अनुसार त्रिकोण को स्थिरता एवं प्रगति का सूचक माना जाता है। पिरामिड में चार त्रिकोण मिलते हैं, जिससे स्थिरता एवं प्रगति चौगुनी हो जाती है। इस प्रकार वास्तुदोष निवारण हेतु पिरावास्तु अत्यन्त कारगर एवं प्रभावशाली उपाय है।

पिरामिड मंत्र

त्रिभुजाकारम् शिखर कोशम्,
उर्ध्वमूलम् प्रगच्छम्।
चत्वारात्मम् समभुजास्यम्,
आसनास्यास्य बद्धम्।।
ईशावास्यम् अग्निकेन्द्रम,
सौम्य ऊर्जा प्रवर्तकम्।
शक्ति स्तोत्रम्,
भव–भयहरम् सर्वपीड़ा।।

8.4 पिरामिड चिकित्सा की उपयोगिता

प्रिय पाठकों, पिरामिड चिकित्सा हमारे दैनिक जीवन में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो सकती है। इस चिकित्सा पद्धति का उपयोग हम विभिन्न प्रकार से कर सकते हैं, जैसे कि –

1. यदि पिरामिड का प्रयोग सिर के ऊपर किया जाये तो इससे मस्तिष्क पर सकारात्क प्रभाव पड़ता है। नकारात्मक चिन्तन दूर होकर मन में अच्छे विचार उत्पन्न होने लगते हैं।
2. विद्यार्थियों के लिये भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। इससे उनकी सीखने की क्षमता, याद करने की क्षमता को काफी हद तक विकसित किया जा सकता है। यदि विद्यार्थी पिरामिड पहनकर कुर्सी के नीचे पिरामिड रखकर विषय को याद करें, तो इससे उन्हें अपना विषय जल्दी याद हो सकता है ओर उनकी बुद्धि का विकास हो सकता है।
3. पिरामिड को जल के पात्र के ऊपर रख देने से 12 घंटे के अन्दर ही जल अत्यधिक आरोग्यप्रद, मीठा और स्वादयुक्त हो जाता है।
4. खाद्य पदार्थ जैसे की फल, सब्जियाँ, दूध, दही, मिठाई इत्यादि के ऊपर पिरामिड रख देने से वे आरोग्यप्रद एवं अधिक स्वादयुक्त हो जाते हैं तथा उनकी गुणवत्ता में भी अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और वे लम्बे समय तक ताजे बने रहते हैं।

5. विभिन्न प्रकार के रोगों में भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। शरीर के किसी भाग में दर्द होने पर पिरामिड रखने से दर्द दूर हो जाता है। कब्ज इत्यादि रोगों में पिरामिड का चार्ज किया हुआ गरम पानी पीने से भी रोग में लाभ मिलता है।
6. चेहरे की कान्ति बढ़ाने के लिये भी पिरामिड चिकित्सा का प्रयोग किया जा सकता है। पिरामिड द्वारा चार्ज किये हुये जल से प्रतिदिन आँखों और चेहरे को धोने से आँखों की ज्योति बढ़ती है तथा चेहरे पर चमक आती है।
7. मानसिक एकाग्रता को बढ़ाने में भी पिरामिड चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। उपासना, ध्यान, प्रार्थना करते समय पिरामिड पहनने से एकाग्रता बढ़ती है।
8. अनिद्रा रोग को दूर करने में भी पिरामिड का प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि रात को सोते समय पलंग के नीचे पिरामिड रखने से नींद बहुत अच्छी आती है।
9. प्रतिदिन पिरामिड को सुबह – शाम टोपी की तरह आधे घंटे तक पहन कर रखने से तनाव, माइग्रेन, डिप्रेशन, बालों का झड़ना, बालों का सफेद होना इत्यादि समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है।
10. पौधों पर पिरामिडयुक्त जल का सिंचन करने से उनकी वृद्धि तीव्र गति से होती है तथा वे रोगमुक्त रहते हैं।
11. ऑफिस इत्यादि में काम करते समय कुर्सी के नीचे पिरामिड रखने से निरन्तर सकारात्मक ऊर्जा मिलती है तथा आलस्य प्रमाद एवं नकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न नहीं होती हैं।
12. अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि पिरामिड – जल से तैयार तुलसी की पत्तियों के सेवन से सर्दी, खाँसी, बुखार इत्यादि रोगों में लाभ मिलता है।
13. वास्तुशास्त्र की दृष्टि से भी पिरामिड़ों का विशेष महत्व है।
14. यदि कब्ज रोग से पीड़ित व्यक्ति प्रातःकाल चार गिलास पानी पीकर अपने पेट पर पिरामिड रखें तो इससे मल निष्कासन में सहायता मिलती है।
15. वर्तमान समय में पिरामिड यंत्र को वास्तुदोष निवारण, गृहशांति मे वृद्धि, किसी स्थान की शुद्धि जैसे भिन्न – भिन्न कार्यो में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहे है। आज बाजार में क्रिस्टल के पिरामिड विभिन्न रंगों में उपलब्ध हैं, नौ ग्रहों के नौ रंगों का पिरामिड सेट गृहशांति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप जान गये होंगे कि पिरामिड यंत्र दैनिक जीवन में हमारे लिये कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न –

(सत्य / असत्य)

1. पिरामिड चिकित्सा भारत की देन है । (सत्य / असत्य)
2. ग्रीक भाषा में पायरा का अर्थ केन्द्र होता है। (सत्य / असत्य)
3. पिरामिड में चार त्रिकोण मिलते है। (सत्य / असत्य)
4. पिरामिड चिकित्सा का उपयोग मानसिक एकाग्रता बढ़ाने के लिये किया जाता है। (सत्य / असत्य)
5. पिरामिड शब्द का अर्थ '**अग्निशिखा**' है। (सत्य / असत्य)

8.5 सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पिरामिड चिकित्सा की हमारे दैनिक जीवन में महती उपयोगिता है। इस चिकित्सा पद्धति को अपनाकर हम अपने जीवन की विभिन्न समस्याओं का, चाहे वे शारीरिक हो, मानसिक हो, आर्थिक हो अथवा अन्य किसी प्रकार की हो। आसानी से सामाधान कर सकते हैं। इसलिये इस चिकित्सा पद्धति की उपयोगिता को देखते हुये आज विश्व के प्रायः सभी देशों में इसे अपनाया जा रहा है।

8.6 शब्दावली –

- **अग्निशिखा** – अग्नि की ज्वाला या अग्नि की ज्योति
- **डिप्रेशन** – अवसाद या विषाद
- **त्रिभुजाकारम्** – त्रिभुज के आकार वाला

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. असत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1 देवराज, टी0एल0 (2008), आयुर्वेद और स्वस्थ जीवन, ग्रन्थ अकादमी, नयी दिल्ली।
2 कल्याण – आरोग्य अंक, गीताप्रेस गोरखपुर।

8.9 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री

वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ – डॉ0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात प्रकाशन नयी दिल्ली।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – पिरामिड चिकित्सा से आप क्या समझते है ? यह चिकित्सा हमारे दैनिक जीवन में किस प्रकार उपयोगी हो सकती है ?

इकाई – 9 – स्वाध्याय चिकित्सा का अर्थ, प्रक्रिया एवं महत्व

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 स्वाध्याय चिकित्सा का अर्थ
9.4 स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया
9.5 स्वाध्याय चिकित्सा का महत्व
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 सहायक उपयोगी पाठ्य–सामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना –

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाई में आपने पिरामिड चिकित्सा के विषय में अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय स्वाध्याय चिकित्सा है। यह एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है, जो सहज सुलभ एवं निरापद है।

प्रिय पाठकों, स्वाध्याय शब्द से हम प्रायः सभी परिचित हैं, किन्तु इसके ठीक –ठीक अर्थ को जानना अति आवश्यक है। स्वाध्याय का अर्थ मात्र पुस्तकों का अध्ययन करना नहीं है, वरन् इससे कहीं अधिक बढ़कर है।

तो आइये जानते हैं कि स्वाध्याय शब्द से क्या आशय है और किस प्रकार से इसके द्वारा हम अपने तथा दूसरों के जीवन को सँवार सकते है।

9.2 उद्देश्य –

प्रिय विद्यार्थियों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

- स्वाध्याय चिकित्सा का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया का विवेचन कर सकेंगे।
- स्वाध्याय चिकित्सा के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

9.3 स्वाध्याय चिकित्सा का अर्थ

प्रिय पाठकों, कुछ लोग स्वाध्याय का अर्थ पुस्तकों का अध्ययन मात्र करना समझते हैं, किन्तु इस प्रकार के अध्ययन को हम स्वाध्याय की संज्ञा नहीं दे सकते। स्वाध्याय की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। कुछ भी पढ़ लेने का नाम स्वाध्याय नहीं है, वरन् स्वाध्याय की सामग्री केवल वही ग्रन्थ, पुस्तक का विचार हो सकता है, जो किसी अध्यात्मवेदता तपस्वी द्वारा सृजित हो। जैसे कि वेद, उपनिषद, गीता अथवा महान तपस्वी एवं योगी स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण इत्यादि महापुरूषों के विचारों को स्वाध्याय की पाठ्य सामग्री बनाया जा सकता है। प्रायः स्वाध्याय से तात्पर्य **Self Study** से लिया

जाता है, किन्तु यह **Self Study** न होकर **Study of Self** है अर्थात् सद्ग्रन्थों के प्रकाश में स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया है। कहा भी गया है कि – **''स्वाध्याय सद्ग्रन्थों के प्रकाश में आत्मानुसंधान की प्रक्रिया है।'' (अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान, भाग–2)**

इस प्रकार स्वाध्याय हमारे विचार तंत्र या सोचने विचारने के ढंग को सकारात्मक बनाने की अत्यन्त वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसके सतत् अभ्यास द्वारा व्यक्ति नकारात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर स्वयं के भीतर विधेयात्मक एवं आशावादी दृष्टिकोण का विकास कर सकता है। स्वाध्याय के सन्दर्भ में एक बात जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि स्वाध्याय की प्रक्रिया अच्छे विचारों के केवल अध्ययन से ही पूरी नहीं हो जाती, वरन् जब तक इन विचारों को व्यावहारिक रूप से आचरण में नहीं लिया जाता, तब तक यह प्रक्रिया अधूरी ही रहती है और इसके अपेक्षित परिणाम नहीं आ पाते है।

पाठकों, इस प्रकार आप समझ गये होगें कि स्वाध्याय सकारात्मक विचारों के माध्यम से मन को स्वस्थ करने की प्रक्रिया है।

आपके मन में इस संबध में सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि एक सामान्य अध्ययन एवं स्वाध्याय में क्या मौलिक अन्तर होता है?

तो आइये, आपकी इसी जिज्ञासा के समाधान के लिये अब हम चर्चा करते है, सामान्य अध्ययन एवं स्वाध्याय में अन्तर के बारे में।

अध्ययन एवं स्वाध्याय में अन्तर –

विद्यार्थियों, अध्ययन एवं स्वाध्याय में मूलभूत अन्तर यह है कि अध्ययन केवल हमारी बुद्धि का विकास करता है, इसके माध्यम से हमारे भीतर तर्क –वितर्क एवं बौद्धिक विश्लेषण करने की क्षमता का विकास होता है, तथा हमें विभिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है, किन्तु अध्ययन के द्वारा व्यक्ति के अन्दर किसी प्रकार का सकारात्मक परिवर्तन हो, यह अनिवार्य एवं आवश्यक नहीं है, जबकि स्वाध्याय के द्वारा व्यक्ति में में सकारात्मक परिवर्तन अपेक्षित है, अनिवार्य है, अन्यथा स्वाध्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा, यह अधूरा ही रह जायेगा।

स्वाध्याय की प्रक्रिया में व्यक्ति सद्ग्रन्थों के आलोक में आत्ममूल्यांकन करता है, अपनी कमजोरियों एवं गुणों का तटस्थ अवलोकन करता है तथा उसके व्यक्तित्व में जो भी अवांछनीयतायें है, बुरी आदतें, बुरे विचार या व्यावहारिक गड़बड़ियाँ है, उनको सकारात्मक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग द्वारा दूर करने का यथासंभव प्रयास करता है।

''अध्ययन केवल बौद्धिक विकास तक सीमित है, जबकि स्वाध्याय अपने बोध को संवारने की प्रक्रिया है।'' (डॉ. प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

पाठकों, **बोध का अर्थ है– ज्ञान** और विशेषज्ञों के अनुसार हमें ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त होता है। पहला ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, त्वचा, कर्ण, नासिका जिह्वा) के माध्यम से होने वाला ज्ञान जिसे हम बाह्य बोध भी कह सकते है। दूसरे प्रकार का बोध है– बौद्धिक विश्लेषण एवं आन्तरिक अनुभवों के द्वारा होने वाला ज्ञान।

बोध के ये दोनों प्रकार एक दूसरे से अत्यन्त गहरे रूप में जुड़े रहते हैं अर्थात् एक का प्रभाव सुनिश्चित रूप से दूसरे पर पड़ता है। कहने का आशय है कि इन्द्रियों से जो कुछ जानकारी हमें मिलती है अर्थात हम जो भी देखते है– सुनते है, उसका प्रभाव हमारे विचारों एवं भावनाओं पर सुनिश्चित रूप से पड़ता है। इसी प्रकार जैसे हमारे विचार, भावनायें, आस्थायें होती है, उनका प्रभाव भी हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान पर पड़ता है। इस सन्दर्भ में आपने एक कहावत भी सुनी होगी कि –

''जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि''

अर्थात जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण या नजरिया जैसा होता है उसे प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु, घटना उसी रूप में दिखाई देती है। ''

इसी कारण एक ही घटना अथवा वस्तु या व्यक्ति अलग – अलग लोगों के लिये अलग – अलग परिणाम उत्पन्न करती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का सोचने का ढंग हर दूसरे व्यक्ति से अलग होता है। जो व्यक्ति नकारात्मक दृष्टिकोण वाला है, उसे प्रत्येक चीज में नकारात्मकता ही दिखायी देती है, इसके विपरीत जो जिन्दगी के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाता है, वह विषम परिस्थितयों में में भी प्रकाश की एक किरण खोज लेता है। इस प्रकार सब कुछ व्यक्ति की अपनी प्रकृति पर निर्भर करता है।

अतः यदि हम अपने जीवन को शांति एवं खुशी के साथ जीना चाहते है तो हमें अपने दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाना ही होगा और स्वाध्याय इसी दृष्टिकोण की चिकित्सा की अत्यन्त वैज्ञानिक एवं सटीक विधि है। यह स्वस्थ मन से स्वस्थ जीवन जीने की विधा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अध्ययन एवं स्वाध्याय में मूलभूत अन्तर होने के कारण अध्ययन को स्वाध्याय कहना न्यायसंगत नहीं होगा।

प्रिय पाठकों, अब अत्यन्त महत्वपूर्ण बात जिस पर विचार करना है, वह यह है कि इस स्वाध्याय की प्रक्रिया को जीवन में कैसे अपनाया जाये? इसके सोपान क्या है?

तो आइये, अब चर्चा करते हैं स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया के बारे में।

9.4 स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया

पाठकों, स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया निम्न चार चरणों में पूरी होती है –

1. **प्रथम चरण –** सद्ग्रन्थों या सद्विचारों का चयन।
2. **द्वितीय चरण –** आत्ममूल्यांकन
3. **तृतीय चरण –** अपने दृष्टिकोण को संवारने की नीति तय करना।
4. **चतुर्थ चरण –** निर्धारित नीति का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग।

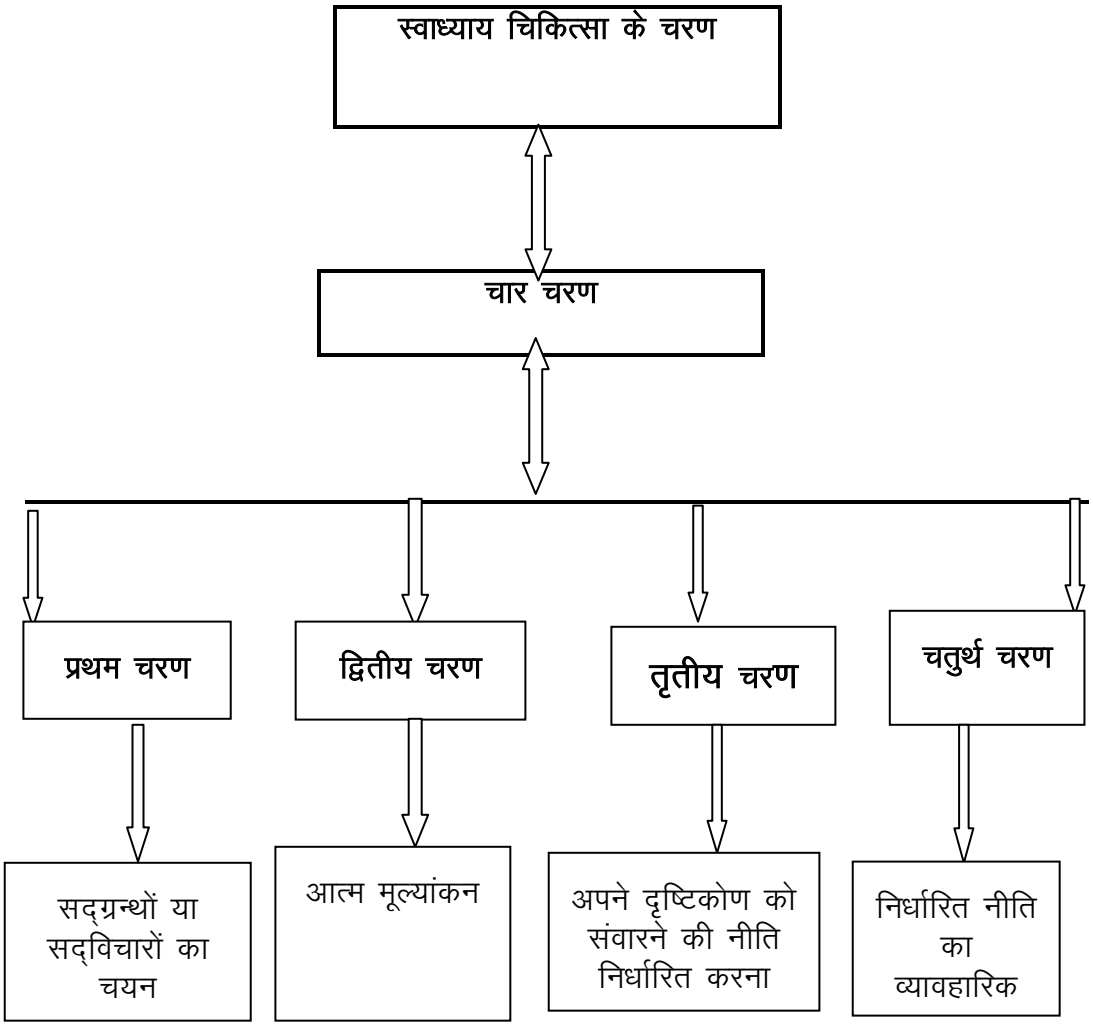

पाठकों, स्वाध्याय की इन विभिन्न अवस्थाओं का विस्तृत विवरण निम्नानुसार है–

1. **प्रथम चरण : सद्ग्रन्थों या सद्विचारों का चयन –** स्वाध्याय चिकित्सा का प्रथम चरण है– स्वाध्याय की सामग्री का चयन करना अर्थात् यह निर्धारित करना कि स्वाध्याय के लिये किन सद्ग्रन्थों या विचारों का चयन किया जाये। इस सन्दर्भ में यह ध्यान देना आवश्यक है कि स्वाध्याय हेतु उन्हीं विचारों का चयन किया जाये जो आध्यात्म को जानने वाले महामानवों या महापुरूषों के द्वारा दिये गये हो क्योंकि ऐसे लोगों का जीवन ही हमारे लिये आदर्श एवं प्रेरणादायी होता है। इस हेतु हम वेद, उपनिषद, गीता इत्यादि ग्रन्थों का एवं विभिन्न तपस्वियों जैसे कि **महात्मा बुद्ध, आचार्य शस्कर, महावीर स्वामी, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद सरस्वती, श्री माँ** इत्यादि के विचारों का चयन कर सकते हैं।

"स्वाध्याय के पहले क्रम में हम उन ग्रन्थों विचारों का चयन करते हैं, जिन्हें स्व की अनुभूति से सम्पन्न महामानवों ने सृजित किया है। ध्यान रखें कोई भी पुस्तक या विचार स्वाध्याय की सामग्री नहीं बन सकता। इसके लिये जरूरी है कि यह पुस्तक या विचार किसी महान् तपस्वी आध्यात्मवेदत्ता के द्वारा सृजित हो।"

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

2 द्वितीय चरण : आत्म–मूल्यांकन – पाठकों, यह स्वाध्याय का अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है। यही वह अवस्था है जिसमें स्वयं का स्वयं से परिचय होता है। यह आत्मविश्लेषण की अवस्था हैं जिसमें व्यक्ति उन चयनित ग्रन्थों एवं विचारों के परिप्रेक्ष्य में आत्म–मूल्यांकन करता है। आत्म–मूल्यांकन का अर्थ है– अपने गुणों–कमियों का तटस्थ अवलोकन। अपने व्यक्तित्व में जो अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ हैं, दोनों को समान रूप से देखना और बुराइयों को पूरी निष्पक्षता एवं साहस के साथ स्वीकार करना। इसी चरण में व्यक्ति इस बात पर विचार करता है कि हमारा जीवन कैसा है? हम किस ढंग से जी रहे हैं और किस ढंग से हमें जीना चाहिये। इसी स्तर पर व्यक्ति अपने विचार तंत्र की विकृतियों से परिचय पाता है। इसलिये व्यक्ति को पूरी सजगता से अपनी कमियों को पहचानना चाहिये और इस बात के प्रति सावधान रहना चाहिये कि कोई भी विकृति दब न जाये, छिप न जाये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय चरण में विचार तंत्र की विकृतियों का निदान किया जाता है। निदान से आशय है– समस्या को पहचानना और यह जानना कि इसके दुष्प्रभाव कहाँ– कहँ पड़ रहे हैं और भविष्य में कहाँ – कहाँ पड़ सकते हैं?

3 तृतीय चरण : अपने दृष्टिकोण को संवारने की नीति निर्धारित करना – द्वितीय चरण में विकृतियों के निदान के उपरान्त तृतीय चरण में उन्हें दूर करने के उपाय का चयन किया जाता है, उसकी पूरी प्रक्रिया को सुनिश्चित किया जाता है कि व्यावहारिक रूप में इसे किस प्रकार से अपनाया जायेगा। इसकी पूरी योजना इस चरण में बनायी जाती है।

"स्वाध्याय चिकित्सा का तीसरा मुख्य बिन्दु यही है। विचार, भावनाओं, विष्वास, आस्थाओं, मान्यताओं, आग्रहों से संबधित अपने दृष्टिकोण को ठीक करने की नीति तय करना। इसकी पूरी प्रक्रिया को सुनिष्चित करना। हम कहाँ से प्रारम्भ करें और किस रीति से आगे बढ़े। इसकी पूरी विधि – विज्ञान को इस क्रम में बनाना और तैयार करना पड़ता है।"

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

4 चतुर्थ चरण : निर्धारित नीति का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग – पाठकों, स्वाध्याय का यह चतुर्थ चरण अत्यन्त चुनौतीपूर्ण होता है, यही वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपनी विकृतियों को दूर करने का व्यावहारिक प्रयास करना होता है अर्थात अपने विकृत विचारों को दूर करने के लिये समाधान की जिस नीति का निर्धारण किया गया है, इस चरण में उस नीति के अनुसार आचरण करना होता है। उन सद्विचारों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से अपनाना होता है। सद्विचारों के अनुरूप जीवन जीकर दिखाना होता है। जिसमें हमारे संस्कारों एवं पुरानी बुरी आदतों के रूप में अनेक बाधायें सामने आती हैं, किन्तु अपने साहस एवं जुझारूपन के द्वारा हम उन बाधाओं को पार कर सकते हैं और एक आदर्श जीवन जी सकते हैं।

प्रिय विद्यार्थियों, जब तक स्वाध्याय की यह योजना व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित नहीं होती है। तब तक वह मात्र अध्ययन ही बना रहेगा। सद्ग्रन्थों में वर्णित आदर्श जीवन का

व्यावहारिक प्रयोग ही इस स्वाध्याय चिकित्सा की सार्थकता है, जो इसे उद्देश्य की पूर्णता तक पहुँचाता है।

9.5 स्वाध्याय चिकित्सा का महत्व –

प्रिय पाठकों, स्वाध्याय की उपयोगिता के विषय में जितना वर्णन किया जाये उतना ही कम है, क्योंकि यह एक ऐसी औषधि है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व के समग्र विकारों से मुक्ति पाकर स्वस्थ जीवन जिया जा सकता है।

प्रमुख रूप से स्वाध्याय चिकित्सा की महत्ता का विचेचन निम्नांकित बिन्दओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(क) नकारात्मक विचारों को दूर करना
(ख) दुर्भावनाओं से मुक्ति
(ग) व्यावहारिक विकृतियों को दूर करना
(घ) समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण
(ड़) स्वस्थ जीवन की प्राप्ति

इनका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार है –

(क) नकारात्मक विचारों को दूर करना – पाठकों, जैसा कि अब तक आप समझ चुके होंगे कि स्वाध्याय का संबध हमारे विचार तंत्र से है। यह विचार परिष्कार से जीवन परिष्कार की प्रक्रिया है। स्वाध्याय चिकित्सा का प्रथम परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का चिन्तन सकारात्मक होने लगता है। वह अब घटनाओं को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखता है। स्वाध्याय के द्वारा उसके चारों ओर एक सकारात्मक वैचारिक वातावरण बना रहता है और वह वैचारिक प्रदूषण से मुक्त रहता है।

" सोच विचार या बोध के तंत्र को निरोग करने की सार्थक प्रक्रिया स्वाध्याय से बढ़कर और कुछ नहीं है।"

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

(ख) दुर्भावनाओं से मुक्ति– पाठकों, जैसा कि हम जानते है कि हमारे विचारों का प्रभाव हमारी भावनाओं पर भी पड़ता है। जैसे विचार हमारे अन्दर आते हैं, उसी के अनुरूप भाव भी उत्पन्न होने लगते हैं। ये दोनों (भाव एवं विचार) एक दूसरे से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि हम इनमें से किसी भी एक को दूसरे से तोड़कर नहीं देख सकते। विचार हमारी भावनाओं को प्रभावित करते हैं और भावनायें भी विचारों को अपने रंगों में रंगे बिना नहीं रहती।

अतः स्वाध्याय से हमारे विचारतंत्र के परिष्कृत होने के कारण भाव भी पवित्र होने लगते हैं, जो हमारे आध्यात्मिक विकास में अत्यन्त सहायक है।

(ग) व्यावहाररिक विकृतियों को दूर करना– स्वाध्याय मन की चिकित्सा के साथ – साथ व्यवहार की चिकित्सा भी करता है क्योंकि विचार हमारे व्यवहार को बहुत गहरे रूप में प्रभावित करते हैं और व्यवहार का प्रभाव भी विचारों पर पड़ता है।

जब व्यक्ति सद्विचारों को अपने जीवन में, आचरण में उतारने लगता है तो उससे स्वतः उसकी व्यवहारगत विकृतियाँ एवं परेशानियाँ दूर होने लगती है और उसका व्यवहार एक आदर्श के रूप में दूसरों को भी प्रेरणा प्रदान करता है।

''मानसिक आरोग्य की ओर ध्यान दिये बगैर शरीर को स्वस्थ करने की सोचना या व्यावहारिक दोषों को ठीक करना, कुछ वैसा ही है, जैसे – पत्तों को काटकर पेड़ की जड़ों

को सींचते रहना। जब तक पेड़ की जड़ों को खाद – पानी मिलता रहेगा, तब तक पत्ते अपने आप ही हरे होते रहेंगे। इसी तरह से जब तक सोच – विचार के तंत्र में विकृति बनी रहेगी, शारीरिक एवं व्यावहारिक परेशानियाँ बनी रहेंगी।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

(घ) समूचे व्यक्तित्व का रूपान्तरण– पाठकों, हमारे व्यक्तित्व के तीन आयाम हैं – **संवेग, विचार एवं व्यवहार** और ये तीनों आयाम एक – दूसरे को प्रभावित करते हैं। भावनाओं (संवेग) से हमारे विचार एवं व्यवहार प्रभावित होते हैं तो विचारों का प्रभाव भी हमारे संवेगों एवं व्यवहारों पर पड़ता है। इसी प्रकार हमारे व्यवहार का प्रभाव संवेगों और विचारों पर पड़े बिना नहीं रहता। जिस प्रकार हमारे शरीर के विभिन्न संस्थान हैं, जैसे – **अस्थि तंत्र, पेशीय तंत्र, पाचन तंत्र, तंत्रिका तंत्र** इत्यादि और इन सभी के अपने – अपने विशिष्ट कार्य है, फिर भी इनके कार्यो का प्रभाव परस्पर पड़ता है और एक भी तंत्र के अंगों के कार्यो में बाधा आने पर समूचा शारीरिक संस्थान प्रभावित होता है, उसी प्रकार हमारे व्यक्तित्व का कोई भी आयाम यदि विकृत है तो वह समूचे व्यक्तित्व को बुरी तरह प्रभावित करता है और यदि एक आयाम सुदृढ़ एवं स्वस्थ है तो समग्र व्यक्तित्व परिष्कृत होने लगता है। अतः स्वाध्याय प्रत्यक्ष रूप से तो हमारे विचारों को प्रभावित करता है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से समग्र व्यक्तित्व (संवेग, विचार, व्यवहार) के रूपान्तरण में ही इसकी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है।

(ड़) स्वस्थ जीवन की प्राप्ति–प्रिय पाठकगणों, स्वाध्याय स्वस्थ जीवन की प्राप्ति की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा है। इसके द्वारा पहले मन की चिकित्सा होती है। उसके बाद जीवन की चिकित्सा/ वैज्ञानिकों के अनुसार रोगी मन समस्त जीवन को रोगी बना देता है। इसलिये यदि जीवन को स्वस्थ बनाना है तो हमें पहले मन को निरोग बनाने का साहसिक कार्य करना होगा, जिसे हम स्वाध्याय चिकित्सा द्वारा सहज रूप सेकर सकते है। स्वस्थ जीवन का तात्पर्य है – समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति, जिसमें हमारा शरीर भी स्वस्थ हो, मन भी सकारात्मक दृष्टिकोण वाला हो, आत्मा भी संतुष्ट हो और सामाजिक दृष्टि से भी व्यक्ति का व्यवहार एक आदर्श व्यवहार हो और प्रेरणास्पद आदर्श व्यक्ति के रूप में उसकी छवि बने।

जिज्ञासु पाठकों, इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वाध्याय चिकित्सा का महत्व असाधारण है। इसके द्वारा हम एक स्वस्थ एवं सुखी जीवन व्यतीत कर सकते है।

स्वाध्याय की इसी महत्ता के कारण इसे योग साधना के अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन के रूप में भी स्वीकार किया गया है। महान योग वैज्ञानिक **महर्षि पतंजलि** ने क्रियायोग के दूसरे अंग (**तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान)** के रूप में इसका अत्यन्त विस्तृत विवेचन किया है और अष्टांग योग में भी नियम के अन्तर्गत चतुर्थ नियम (**शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान)** के रूप में इसकी महत्ता का वर्णन किया है।

''स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता असाधारण है। इसके द्वारा पहले मन स्वस्थ होता है, फिर जीवन।''

(डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति)

इस प्रकार स्वाध्याय के द्वारा हम अपने समूचे जीवन का रूपान्तरण कर सकते हैं और साथ ही इस चिकित्सा की महत्ता इस कारण भी अत्यधिक बढ़ जाती है कि यह पद्धति अत्यन्त सहज है। इसे कोई भी व्यक्ति अपना सकता है, इसमें किसी प्रकार का कोई आर्थिक खर्च

भी नहीं है और न ही इसके कोई दुष्प्रभाव है। वास्तव में यह स्वाध्याय चिकित्सा अपने आप में असाधारण है।

अभ्यास प्रश्न –

(सत्य/असत्य)

1. स्वाध्याय चिकित्सा का संबध मूलतः विचारों से है। (सत्य / असत्य)
2. स्वाध्याय केवल बौद्धिक विकास तक सीमित है। (सत्य / असत्य)
3. स्वाध्याय के अन्तिम चरण में आत्म – मूल्यांकन किया जाता है। (सत्य / असत्य)
4. अध्ययन एवं स्वाध्याय दोनों का अर्थ समान है। (सत्य / असत्य)

9.6 सारांश –

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि स्वाध्याय चिकित्सा व्यक्तित्व के समग्र रूपान्तरण की विधि है, जो प्रत्यक्ष रूप से तो विचारों से संबधित है, किन्तु अन्ततः इसका प्रभाव हमारे संस्कारों पर भी पड़ता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति के जीवन में रूपान्तरण घटित होने लगता है। उसका व्यवहार, विचार, भावनायें, संस्कार सब कुछ परिवर्तित होने लगते हैं अर्थात् मनःस्थिति और परिस्थिति दोनों में आश्चर्यजनक बदलाव आते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन को विकसित करने हेतु इस स्वाध्याय चिकित्सा को अपनाना चाहिये।

9.7 शब्दावली

- **आत्मानुसंधान –** स्वयं की खोज करना।
- **आत्ममूल्यांकन –** अपने गुण – दोषों की परख करना या विश्लेषण करना।
- **विकृतियाँ –** बुराइयाँ
- **रूपान्तरण –** परिवर्तित होना या बदल जाना।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. सत्य 2 असत्य 3 असत्य 4 असत्य

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 डॉ0 प्रणव पण्ड्या : आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति,अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा।

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – अध्ययन एवं स्वाध्याय में अन्तर स्पष्ट करते हुये स्वाध्याय चिकित्सा की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।

प्रश्न 2 – स्वाध्याय चिकित्सा के महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई 10– मूत्र चिकित्सा का अर्थ, इतिहास, लाभ एवं सावधानियां

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मूत्र चिकित्सा का अर्थ
10.4 मूत्र चिकित्सा का इतिहास
10.4.1 शिवाम्बू कल्प में मानव मूत्र का उल्लेख
10.4.2 आयुर्वेद में मूत्र प्रयोग का उल्लेख
10.4.3 योग में मूत्र प्रयोग का उल्लेख
10.4.4 अन्य प्राचीन शास्त्रों मूत्र प्रयोग का उल्लेख
10.4.5 आधुनिक युग में मूत्र प्रयोग का उल्लेख
10.5 मूत्र चिकित्सा के लाभ
10.6 मूत्र चिकित्सा की सावधानियां
10.7 सारांश
10.8 पारिभाषिक शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.11 सहायक पाठ्य सामग्री
10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, वर्तमान समय में ऐलोपैथिक के बढते हुए दुष्प्रभावों को देखते हुए वैकल्पिक चिकित्सा का महत्व बढा है। आधुनिक समय में जनसामान्य ऐलोपैथिक से विमुख होकर वैकल्पिक चिकित्सा पर अपना ध्यान केंद्रित कर रहा है। इस क्रम में वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद चिकित्सा वर्तमान समय में पुर्नःरुथान के पथ पर अग्रसित हो रही है। वैकल्पिक चिकित्सा में मूत्र चिकित्सा एक ऐसी प्राचीन चिकित्सा पद्धति है जिसका वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होता है। प्राचीन ऋर्षि मुनियों एवं चिकित्सकों द्वारा विभिन्न ग्रन्थों में मूत्र प्रयोग की सविस्तार व्याख्या की गयी है। प्राचीन भारत वर्ष में मूत्र चिकित्सा का प्रयोग इतना अधिक व्यावहारिक था कि कटी अगुँली पर मूत्र प्रयोग को एक मुहावरे के रुप में प्रयोग में अक्सर प्रयोग में लाया जाता है। आपने भी मूत्र चिकित्सा के विषय में सुना अवश्य होगा किन्तु इसके प्रयोग की विधि, लाभ एवं सावधानियों से परिचित नही हुए होगें।

वर्तमान समय में वैज्ञानिको एवं चिकित्सकों द्वारा मूत्र चिकित्सा पर शोध अनुसंधान करने के उपरान्त जो सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए उनके आधार पर मूत्र चिकित्सा पद्वति का जनसामान्य में काफी विकास हुआ। वैज्ञानिक शोधों से प्रभावित होकर अनेक विद्धान इस चिकित्सा पद्धति से जुडे तथा उन्होने अन्यों को भी इससे जुडने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों को जानने के उपरान्त आपके मन में मूत्र चिकित्सा को जानने की

जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी, अतः अब हम मूत्र चिकित्सा पर सविस्तार विचार करते हैं।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- मूत्र चिकित्सा का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- मूत्र चिकित्सा के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करोगें।
- मूत्र चिकित्सा के सामान्य लाभों को समझाने में सक्षम हो सकेंगे।
- मूत्र चिकित्सा की सावधानियों को जान सकेगें।
- मूत्र चिकित्सा के सम्बन्ध में अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

10.3 मूत्र चिकित्सा का अर्थ–

शाब्दिक रुप से देखने पर मूत्र चिकित्सा का अर्थ स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है–'' मूत्र द्वारा विविध रोगों की चिकित्सा करना मूत्र चिकित्सा कहलाता है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रुप से स्वमूत्र एवं गौमूत्र द्वारा चिकित्सा करने का वर्णन आता है। मूत्र चिकित्सा को प्राचीन शास्त्रों में **शिवाम्बु कल्प** का नाम देते हुए कहा गया है कि मूत्र में विभिन्न रोगों का नाश करने की विलक्षण प्रतिभा पायी जाती है। मूत्र के इस रोग विनाशक गुण के कारण इसके प्रयोग से विभिन्न रोग दूर होते है।

आयुर्वेद शास्त्र में मूत्र चिकित्सा के पारम्परिक प्रयोग एवं रोगोपचार में महत्व पर प्रकाश डाला गया हैं। योग शास्त्रों में मूत्र प्रयोग करते हुए योगी पुरुष द्वारा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति को बढाने का उपदेश किया गया है। प्राकृतिक चिकित्सा के अर्न्तगत विभिन्न गंभीर एवं असाध्य रोगों को दूर करने हेतु मूत्र चिकित्सा को वर्णित किया गया हैं। यद्यपि अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों में अलग अलग स्थानों पर मूत्र चिकित्सा को अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया गया है। इसके साथ–साथ विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों एवं ग्रन्थों में मूत्र के प्रयोग की अलग–अलग विधि को समझाया गया है किन्तु इन सभी चिकित्सा पद्धतियों एवं ग्रन्थों में मूल समानता यह प्राप्त होती है कि इन सभी स्थानों पर मूल औषधि के रुप में मूत्र का प्रयोग का वर्णन किया गया है तथा मूत्र प्रयोग के विभिन्न लाभों एवं रोगनाशक गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

जिज्ञासु पाठकों, मूत्र चिकित्सा के अर्थ को जानने एव समझने के उपरान्त आपके मन में यह जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी कि मूत्र चिकित्सा का प्रयोग कब से होता है अर्थात इस चिकित्सा पद्धति का इतिहास कितना पुराना है। इसके साथ साथ इस चिकित्सा पद्धति का वर्णन किस शास्त्र में एवं किस किस प्रकार से किया गया है। आपकी इन्ही जिज्ञासाओं का उत्तर देने के लिए अब मूत्र चिकित्सा के इतिहास पर विचार करते हैं

10.4 मूत्र चिकित्सा का इतिहास –

मूत्र चिकित्सा कितनी पुरानी परम्परा है। इस विषय में कुछ निश्चित प्रमाण तो प्राप्त नही होते हैं परन्तु इतना अवश्य है कि यह पद्धति अत्यन्त प्राचीन अथवा सदियों पुरानी है। इसके सम्बन्ध में विभिन्न धर्मग्रन्थों में अनेकों उल्लेख मिले है जो इसकी प्राचीनता को सिद्ध करते है। मूत्र चिकित्सा के विषय में विभिन्न ग्रन्थों में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं –

10.4.1 शिवाम्बु कल्प में मानव मूत्र का उल्लेख– मूत्र चिकित्सा के सम्बन्ध में सर्वाधिक विस्तृत विश्लेषण प्राचीन ग्रंन्थ 'डामर–तंत्र' में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के 'शिवाम्बु कल्प' नामक अध्याय कहा गया है कि ऐसा माना जाता है कि स्वयं भगवान शिव ने माता पार्वती से स्वमूत्र–चिकित्सा के विषय में जो कुछ भी कहा था शिवाम्बु कल्प वही है। शिवाम्बु कल्प भगवान शिव तथा पार्वती माता के संवाद के रुप में ही है। इस ग्रन्थ को स्वमूत्र चिकित्सा पद्धति का मूल ग्रन्थ माना जाता है। शिवाम्बु कल्प में कुल 107 श्लोकों के अन्तर्गत शिवाम्बु चिकित्सा का उपदेश किया गया है।

इस ग्रन्थ में शिवाम्बु से तात्पर्य भगवान शिव के जल से लिया जाता है अर्थात भगवान शिव के जल (स्वमूत्र) पर कल्प करना, शिवाम्बु कल्प कहलाता है। शिवाम्बु कल्प में इसकी विधियों प्रभावों तथा अन्य आवश्यक नियमों का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा गया है–

शिवाम्बु अमृतं दिव्यं जरारोगविनाशनम्।
तदादाय महायोगी कुर्याद् वैनिज साधनम्।।
मुखशुद्धि विधायाथ कृत्वा चावश्यकीक्रियाम्।
पिवेच्छिवाम्बु विमलं जन्मरोग विनाशनम्।।

शिवाम्बु अमृत दिव्य औषधि, बुढापे एवं रोगों का विनाश करने वाला है। साधक (योगी) को इसे ग्रहण करते हुए योग साधना करनी चाहिये। मुख शुद्धि एवं आवश्यक क्रियाएं करके जन्म रोग का विनाश करने वाला शिवाम्बु का पान करें। इसके साथ साथ शिवाम्बु कल्प करने वाला जितंन्द्रिय, भूमिशयन एवं ब्रह्ममूर्हत में जागरण करने वाला होना चाहिए। पूर्व दिशा की ओर मुख करके अन्तःकरण की भावना के साथ मूत्रोत्सर्ग करते हुए मध्य धारा का प्रयोग शिवाम्बु पान के रुप में करना चाहिए। मूत्र वह दिव्यामृत है जो जन्म से हुए रोगों का भी नाश कर सकता है।

'शिवाम्बु–कल्प' ग्रन्थ में शिवाम्बु के निरन्तर पान का महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि एक माह तक शिवाम्बु पान से शरीर का अंतर भाग शुद्ध हो जाता है, दो माह तक शिवाम्बु पान करने से इन्द्रियों की कार्य क्षमता बढ जाती है, तीन माह तक प्रयोग करने से समस्त रोगों का नाश होता है। छः मास तक प्रयोग करने से बुद्धि बढती है, नौ मास तक प्रयोग करने से क्षय एवं कुष्ठ रोगों का नाश होता है तथा एक वर्ष तक निरन्तर प्रयोग करने से मानव सूर्य के समान तेजवान हो जाता है।

निरन्तर दो वर्षों तक प्रयोग करने से पृथ्वी तत्व पर, तीन वर्ष के प्रयोग से जल तत्व पर, चार वर्षो के प्रयोग से तेज तत्व पर, पांच वर्षो के अभ्यास से वायु तत्व पर तथा सात वर्षो के अभ्यास से अहंकार पर विजय प्राप्त की जा सकती है। दस वर्षो के निरन्तर अभ्यास से योगी साधक काम रहित हो जाता है तथा ग्यारह वर्षो के प्रयोग से वह अन्तर्नाद को सुन सकता है।

बारह वर्षो तक निरन्तर शिवाम्बु पान करने से मानव महान तेजवान हो जाता है। अग्नि उसे जला नही सकती तथा विष का उस पर कोई प्रभाव नही पडता है और जल पर लकडी की भांति वह तैर सकता है। उसके समस्त रोग और दुख नष्ट हो जाते है एवं मृत्यु का उसे भय नहीं रहता है ऐसा साधक कार्य सिद्धि शीघ्र प्राप्त कर सुन्दर देह को प्राप्त कर लम्बे समय तक जीवित रहता है।

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरण स्पष्ट करता है कि मूत्रचिकित्सा आदिकालीन जम्बूद्वीप की एक प्रचलित चिकित्सा पद्धति है जिसके आचार्य भगवान शंकर हैं। डामर तंत्र नामक ग्रन्थ में

भगवान शंकर ने माता पार्वती को स्वमूत्र की महिमा बतलाते हुए इसे अमृत की संज्ञा से सुशोभित करते हैं।

10.4.2 आयुर्वेद में मूत्र प्रयोग का उल्लेख–आयुर्वेद के प्राचीन एवं प्रमाणिक ग्रन्थों जैसे सुश्रुत संहिता, चरक संहिता, भाव प्रकाश, वृद्धवाग्भट्ट आदि में मूत्र के महत्व का उल्लेख किया गया है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत संहिता' में आचार्य सुश्रुत कहते हैं–

मूत्र मानुषं च विषापहम्।। **(सू0 अ0 45 मूत्रवर्ग)**

अर्थात मनुष्य का मूत्र विष को हरने वाला है।

आयुर्वेद के अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ भाव प्रकाश में कहा गया –

न्रमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद् रसायनम्।
रक्त पामाहरं तीक्ष्ण सक्षार लवणं स्मृतम्।। **(पूर्वखण्ड मूत्रवर्ग श्लोक 6)**

अर्थात नर मूत्र विष को मारने वाला ओर सेवन करने वाला रसायन है। यह लाल खुजली का नाश करने वाला तीक्ष्ण क्षार व लवण युक्त होता है।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य वाग्भट्ट 'अष्टांग संग्रह' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं –

नेत्ररोग हरं पित्त प्रवृद्धं च नियच्छति।
पितं–तिक्त कृमिहरं रीचनं कफ वातजित्।
तिक्त पामाहारं मूत्रं मानुषं तु विषापहम्।। **(सू0 अ0 6, श्लोक 147–148)**

अर्थात मानव मूत्र नेत्ररोग हर, पित्त–वृद्धि नाशक, तिक्त, कृमिहर रेचक व विषनाशक होता है। इस प्रकार आयुर्वेद के महान आचार्यो ने विभिन्न ग्रन्थों में मानव मूत्र के महत्व को प्रकट किया है।

10.4.3 योग में मूत्र प्रयोग का उल्लेख– प्राचीन हठयोग ग्रन्थों में शरीर को स्वस्थ एवं रोगरहित बनाने हेतु स्वमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियों को वर्णित किया गया है। हठयोग में विभिन्न मुद्राओं के अर्न्तगत योगी पुरुष द्वारा स्वमूत्र प्रयोग पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है।

पित्तोल्वणव्वात् प्रथमाम्बु धाराम्, विहायनिः सारतयाढन्य धाराम्
निषेव्यते शीतलमध्य धारां, कापालिके खण्डमतेऽयरोली।।

अर्थात शिवाम्बु की पहली धारा मे पित्त की अधिकता होती है और अन्तिम धारा सारहीन होती है, अतः इन दोनो धाराओ को त्यागका मध्य की शीतल धारा का सेवन करना चाहिए। खण्ड कापालिक मत मे इस क्रिया को अमरोली कहते हैं।

10.4.4 अन्य प्राचीन शास्त्रों मूत्र प्रयोग का उल्लेख–जैन सम्प्रदाय में स्वमूत्र का उल्लेख करते हुए आचार्य भद्रबाहु कृत व्यवहार सूत्र नामक ग्रन्थ में स्वमूत्र के महत्व को प्रकट करते हैं। आचार्य भद्रबाहु संकल्प प्रतिज्ञा में स्वमूत्र का विशेष महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। इसी प्रकार बौद्ध धर्म मे धर्मावलम्बी एवं धर्मगुरु लामाओं ने स्वमूत्र सेवन को अपनी साधना एवं आराधना मे आवश्यक बताया है। बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के साथ स्वमूत्र चिकित्सा का प्रचार भी एशिया महासागर के अन्य भागों में हुआ तथा जापान, चीन, कोरिया एवं मंगोलिया आदि देशों के लोग इसके गुणों को समझकर इससे लाभान्वित होने लगे।

भारतवर्ष के अतिरिक्त प्राचीन रोम सभ्यता में भी मूत्र चिकित्सा पर प्रकाश डाला गया है। प्रसिद्ध रोमन कवि केकुलस अपनी रचना में मूत्र के प्रयोग का वर्णन करते है। रोमन सभ्यता में मूत्र प्रयोग से दातों को साफ स्वच्छ एवं चमकीले बनाने के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है। ग्रीस के डाक्टर सी0 विलिनियस सेकेन्डस ने अपनी पुस्तक नेचुरल हिस्ट्री

में मूत्र चिकित्सा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। ग्रीस देश में घावों पर मूत्र की धारा डालने अथवा मूत्र से भीगी पट्टी का प्रयोग प्रचीन काल से चला आ रहा है। पश्चिमी यूरोपिय देशों तथा अमेरिका में स्वमूत्र चिकित्सा का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। पश्चिमी देशों में बच्चों को स्वस्थ बनाने के लिए उनके हाथों एवं पैरो पर मूत्र से मलिश करने की प्रथा है।

होमोपैथिक चिकित्सा में भी मूत्र चिकित्सा के प्रयोग का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध होमोपैथ डा0 जोन हेनरी क्लार्क लिखते है कि त्वचा में संक्रमण होने पर प्रातः काल स्वमूत्र का सेवन करने से संक्रमण समाप्त हो जाता है तथा रोग के लक्षण दूर हो जाते है। इसी मान्यता को चीनी चिकित्सक भी स्वीकार करते है।

10.4.5 आधुनिक युग में मूत्र प्रयोग का उल्लेख– आधुनिक समय के वैज्ञानिक युग में चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों ने मूत्र के लाभ को प्रयोगों के आधार पर सिद्ध करते हुए इसके महत्व को समझाया है, इसीलिए वर्तमान समय में विभिन्न गम्भीर रोगों के उपचार में मूत्र चिकित्सा के प्रयोग की सलाह आधुनिक चिकित्सक दे रहे हैं। वर्तमान समय मे अनेक गम्भीर रोग जैसे कैंसर, कोढ एवं एलर्जी आदि की चिकित्सा मूत्र द्वारा की जा रही है।

आधुनिक समय में मूत्र चिकित्सा के पुर्नरुथान का श्रेय प्रसिद्ध चिकित्सक जॉन आर्मस्ट्रांग को जाता है। जॉन आर्मस्ट्रांग क्षय रोग से ग्रस्त थे। जब इनका रोग अत्यन्त वृद्धि का प्राप्त हो चुका था तब इन्होने स्वयं पर स्वमूत्र चिकित्सा का प्रयोग किया तथा अपने रोग पर विजय प्राप्त की। आपने अपने अनुभवों के आधार पर "द वाटर ऑफ लाइफ" नामक पुस्तक की रचना की जिसे पढकर अनेकों लोगों स्वमूत्र के गुणों से प्रभावित होकर इससे जुडे। जॉन आर्मस्ट्रांग की पुस्तक का संसार की अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ तथा इस चिकित्सा से जुडने वाले लोगों की संख्या लगातार बढती चली गयी।

भारत के पांचवे प्रधानमंत्री एवं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री (स्व0) मोरारजी रणछोड भाई देसाई मूत्र चिकित्सा के प्रबल समर्थक थे। वे मूत्र चिकित्सा का स्वयं पर प्रयोग करते हुए दूसरों को भी इसका उपदेश देते थे। उन्होनें स्वमूत्र चिकित्सा का प्रयोग स्वंम पर किया तथा स्वस्थ एवं रोग रहित जीवन व्यतीत किया। भारत के प्रधानमंत्री के उच्च पद पर सुशोभित रहते हुए भी उन्होने निःसंकोच स्वमूत्रपान को स्वीकार किया तथा जनसामान्य को इसके प्रयोग का उपदेश किया। इस संदर्भ में उन्होने कहा था कि Urine is the water of life अर्थात स्वमूत्र जीवन जल है।

वर्तमान काल मे स्वामी रामदेव जी गौमूत्र चिकित्सा के प्रयोगों में लगे हुए हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में विभिन्न असाध्य रोगों का उपचार गोमूत्र से करने के साथ साथ स्वामी रामदेव जी गौमूत्र के द्वारा विभिन्न अन्य उत्पादों का उत्पादन भी वर्तमान समय में कर रहें हैं। इन उत्पादों में धूपबत्ती, अगरबत्ती, साबून, शैम्पू, फ्लोर क्लीनर आदि उत्पादों में मूल रुप से गोमूत्र का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक समाज में इनके समान अन्य अनेक चिकित्सक, वैज्ञानिक एवं मनीषीजन भी अपने अपने स्तर पर विविध रोगों के उपचार में मूत्र चिकित्सा का प्रयोग करते हुए इसके प्रचार–प्रसार में लगे हुए है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार भगवान शिव के जल के रुप में वर्णित मूत्र चिकित्सा आयुर्वेद शास्त्र से लेकर वर्तमान समय तक चली आ रही है जिसके प्रयोग से विभिन्न रोगी व्यक्तियों ने अपने रोग को दूर किया है तथा स्वस्थ व्यक्तियों ने इसके अनुप्रयोग से अपने स्वास्थ्य को उन्नत बनाते हुए दीर्घ आयु प्राप्त की है। इन तथ्यों को जानने एवं समझने के

उपरान्त मन में यह प्रश्न अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा कि इस मूत्र चिकित्सा के प्रयोग से क्या क्या लाभ होते हैं, अतः अब मूत्र चिकित्सा के लाभों पर विचार करते है –

10.5 मूत्र चिकित्सा के लाभ

प्रिय पाठकों, मूत्र चिकित्सा वह लाभकारी एवं गुणकारी स्वास्थ्य की कुँजी है जिससे ना केवल रोगी व्यक्तियों को स्वास्थ्य लाभ होता है अपितु स्वस्थ व्यक्ति भी इसके अनुप्रयोग से अपने स्वास्थ्य को उन्नत बनाते हैं अर्थात यह रोगी एवं स्वस्थ्य दोनों प्रकार के मनुष्यो के लिए समान रुप से लाभकारी होती है। इस प्रकार मूत्र चिकित्सा के लाभों को निम्न दो वर्गो में बाटकर अध्ययन किया जा सकता है –

1–स्वस्थ व्यक्तियों को मूत्र चिकित्सा का लाभ–

2–रोगी व्यक्तियों को मूत्र चिकित्सा का लाभ–

(क) स्वस्थ व्यक्तियों पर मूत्र चिकित्सा का प्रभाव –

1– मूत्र चिकित्सा एक सुरक्षित एवं दुष्प्रभाव रहित चिकित्सा पद्धति है, जिसके प्रयोग से स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पडता है।

2– मूत्र चिकित्सा के प्रयोग से स्वस्थ व्यक्ति की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रबल बनी रहती है।

3– मूत्र चिकित्सा के प्रयोग से आन्तरिक विकार धुलकर शरीर एकदम स्वच्छ बनता है जिसके परिणामस्वरुप शरीर संक्रमण से मुक्त बना रहता है।

4– मूत्र चिकित्सा के प्रयोग से रक्त शुद्ध बनता है तथा रक्त विकार एवं त्वचा रोग (फोडें फुन्सीं) आदि उत्पन्न नही होते है।

5– मूत्र चिकित्सा का मानव हृदय पर अच्छा प्रभाव पडता है एवं हृदय गति व रक्त चाप सामान्य बना रहता है।

6– मूत्र चिकित्सा का शरीर की अस्थियों पर अच्छा प्रभाव पडता है इससे अस्थियां मजबूत एवं जोड लचीले बनते है।

7– मूत्र चिकित्सा का दीर्घ कालीन प्रयोग करने से सिर के बाल काले बने रहते हैं और आँखों की रोशनी तेज बनी रहती है।

8– मूत्र चिकित्सा का तंत्रिका तंत्र पर अच्छा प्रभाव पडता है एवं मस्तिष्क व तंत्रिकाओं से सम्बन्धित विकार उत्पन्न नही होते हैं।

9– मूत्र चिकित्सा का उदर प्रदेश पर अच्छा प्रभाव पडता है जिससे व्यक्ति की पाचन क्रिया स्वस्थ एवं सक्रिय बनी रहती है।

10– मूत्र चिकित्सा का अन्तःस्त्रावी तंत्र पर भी बहुत अच्छा प्रभाव पडता है तथा हार्मोंस संतुलित मात्रा में स्त्रावित होते है।

11– मूत्र चिकित्सा के प्रयोग से मनुष्य की चयापचय दर संतुलित रहती है जिससे शरीर में आलस्य, अतिनिन्द्रा अथवा अनिन्द्रा की स्थिति उत्पन्न नही होती है।

12 मूत्र चिकित्सा का श्वसन अगों पर अच्छा प्रभाव पडता है जिससे व्यक्ति श्वसन रोगों जैसे खांसी, जुकाम एवं बुखार आदि से मुक्त रहता है।

इस प्रकार मूत्र चिकित्सा का स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पडता है। मूत्र चिकित्सा के प्रयोग से शरीर के सभी तंत्र स्वस्थ एवं सक्रिय बने रहते हैं जिससे शरीर रोग मुक्त बना रहता है। मूत्र चिकित्सा का शरीर की चयापचय दर पर भी अच्छा प्रभाव पडता है। इससे व्यक्ति ऊर्जावान एवं सक्रिय बना रहता है। स्वस्थ व्यक्ति के

अतिरिक्त रोगी व्यक्ति पर भी मूत्र चिकित्सा का प्रयोग प्रभावकारी सिद्ध होता है। रोगी व्यक्ति पर मूत्र चिकित्सा के प्रभाव इस प्रकार हैं –

(ख) रोगी व्यक्तियों पर मूत्र चिकित्सा का प्रभाव–रोगी व्यक्ति द्वारा मूत्र प्रयोग करने के निम्नलिखित प्रभाव होते हैं–

1– त्वचा रोगियों द्वारा मूत्र प्रयोग करने से त्वचा रोगों में तुरन्त लाभ मिलने लगता है।

2– नेत्र से सम्बन्धित रोगों में मूत्र प्रयोग करने से रोग में लाभ मिलता है एवं नेत्र ज्योति बढने लगती है।

3– वृक्क से सम्बन्धित रोगियों द्वारा मूत्र प्रयोग करने से रोगों में लाभ मिलता है।

4– श्वास रोगियों द्वारा मूत्र प्रयोग करने से रोगों में लाभ मिलता है।

5– पाचन तंत्र के रोगियों द्वारा मूत्र प्रयोग करने रोगों में लाभ मिलता है। रोगी को भूख अच्छी प्रकार लगने लगती है एवं उसके रोग दूर होने लगते हैं।

6– बालों का झडने, सफेद होने एवं बालों में रुसी होने पर मूत्र प्रयोग करने से रोग में लाभ मिलता है।

7– कैंसर, कुष्ठ, कोढ, ब्लड प्रेशर, गठिया एवं दमा आदि गंभीर एवं असाध्य रोगों से ग्रस्त रोगियों द्वारा मूत्र प्रयोग करने से रोग में तुरन्त आराम मिलना प्रारम्भ हो जाता है।

प्रिय पाठकों, मूत्र चिकित्सा का प्रयोग करने से एक ओर जहाँ सर्दी, जुकाम, खांसी, पेट दर्द, गैस, अपच आदि सामान्य एवं व्रीव रोगों में आराम मिलता है तो वही मूत्र चिकित्सा के प्रयोग करने से गठिया, आर्थाराइटिस, ह्रदय रोग, ब्लड प्रेशर, मधुमेह एवं कैन्सर आदि गंभीर एवं असाध्य रोगों के उपचार में भी मद्द मिलती है। विविध जीर्ण रोगों में जब रोगी असहनीय पीडा एवं कष्ट के दौर से गुजर रहा होता है, ऐसी अवस्था में मूत्र चिकित्सा रोगी के लिए अमृत अथवा संजीवनी का कार्य करती है। मूत्र चिकित्सा के प्रयोग से रोगी के शरीर की सुप्त जीवनी शक्ति पुनः जाग्रत होने लगती है और रोगी को शीघ्र आराम पडने लगता है। इस प्रकार मूत्र चिकित्सा स्वस्थ एवं रोगी दोनों प्रकार के मनुष्यों के लिए समान रुप से लाभकारी एवं गुणकारी चिकित्सा है। मूत्र चिकित्सा के उपरोक्त लाभों को जानने के उपरान्त आपके मन में यह जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी कि मूत्र चिकित्सा के अन्तर्गत किस मूत्र का प्रयोग का प्रयोग किया जाता है? अतः यह तथ्य भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि इस चिकित्सा के अर्न्तगत प्रमुख रुप से स्वमूत्र का प्रयोग किया गया है किन्तु स्वमूत्र के साथ साथ गौमूत्र के प्रयोग का वर्णन विभिन्न शास्त्रों में किया गया है। स्वमूत्र एवं गौमूत्र के अतिरिक्त आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ चरक संहिता में आचार्य चरक निम्न लिखित आठ प्रकार के मूत्रों का वर्णन करते हैं –

1 गाय का मूत्र	5 गधे का मूत्र
2 भैंस का मूत्र	6 घोडे का मूत्र
3 भेड का मूत्र	7 ऊंट का मूत्र
4 बकरी का मूत्र	8 हाथी का मूत्र

आयुर्वेद शास्त्र में उपरोक्त आठ प्रकार के मूत्रों शरीर पर अलग अलग प्रभावों का वर्णन भी किया गया है। उपरोक्त तथ्यों को जानने के उपरान्त आपको मूत्र चिकित्सा के लाभों एवं महत्व का ज्ञान अवश्य ही हुआ होगा किन्तु अब आपके मन में यह प्रश्न भी अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा कि मूत्र चिकित्सा में क्या क्या सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए जिससे किसी प्रकार की हानि की संभावना नही रहे और रोगी को अधिकतम एवं शीघ्र लाभ प्राप्त हो सके, अतः अब मूत्र चिकित्सा की प्रमुख सावधानियों पर विचार करते है।

10.6 मूत्र चिकित्सा की सावधानियां

प्रिय पाठकों, मूत्र चिकित्सा में कुछ निम्न लिखित सावधानियों का विशेष ध्यान रखना चाहिए –

1 स्वमूत्र चिकित्सा के अर्न्तगत मूत्रपान करने वाले मनुष्य को केवल पथ्य आहार का सेवन ही करना चाहिए। पथ्य आहार में कच्ची मौसमी सब्जीयां, फल, अंकुरित अन्न, दलिया, खिचडी, गाय का दूध, दही एवं घी आदि पौष्टिक आहार का वर्णन आता है।

2 मूत्रपान अथवा मूत्र चिकित्सा का करने वाले मनुष्य को सभी प्रकार के व्यसन, धूम्रपान, मांस मदिरा आदि पूर्ण रुप से त्याग देने चाहिए।

3 मूत्र चिकित्सा का प्रयोग करने वाले रोगी को नमक एवं चीनी आदि रासायनिक पदार्थों का प्रयोग पूर्ण रुप से बंद कर देना चाहिए।

4 मूत्र चिकित्सा के अर्न्तगत मूत्र की मालिश करते समय किसी प्रकार के अन्य रासायनिक पदार्थ जैसे साबून, शैम्पू अथवा तेल आदि का प्रयोग शरीर पर नही करना चाहिए।

5 मूत्र चिकित्सा का प्रयोग करने वाले मनुष्य को एक सुव्यवस्थित दिनचर्या, निन्द्रा एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

6 मूत्र चिकित्सा के अर्न्तगत रोगी को किसी भी प्रकार की अग्रेंजी एलोपैथिक दवाईयों का सेवन नही करना चाहिए। मूत्र चिकित्सा के अर्न्तगत रोगी के पथ्य एवं अपथ आहार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पथ्य एवं अपथ्य आहार पर ध्यान रखते हुए मूत्र प्रयोग करने से कैन्सर, मधुमेह एवं एवं एड्स जैसे गंभीर एवं असाध्य रोगों पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत रोगी को निम्न पथ्य– अपथ्य आहार पर ध्यान रखना चाहिए –

(क) पथ्य आहार – सेब, सन्तरा, अंगूर, पपीता, नारियल, तरबूज, खरबूजा, लौकी, कद्दू, गाजर, ककडी, खीरा, चना, मैथी आदि हरी पत्तेदार सब्जियां, अदरक, हरी धनिया, चौकरयुक्त आटा, मौसमी फल, सलाद एवं पोषक तत्वों से युक्त पौष्टिक आहार पथ्य है।

(ख) अपथ्य आहार – नमक, चीनी, चाय, कॉफी, सोफ्ट व कोल्ड डिंक्स जैसे पैप्सी व कोक, एल्कोहल, बाजार की मिठाईयां, चाकलेट, तला भुना चायनीज फूड, फास्ट फूड, जंक फूड, चावल, फूलगोभी, पत्तागोभी, खट्टी दही, वातवर्धक बासी, रुखा एवं पोषक तत्व विहीन भोजन अपथ्य है। रोगी को धूम्रपान, एल्कोहल एवं माँस के सेवन का पूर्ण रुप से त्याग कर देना चाहिए।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) मूत्र चिकित्सा का प्रयोग केवल रोगी पुरुष को ही करना चाहिए।

(ख आयुर्वेद शास्त्र में आचार्य चरक दो प्रकार के मूत्रों का वर्णन करते हैं।

(ग) एक वर्ष तक शिवाम्बु पान करने से मानव सूर्य के समान तेजवान हो जाता है।

(घ) जीर्ण रोगों में मूत्र चिकित्सा रोगी के लिए अमृत अथवा संजीवनी का कार्य करती है।

(ड) मूत्र चिकित्सा के साथ साथ रोगी को अग्रेंजी एलोपैथिक दवाईयों का सेवन भी करना चाहिए।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) मूत्र चिकित्सा को प्राचीन शास्त्रों में ––––––– का नाम दिया गया है

(ख) शिवाम्बु की पहली धारा मे ------- की अधिकता होती है।

(ग) आचार्य सुश्रुत के अनुसार मनुष्य का मूत्र ------- को हरने वाला है।

(घ) आधुनिक समय में मूत्र चिकित्सा के पुर्नरुथान का श्रेय प्रसिद्ध चिकित्सक --को जाता है।

(ड) दो माह तक शिवाम्बु पान करने से -------- बढ जाती है,

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) मूत्र चिकित्सा का मूल ग्रन्थ है –

(a) डामर तंत्र (b) शिवसंहिता

(c) घेरण्ड संहिता (d) हठ प्रदीपिका।

(ख) शिवाम्बु की किस धारा का सेवन करना चाहिए –

(a) प्रथम (b) अन्तिम

(c) मध्य (d) किसी भी ।

(ग) शिवाम्बु कल्प में कुल कितने श्लोकों के अन्तर्गत शिवाम्बु चिकित्सा का उपदेश किया गया है –

(a) 100 श्लोकों (b) 55 श्लोकों

(c) 107 श्लोकों (d) 195 श्लोकों।

(घ) आचार्य वाग्भट् के अनुसार मानव मूत्र होता है –

(a) विषहर (b) नेत्ररोग हर

(c) पित्तवृद्धि हर (d) सभी ।

(ड) भारत के कौन से प्रधानमंत्री मूत्र चिकित्सा के प्रबल सर्मथक थे–

(a) पं0 जवाहर लाल नेहरु (b) श्री मोरारजी भाई देसाई

(c) श्री लाल बहादुर शास्त्री (d) डा0 राजेन्द्र प्रसाद।

10.7 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में मूत्र चिकित्सा के अर्थ, इतिहास, लाभ एवं सावधानियों पर प्रकाश डाला गया है। इकाई का प्रारम्भ मूत्र चिकित्सा के अर्थ से करते हुए एवं शिवाम्बु कल्प को समझाते हुए किया गया है। विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों मे मूत्र चिकित्सा के वर्णन को समझाते हुए इसके मूल ग्रन्थ डामर तंत्र में वर्णित भगवान शिव एवं माता पार्वती के संवाद का उल्लेख भी इकाई में किया गया है। तत्पश्चात मूत्र चिकित्सा के इतिहास को स्पष्ट करने के लिए आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों जैसे सुश्रुत संहिता, भाव प्रकाश एवं अष्टांग संग्रह मे वर्णित मूत्र के प्रयोगों एवं इसके विभिन्न लाभों को संक्षेप में समझााया गया है। इकाई में आगे मूत्र चिकित्सा के संदर्भ में योग ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए हठयोग का वर्णन किया गया है। इकाई में आगे उन धर्मग्रन्थों, मत मतान्तरों एवं सभ्यताओं का वर्णन किया गया है जिनमें मूत्र प्रयोग के महत्व एवं लाभों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार उपरोक्त उदाहरणों के द्वारा इकाई में मूत्र चिकित्सा की प्राचीनता एवं सर्व व्यापकता को सिद्ध किया

गया है। प्रस्तुत इकाई में स्पष्ट किया गया है कि मूत्र चिकित्सा केवल प्राचीन काल की प्रचलित चिकित्सा पद्धति नही है वरण आधुनिक काल में भी अनेक विद्वान, महापुरुष एवं योगीजन इस चिकित्सा के प्रयोग एवं प्रचार प्रसार में लगे हुए हैं। इस संदर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री श्री (स्व0) मोररजी भाई देसाई एवं स्वामी रामदेव जी को उल्लेखित किया गया है। तत्पश्चात इकाई में स्वस्थ एवं रोगी दोनों प्रकार के मनुष्यों पर मूत्र चिकित्सा के लाभकारी प्रभाव को समझाते हुए इसे दोनों प्रकार (स्वस्थ एवं रोगी) के मनुष्यों के लिए समान रुप से लाभकारी एवं गुणकारी कहा गया है। अंत में मूत्र चिकित्सा की प्रमुख सावधानियों एवं मूत्र चिकित्सा का प्रयोग करने वाले मनुष्य के पथ्य व अपथ्य आहार को स्पष्ट करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

10.8 पारिभाषिक शब्दावली–

कल्प	एक निर्माणकारी सकारात्मक प्रकिया
पुर्नरुथान	दोबारा विकसित, प्रचलित अथवा उन्नत होना
पान	सेवन करना
पथ्य	खाने योग्य लाभकारी आहार
अपथ्य	खाने के अयोग्य ,हानिकारक आहार
असाध्य	ऐसे रोग जिनका उपचार अत्यन्त कठिन होता है
रसायन	विशेष गुणयुक्त पदार्थ

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क.	शिवम्बु कल्प	क.	a
ख.	असत्य	ख.	पित्त	ख.	c
ग.	सत्य	ग.	विष	ग.	c
घ.	सत्य	घ.	जॉन आर्मस्ट्रांग	घ.	d
ड.	असत्य	ड.	इन्द्रियों की कार्य क्षमता	ड.	b

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वमूत्र चिकित्सा – डॉ0 एस0 के0 शर्मा, डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा0) लि0, नई दिल्ली। (संस्करण – 2003)
2. स्वमूत्र चिकित्सा – श्री कृष्णानन्द शास्त्री, रोजगार प्रकाशन, हालनगंज, मथुरा।
3. कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. मूत्र–चिकित्सक का साथी – अनुवादक विमला तिवारी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी। (संस्करण मार्च 2003)
5. हठ प्रदीपिका – संस्करणकर्त्ता स्वामी दिगम्बर जी, डा0 पीताम्बर झा, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला। (संस्करण 2001)

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. मूत्र चिकित्सा के अर्थ को समझाते हुए इसके इतिहास पर प्रकाश डालिए।
2. मूत्र चिकित्सा के लाभों एवं सावधानियों को सविस्तार लिखिए।
3. मूत्र चिकित्सा द्वारा किन्ही पाँच रोगों के उपचार को समझाइये।

इकाई 11 स्वमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियां व रोगों में प्रयोग

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 स्वमूत्रमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियां
11.3.1 स्वमूत्र से मालिश
11.3.2 स्वमूत्रपान
11.3.3 स्वमूत्र पर उपवास
11.3.4 स्वमूत्र की पट्टियां
11.3.5 स्वमूत्र का अन्य औषध द्रव्यों के साथ सेवन
11.3.6 नस्यपान, मुख प्रक्षालन एवं नेत्र प्रक्षालन
11.3.4 स्वमूत्र की मालिश
11.3.5 स्वमूत्र की मालिश
11.4 स्वमूत्र का रोगों में प्रयोग
11.5 सारांश
11.6 पारिभाषिक शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, "प्रथम सुख निरोगी काया" इस लोकोक्ति से आप अवश्य ही परिचित होगें अर्थात मानव जीवन के प्रथम सुख के रुप स्वस्थ शरीर की कल्पना की गयी है। इसके साथ साथ मानव जीवन के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रुपी चार पुरुषार्थों को प्राप्त करने का मूल साधन यह शरीर ही है, किन्तु व्याधियों के मन्दिर इस शरीर को स्वस्थ बनाए रखना अत्यन्त कठिन है क्योंकि विकृत आहार विहार के सेवन करने एवं दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या के अपालन से शरीर विभिन्न प्रकार की व्यधियों से ग्रस्त हो जाता है। इस शरीर को स्वस्थ एवं व्याधिमुक्त बनाने हेतु अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों एवं अन्य उपायों का वर्णन विभिन्न ग्रन्थों, शास्त्रों एवं चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकों में किया गया है। पूर्व की इकाई इसी विषय से सम्बन्धित थी जिसमें शरीर को स्वस्थ बनाने हेतु अत्यन्त सरल एवं प्रभावशाली मूत्र चिकित्सा को समझाया गया है। पूर्व इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको अमृतरुपी संजीवनी मूत्र चिकित्सा का ज्ञान अवश्य ही हुआ होगा एवं इसके साथ साथ आपके मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएं भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी जैसे मूत्र चिकित्सा में स्वमूत्र प्रयोग की विधि क्या होती है? किस किस प्रकार से एवं किन किन रुपों में स्वमूत्र का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्वमूत्र का प्रयोग किन किन रोगों में लाभकारी प्रभाव रखता है। आपकी इन जिज्ञासाओं का उत्तर प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त स्वतः ही स्पष्ट हो जाएगा। इसके साथ साथ स्वमूत्र प्रयोग के विभिन्न लाभों एवं प्रभावों से भी आप अवगत होगें।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- स्वमूत्र चिकित्सा का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- स्वमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियों का ज्ञान प्राप्त करोगें।
- स्वमूत्र प्रयोग के सामान्य लाभों को समझाने में सक्षम हो सकेंगे।
- स्वमूत्र द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार को जान सकेगें।
- स्वमूत्र प्रयोग के विषय में अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

11.3 स्वमूत्रमूत्र चिकित्सा की विभिन्न विधियां

प्रिय पाठकों, स्वमूत्र का प्रयोग निम्न लिखित छह विधियों के द्वारा किया जाता है –

(1) स्वमूत्र द्वारा मालिश
(2) स्वमूत्रपान
(3) स्वमूत्र पर उपवास
(4) स्वमूत्र की पट्टीयां
(5) स्वमूत्र का अन्य औषध द्रव्यों के साथ सेवन
(6) नस्यपान, मुख प्रक्षालन, नेत्र प्रक्षालन एवं एनिमा

इन विधियों का सविस्तार वर्णन इस प्रकार है –

11.3.1 स्वमूत्र द्वारा मालिश– स्वमूत्र प्रयोग की एक प्रधान एवं प्रमुख विधि में स्वमूत्र द्वारा मालिश करना आता है। इसकी विधि के अन्तर्गत सात काँच की शीशियों को जल से अच्छी प्रकार धोकर साफ एवं स्वच्छ बनाने के उपरान्त स्वमूत्र को इन शीशियों में क्रमानुसार भर लेते हैं। यद्यपि मानव मूत्र कृमिनाशक होता है अर्थात इसमें कृमि (कीडे) उत्पन्न नही होते हैं किन्तु फिर भी इन शीशियों में मूत्र भरने के उपरान्त इन्हे अच्छी प्रकार बंद कर देते हैं जिससे कि इनके अन्दर बाहरी जीवों अथवा कीट पतंगों का इनके अन्दर प्रवेश नही हो सके।

इस प्रकार मूत्र को दो दिनों से एक सप्ताह तक किसी एक सुरक्षित स्थान पर रखते हैं। इस काल में मूत्र से भरी शीशियों को किसी अधेंरे स्थान पर रखना चाहिए। इस प्रकार रखने से एक ओर जहाँ मूत्र के रासायनिक गुणों में परिर्वतन होता है तो वहीं दूसरी ओर इस प्रकार रखने से मूत्र में उपस्थित अशुद्धियां शीशी में नीचे बैठ जाती है। तत्पश्चात मूत्र रखने की समयावधि पूर्ण होने पर क्रमानुसार मूत्र को छानकर इससे मालिश की जाती है। मूत्र की 250 मिली0 मात्रा से सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करनी चाहिए। स्वमूत्र से मालिश करने के उपरान्त धूप स्नान करना चाहिए। इस प्रकार उपरोक्त विधिनुसार स्वमूत्र से एक सप्ताह नियमित मालिश करने से गंभीर रोगों में लाभ प्राप्त होने लगता है।

स्वमूत्र से मालिश करने में ध्यान रखना चाहिए कि बडे फोडे, त्वचा में सूजन, गहरे घाव अथवा जख्म एवं आग से जलने पर उत्पन्न घाव अथवा फफोलों में स्वमूत्र से मालिश नही करनी चाहिए। इसके साथ साथ स्वमूत्र मालिश में दूसरी प्रमुख सावधानी यह ध्यान रखनी चाहिए कि इसमें ताजे मूत्र का प्रयोग कदापि नही करना चाहिए। इस विषय को स्पष्ट करते हुए शिवाम्बु कल्प में कहा गया है –

अपक्व शिवतोयं तु लेपनम् मूढबुद्धितः।

रोग वृद्धिमवाप्नोति सर्वांग शिथिलोभवेत्।। **(शिवाम्बु कल्प)**

अर्थात जो अपक्व (बिना पके हुए) शिवाम्बु का मूर्खतावश लेप (मालिश) कर लेता है, उससे रोग बढ जाते हैं और सम्पूर्ण अंग शिथिल हो जाते हैं।

इस प्रकार मूत्र को कुछ समय (36 घंटे से सात दिनों) तक रखने के उपरान्त ही मालिश के लिए प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ साथ मालिश करने से पूर्व मूत्र को हल्का गर्म करने के उपरान्त ही प्रयोग करना चाहिए। मूत्र को गर्म करने के लिए मूत्र की शीशी को धूप में रखकर गर्म करना चाहिए। अधिक ठंडे तापक्रम के मूत्र से भी मालिश नही करनी चाहिए।

11.3.2 स्वमूत्र पान – मूत्र चिकित्सा की दूसरी प्रमुख विधि स्वमूत्रपान है। स्वमूत्रपान की विधि के अन्तर्गत प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व खालीपेट स्वमूत्रपान का सेवन किया जाता है। रात्रि में सोने के बाद प्रातःकाल नींद से जागने पर उत्सर्जित मूत्र की मध्य धारा का सेवन करना उत्तम होता है। इसे स्पष्ट करते हुए में कहा गया है –

पित्तोल्वणव्वात् प्रथमाम्बु धाराम्, विहायनिः सारतयाडन्य धाराम्।
निशेव्यते शीतलमध्य धारां, कापालिके खण्डमतेऽयरोली।।

अर्थात शिवाम्बु की पहली धारा मे पित्त की अधिकता होती है और अन्तिम धारा सारहीन होती है, अतः इन दोनो धाराओ को त्यागका मध्य की शीतल धारा का सेवन करना चाहिए। खण्ड कापालिक मत मे इस क्रिया को अमरोली कहते हैं।

स्वमूत्रपान की विधि के अन्तर्गत प्रातःकाल उत्सर्जित स्वमूत्रपान की मध्य धारा को किसी साफ स्वच्छ पात्र अथवा गिलास में एकत्र कर लिया जाता है। मूत्र की इस मात्रा को कुछ समय के लिए रख देते हैं। इससे मूत्र मे उपस्थित अनावश्यक तत्व नीचे बैठ जाते हैं तथा इसका तापक्रम सामान्य हा जाता है। तत्पश्चात इसमें कुछ मात्रा जल मिलाते हुए इसका सेवन किया जाता है। प्रातःकाल स्वमूत्र की कितनी मात्रा का सेवन करना चहिए, इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नही होता है किन्तु एक सामान्य विचारधारा के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लिए प्रतिदिन अर्थात 24 घंटे में 250 से 300 मिली ग्राम मूत्र का सेवन करना हितकारी होता है। मूत्र की इस मात्रा का सेवन तीन से चार बार में भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त रोगग्रस्त व्यक्ति को इस मात्रा का निर्धारण रोग की अवस्था अथवा चिकित्सक के निर्देशानुसार ही करना चाहिए।

स्वमूत्र सेवन का प्रारम्भ पाँच से दस बूँदों से किया जा सकता है। प्रथम दिन प्रातःकाल पाँच से दस बूँदों को ग्रहण करने के उपरान्त प्रतिदिन इस मात्रा को दोगुणा करते रहना चाहिए। स्वमूत्रपान करने के उपरान्त सौंफ, इलायची अथवा लौंग आदि का सेवन करते हुए मुँह का स्वाद ठीक अथवा बदला जा सकता है। स्वमूत्र की इतनी ही मात्रा का सेवन रात्रिकाल में सोने से पूर्व भी किया जा सकता है। स्वमूत्र सेवन की मात्रा को धीरे धीरे बढाते हुए इसकी सामान्य मात्रा अर्थात 200 मिली (ml) से 300 मिली (ml) मूत्र का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। इसके साथ साथ स्वमूत्रपान में कुछ निम्न सावधानियों का पालन अवश्य करना चाहिए –

(1) शिवाम्बुपान प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व ही करना चाहिए।

(2) शिवाम्बुपान करने वाले व्यक्ति को शुद्ध सात्विक आहार विहार करना चाहिए।

(3) शिवाम्बुपान करने वाले व्यक्ति को गरम, पित्त वर्धक, उष्ण प्रकृतियुक्त, गरिष्ठ, तीखा, खट्टा, रुक्ष, बासी एवं मिर्च मसालेयुक्त आहार का सेवन नही करना चाहिए।

(4) शिवाम्बुपान करने वाले व्यक्ति आहार की मात्रा कुछ कम करते हुए आहार में नमक का प्रयोग भी कम अथवा नही करना चाहिए।
(5) शिवाम्बुपान के उपरान्त उत्पन्न प्रतिक्रियाओं जैसे उल्टी, दस्त, बुखार, पेट दर्द एवं मुँह के छाले आदि का सामना धैर्यपूर्वक करना चाहिए। उपरोक्त प्रक्रियाओं से शरीर स्वच्छ हो रहा है, इस धारणा को अपनाते हुए, इनसे बिना डरे प्राकृतिक ढंग से इनका उपचार करना चाहिए।

11.3.3 स्वमूत्र पर उपवास– प्रिय पाठकों, उपवास काल में स्वमूत्र सेवन विशेष लाभकारी एवं प्रभावी होता है। उपवास के विषय में आपको पूर्वज्ञान है कि उपवास शरीर शोधन की वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शरीर को आन्तरिक रुप भलि प्रकार स्वच्छ बनाया जाता है और इसीलिए उपवास काल में अधिकाधिक जल का सेवन किया जाता है। उपवास काल में जल के साथ शिवाम्बु का सेवन करने से अथवा शिवाम्बु पर उपवास करने से शरीर शोधन क्रिया अधिक प्रभावी रुप में होती है। स्वमूत्र पर उपवास करने से कम समय में ही अधिक सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं। चूंकि शिवाम्बु पर उपवास अत्यन्त लाभकारी एवं प्रभावशाली प्रक्रिया है अतः इसमें कुछ निम्न सावधानियों का पालन अनिवार्य रुप से करना चाहिए –
(1) शिवाम्बु उष्ण स्वभाव युक्त क्षारीय, नमकीन एवं मधुर स्वाद युक्त द्रव्य होता है उपवास काल में इसका सेवन मनुष्य को अपने शरीर की प्रकृति एवं शरीर में दोषों की स्थिति के अनुसार करना चाहिए।
(2) शिवाम्बु उष्ण स्वभाव का होने कारण कफ एवं वात दोष प्रधान व्यक्तियों के लिए अधिक अनुकूल एवं पित्त दोष प्रधान व्यक्तियों के लिए कम अनुकूल होता है अतः पित्त दोष प्रधान व्यक्तियों को शिवाम्बु सेवन निम्न मात्रा में ही करना चाहिए।
(3) शिवाम्बु पर उपवास करने वाले व्यक्ति को सुव्यवस्थित एवं निश्चित दिनचर्या का पालन करना चाहिए।
(4) शिवाम्बु पर उपवास करने वाले व्यक्ति को रात्रि जागरण, अधिक गरमी में रहना, अत्यधिक शारीरिक परिश्रम, स्त्री समागम एवं क्रोध ईर्ष्या व द्वेष आदि मनोविकारों को पूर्ण रुप से त्याग देना चाहिए।
(5) मधुमेह, हृदय रोग एवं कैन्सर आदि गंभीर रोगों से ग्रस्त रोगी को किसी योग्य चिकित्सक के निर्देशन में ही शिवाम्बु पर उपवास करना चाहिए।
उपवास काल में भी प्रातःकाल से लेकर दिन भर में तीन से चार बार में 300 मिलीग्राम स्वमूत्र की मात्रा का सेवन करना चाहिए। उपवास काल में भी स्वमूत्र प्रयोग मे पूर्व वर्णित सावधानियों का पालन अवश्य करना चाहिए।

11.3.3 स्वमूत्र की पट्टियां– स्वमूत्र का प्रयोग पट्टियों में दो प्रकार से किया जाता है –
(क) कपडे की पट्टियाँ
(ख) मिट्टी की पट्टियाँ

(क) कपडे की पट्टियाँ : स्वमूत्र प्रयोग की इस विधि के अन्तर्गत सूती कपडे की पट्टी बनायी जाती हैं। इसके उपरान्त इस पट्टी को स्वमूत्र में अच्छी प्रकार से भिगोया जाता है। स्वमूत्र में भीगी इस पट्टी को शरीर के विभिन्न अंगों अथवा जोडों पर प्रयोग करते हैं। इस प्रकार पट्टी को बांधने के उपरान्त इसके उपर से गर्म पट्टी अथवा ऊनी पट्टी को बांध देते हैं। इस पट्टी को आधे घंटे तक बांधने से विभिन्न रोगों में लाभ प्राप्त होते हैं।

(ख) मिट्टी की पट्टियाँ : स्वमूत्र का मिट्टी की पट्टी के साथ प्रयोग करने में सर्वप्रथम साफ स्वच्छ मिट्टी को अच्छी प्रकार धूप में सुखाकर एवं कूट कर तैयार कर लेते हैं तत्पश्चात् इस मिट्टी को जल के साथ साथ स्वमूत्र में भीगो कर तैयार कर लेते हैं। इस प्रकार उपरोक्त विधिनुसार जल एवं स्वमूत्र में मिट्टी को बारह से चौबीस घंटे अच्छी प्रकार भीगो कर एवं आटे की तरह गुँथ तैयार कर लेते है। मिट्टी को इस प्रकार तैयार करने के पश्चात इसकी पट्टी बनाकर, पट्टी को शरीर के विभिन्न भागों जैसे पेट, कमर, घुटने आदि पर प्रयोग करते हैं।

11.3.5 स्वमूत्र का अन्य औषध द्रव्यों के साथ सेवन–जिज्ञासु पाठकों, शिवाम्बु का सेवन अन्य औषधीय गुणों युक्त से द्रव्यों अथवा पदार्थों के साथ भी किया जाता है। विविध चिकित्सकीय गुणों से युक्त औषध द्रव्यों का सेवन शिवाम्बु के साथ करने से रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इन औषध द्रव्यों में अजवायन, सौफ, शहद, नींबू रस, सैंधव नमक एवं काले नमक का वर्णन आता है। स्वमूत्र सेवन की इस विधि में रोग के अनुसार औषध द्रव्य का चयन करने के उपरान्त औषध द्रव्य का स्वमूत्र के साथ किया जाता है। प्रिय पाठकों, शिावाम्बु कल्प नामक ग्रन्थ के श्लोकों में शिवाम्बु पान के विषय में अत्यन्त गहराई से एवं सुक्ष्म रुप में चिन्तन किया गया है। इस ग्रन्थ में वर्ष की छह ऋतुओं में निम्न लिखित औषध द्रव्यों के साथ शिवाम्बु सेवन का उपदेश किया गया है –

(क) बसन्त ऋतु में शहद के साथ हरड का अथवा शहद के साथ सौंठ का सेवन करने के बाद शिवाम्बु पान करना चाहिए।

(ख) ग्रीष्म ऋतु में हरड और पीपल मूल का चूर्ण गुड के साथ खाकर उस पर स्वमूत्रपान करने से समस्त रोगों का नाश होता है।

(ग) वर्षा ऋतु में हरड, सेंधा नमक और पीपल मूल का चूर्ण खाकर उसके ऊपर शिवाम्बु पान करने से शरीर रोगमुक्त रहता है।

(घ) शरद ऋतु में हरड, बहेडा और मिश्री का चूर्ण खाकर स्वमूत्रपान करने से शरीर शुद्ध होता है।

(च) हेमन्त ऋतु में सौंठ, आँवले और हरड के चूर्ण को फांक कर स्वमूत्रपान करने से योगी समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है।

(छ) शिशिर ऋतु में पीपल मूल, हरड और सौंठ के चूर्णों को मिलाकर खाने के बाद स्वमूत्रपान करने से शरीर निर्मल बनता है।

इस प्रकार उपरोक्त औषध द्रव्यों के साथ शिवाम्बुपान करने का स्वास्थ्य पर सकारात्मक एवं अनुकूल प्रभाव पडता है एवं शरीर रोगमुक्त रहते हुए ऊर्जावान बना रहता है।

11.3.6 नस्यपान, मुख प्रक्षालन एवं नेत्र प्रक्षालन– नस्यपान की दो प्रमुख विधियों का वर्णन आता है। प्रथम विधि के अन्तर्गत शिवाम्बु की कुछ बूँदों को नासिका में टपकाया जाता है जबकि नस्य की दूसरी विधि के अन्तर्गत शिवाम्बु को किसी पात्र में लेकर आग पर इस प्रकार उबालते हैं कि शिवाम्बु भाप के रुप में पात्र से बाहर निकलने लगे। अब आँखों को बंद करते हुए कम्बल को ओढकर नासिका से शिवाम्बु भाप का पान किया जाता है।

मुख प्रक्षालन के अन्तर्गत मुख में भलि भांति शिवाम्बु को भरकर उससे कुल्ला किया जाता है। नेत्र प्रक्षालन के अन्तर्गत नेत्रों को शिवाम्बु से धोया जाता है। इसके लिए आईवाश कप में शिवाम्बु को भरकर, कप को आँखों पर लगाकर आँखों को कप में खोलते हुए अच्छी

प्रकार धोया जाता है। स्वमूत्र का प्रयोग एनीमा द्रव्य के रुप में भी किया जाता है। इसके लिए स्वमूत्र को एनीमा पात्र में लेकर विधिपूर्वक ग्रहण किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त छह विधियों के अन्तर्गत शिवाम्बु अर्थात स्वमूत्र का प्रयोग किया जाता है। शिवाम्बु प्रयोग की इन विधियों को जानने के उपरान्त में यह प्रश्न अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा कि किन किन रोगों में एवं किस प्रकार के रोगों में स्वमूत्र चिकित्सा का प्रयोग प्रभावी एवं उपयोगी सिद्ध होता है अतः अब विविध रोगों में स्वमूत्र चिकित्सा के प्रयोगों पर विचार करते हैं –

11.4 स्वमूत्र का रोगों में प्रयोग

जिज्ञासु पाठकों, स्वमूत्र जिसे शास्त्रों में शिवाम्बु का नाम दिया गया है, प्राकृतिक गुणों से युक्त ईश्वर प्रदत औषधि है जिसके प्रयोग से स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य को उन्नत बनाता है तो वहीं रोगी व्यक्ति के लिए यह संजीवनी के समान कार्य करने वाली महाऔषधी है। स्वमूत्र के गुणों से प्रभावित होकर केवल भारत वर्ष में ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व के धरातल पर उपस्थित जनसाधारण, पुरुष, महापुरुष एवं चिकित्सक स्वयं इसका प्रयोग करते हैं एवं अन्यों को इसके लाभों से अवगत कराते है। स्वमूत्र चिकित्सा पर रचित अनेक ग्रन्थ जैसे जॉन आर्मसट्रांग द्वारा लिखित पुस्तक The Water of Life (जीवनजल), श्री रावजी भाई पटेल द्वारा रचित मानवमूत्र तथा श्री रामकृष्ण कार्लेकर द्वारा रचित स्वमूत्रोपचार चिकित्सा, इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए इसके साथ जुडने एवं इसके प्रयोग की प्रेरणा प्रदान करते हैं। स्वमूत्र के चिकित्सकीय गुण के आधार पर कुछ आधुनिक चिकित्सक स्वमूत्र चिकित्सा को ऑटो इम्यून थैरेपी की संज्ञा भी देते हैं। वास्तव में आधुनिक समय में स्वमूत्र ही एक ऐसी महाऔषधी के रुप में कार्य कर रही है जो आज के प्रदूषित एवं विकारमय वातावरण में तेजी से फैलती महामारियों पर अंकुश लगाने की क्षमता रखती है। आज की इन महामारियों में एड्स, कैन्सर, पोलियो, रेबीज, डायाबिटीज, मोटापा एवं टयूबाक्लोसिस (टी0बी0) जैसे गंभीर रोगों की चिकित्सा का वर्णन आता है। इन रोगों के उपचार में जहां आधुनिक चिकित्सा पद्धति की विभिन्न एंटी बॉयोटिक्स दवाईयों का प्रयोग निष्प्रभावी एवं दुष्प्रभावों से युक्त सिद्ध होता है तो वहीं दूसरी ओर स्वमूत्र प्रयोग से रोगी को शीघ्र, दुष्प्रभावरहित एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ साथ नियमित रुप से एवं विधिपूर्वक स्वमूत्र चिकित्सा का प्रयोग करने से रोगी असाध्य रोगों पर भी विजय प्राप्त करने में सक्ष्म बनता है।

स्वमूत्र प्रयोग जहाँ गंभीर और असाध्य रोगों को दूर करने की क्षमता रखता है तो वहीं सामान्य व्रीव रोगों जैसे सर्दी जुकाम, बुखार, मलेरिया, अम्ल पित्त, पीलिया, अपच एवं शारीरिक व मानसिक थकान में मूत्र चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होता है। विविध रोगों के उपचार में मूत्र चिकित्सा के प्रयोग को इस प्रकार समझा जा सकता है –

(1) मूत्र में एक विशेष प्रकार का तत्व यूरेसिन (Ureacin) पाया जाता है। यह तत्व त्वचा के लिए एक प्राकृतिक क्रीम का कार्य करता है। इसके प्रभाव से विभिन्न त्वचा रोगों में आराम मिलता है। मूत्र चिकित्सा से त्वचा में गाठें, फोडे–फुसींयों, दाद, खाज, खुजली (फँगल संक्रमण), रुक्षता एवं सोरायसिस आदि रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। घाव जल्दी भरने में भी शिवाम्बु चिकित्सा का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है। त्वचा रोगों में शिवाम्बुपान के साथ साथ शिवाम्बु की पट्टीयां एवं शिवाम्बु मालिश करने से कुष्ट व कोढ जैसे गंभीर रोगों में भी तुरन्त लाभ प्राप्त होता है।

(2) शिवाम्बु चिकित्सा से त्वचा के साथ साथ बालों एवं नाखूनों पर भी अनुकूल प्रभाव पडता है। शिवाम्बु प्रयोग से बालों का जडों से कमजोर होकर झडना, सिर का गँजापन, असमय सफेद होना, बालों में रुसी होना, बालों में जुएँ पडना, नाखूनों का जड से पकना, कमजोर होकर टूटना एवं सूखना आदि रोगों में तुरन्त लाभ प्राप्त होता है।

(3) मूत्र में विशेष प्रकार के उच्च सक्रिय पाचक रस (Highly Active Enzymes) पाये जाते हैं जो पाचन तंत्र के लिए अत्यन्त लाभकारी होते हैं। मूत्रपान करने से ये पाचक रस शरीर में जाकर पाचन तंत्र की क्रियाशीलता को बढाने का कार्य करते हैं जिसके परिणाम स्वरुप यकृत एवं आंतों की सक्रियता बढती है एवं इनसे सम्बन्धित रोग जैसे अजीर्ण, अपच, संग्रहणी, मन्दाग्नि, दस्त, पीलिया, गैस, पेटदर्द एवं मधुमेह आदि रोगों से मुक्ति मिलती है। आँतों में कृमि होने पर एवं अपेन्डिक्स रोग में भी मूत्र चिकित्सा विशेष लाभकारी प्रभाव रखती है।

(4) नासिका एवं गले से सम्बन्धित रोगों में मूत्र चिकित्सा का प्रयोग करने से रोग जल्दी ही ठीक होने लगते हैं। सामान्य सर्दी जुकाम से लेकर सायनस, नकसीर, आवाज बैठना एवं एलर्जी आदि रोगों में शिवाम्बु प्रयोग से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। नासिका में शिवाम्बु डालने से नासिका पथ की सफाई होती है जिससे नासिका अवरोध दूर होता है और सायनस रोग दूर होता है। इससे नासिका के श्लेष्मा आवरण को बल मिलता है एवं घ्राण (गंध) शक्ति बढती है। मुँह में शिवाम्बु भरकर गरारे करने से कंठ रोगों का नाश होता है।

(5) दाँतों को साफ–स्वच्छ बनानें में एवं दाँतों को रोगरहित बनाने में शिवाम्बु प्रयोग प्रभावकारी सिद्ध होता है। शिवाम्बु द्वारा दाँतों का शोधन करने से दातों का मैल दूर होता है एवं इसके साथ साथ दाँतों का संक्रमण भी दूर होता है। शिवाम्बु चिकित्सा से मुँह की दुर्गन्ध, पायरिया, दाँतों का दर्द, दाँतों से खून आना एवं मसूडों की सूजन आदि रोगों में आराम मिलता है एवं दाँत साफ, स्वच्छ, चमकीले एवं सुन्दर बनते हैं।

(6) आँखों के लिए शिवाम्बु प्रयोग (नेत्र प्रक्षालन) अत्यन्त लाभकारी रहता है। आँखों में शिवाम्बु प्रयोग करने से आँखे स्वच्छ एवं मलहीन बनती है जिससे आँखों की दृष्टि तेज बनी रहती है एवं विभिन्न प्रकार के नेत्र रोग जैसे आँखों का दुखना, कमजोर दृष्टि, मोतियाबिम्ब आदि रोगों में आराम मिलता है। कानों में स्वमूत्र का प्रयोग करने से कानों में जमा मैल फूलकर बाहर निकल जाता है जिससे कानों की अच्छी प्रकार सफाई होती है एवं श्रावण शक्ति का विकास होता है। ज्ञानेन्द्रियों को साफ, स्वच्छ, क्रियाशील एवं रोगरहित बनाने में मूत्रचिकित्सा का प्रयोग अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होता है।

(7) मूत्र में यूरिया के साथ साथ यूराफोलोट्रोपीन एवं यूरोफिल नामक तत्व उपस्थित होते हैं। शिवाम्बुपान करने से यह तत्व शरीर एवं रक्त में आकर वृक्कों की क्रियाशीलता को बढा देते हैं। वृक्कों की क्रियाशीलता बढने से रक्त शोधन की क्रिया त्रीव होती है एवं विभिन्न प्रकार के मूत्र रोग दूर होते हैं।

(8) मूत्र में उपस्थित यूरिया शोधक गुण युक्त तत्व है जिसके प्रयोग करने से शरीर में शोधन क्रिया त्रीव हो जाती है। मूत्रपान करने से यह तत्व शरीर में जाकर प्रत्येक अंग का शोधन करता है इसी कारण मूत्र चिकित्सा का प्रयोग करने शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति तेजी से विकसित होती है।

(9) मूत्र रक्त (रक्त कणों) से उत्पन्न वह द्रव्य होता है जिसमें बैक्टिरिया, फंगस और वायरस को नष्ट करने का गुण पाया जाता है। मूत्र के इस गुण का चिकित्सा के क्षेत्र में विशेष रुप से प्रयोग किया जाता है। यह एक प्राकृतिक एंटी बॉयोटिक का कार्य करता है

जिसका प्रयोग करने से शरीर में उपस्थित बैक्टिरिया अथवा वायरस नष्ट होता है इसीलिए मलेरिया बुखार, ट्यूबरक्लोसिस, आँतों में संक्रमण तथा एड्स जैसे गंभीर संक्रामक रोगों में मूत्र चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है।

(10) हृदय रोगियों के लिए शिवाम्बु प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है। शिवाम्बु में उपस्थित यूरिया रक्त शुद्धि के साथ साथ रक्त के गाढेपन को दूर करता हुआ, रक्त को पतलापन प्रदान करता है। रक्त के पतले होने से बढा रक्तचाप सामान्य बनता है, हृदय गति नियमित होती है एवं शरीर में रक्त संचार सुचारु बनता है। स्वमूत्र प्रयोग करने से रक्त में लाल रक्त कणों के निमार्ण की क्रिया त्रीव होती है एवं रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा भी बढती है। शिवाम्बु प्रयोग से शरीर की अनावश्यक चर्बी हट जाती है एवं शरीर का वजन कम (Loss of Overweight) हो जाता है इसका भी रक्त परिसंचरण तंत्र एवं हृदय पर अनुकूल प्रभाव पडता है।

(11) मूत्र शरीर में वात दोष पर शामक प्रभाव रखता है। मूत्र चिकित्सा के प्रयोग शरीर में उग्र वात दोष शान्त हो जाता है। मूत्र के इस गुण के कारण वात व्याधियों जैसे जोडों में दर्द, सूजन, गठिया एवं आर्थाराइटिस रोगियों की मूत्र चिकित्सा करने से रोगी को शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

(12) मूत्र में विभिन्न प्रकार के शरीर के लिए उपयोगी हार्मोन्स उपस्थित होते हैं। मूत्रपान करने से यह हार्मोन्स पुनः शरीर में जाकर शरीर की चयापचय को सन्तुलित बनाने का कार्य करते है। इस प्रकार मूत्रपान करने से चयापचय दर सन्तुलित होती है जिससे शारीरिक एवं मानसिक थकान से मुक्ति प्राप्त होती है एवं शरीर हल्का व ऊर्जावान बनता है।

(13) मूत्र में अनेंक प्रकार के लाभकारी पौषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होते हैं स्वमूत्र सेवन करने से शरीर में पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न होने वाले रोग नही होते हैं। दूसरे शब्दों में स्वमूत्र प्रयोग करने विभिन्न पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न रोग दूर होते हैं।

(14) मूत्र में कुछ ऐसे लवणीय तत्व पाये जाते है जो शरीर के लिए लाभकारी होते हैं। शिवाम्बुपान करने से यह लवण पुनः शरीर को प्राप्त होते है इन आवश्यक लवणों के प्रर्याप्त मात्रा में शरीर में उपस्थित रहने से शरीर का विकास भलि भाँति होता है। शिवाम्बुपान करने से शरीर की तंत्रिकाओं एवं मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव पडता है। शिवाम्बु प्रयोग से तंत्रिकाओं एवं मस्तिष्क सम्बंधी रोगों में भी लाभ प्राप्त होता है।

(15) वर्तमान काल में बहुत तेजी से बढ रहे स्त्री रोगों के उपचार में शिवाम्बु प्रयोग चमत्कारिक प्रभाव प्रदान करता है। अनेंक गंभीर स्त्री रोगों जैसे प्रजनन अंगों में संक्रमण, प्रजनन अंगों में गांठे, प्रजनन हार्मोन्स की अनियमितता, अनियमित रक्तस्राव एवं बाँझपन इत्यादि में स्वमूत्र चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है।

(16) कैन्सर जैसे गंभीर एवं खतरनाक रोग में शिवाम्बु प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है। शिवाम्बु प्रयोग से कैन्सर को उत्पन्न करने वाली कार्सिनोजन सैल्स की वृद्धि तुरन्त रुक जाती है। कैन्सर रोग में अन्य उपचारों की तुलना में शिवाम्बु प्रयोग अत्यन्त सरल एवं प्रभावशाली उपचार है।

इस प्रकार शिवाम्बु चिकित्सा के प्रयोग से शरीर के लगभग सभी संस्थानों एवं अंगों पर सकारात्मक एवं अनुकूल प्रभाव पडता है जिससे जहाँ शरीर के विभिन्न संस्थानों की कार्यकुशलता बढती है तो वहीं दूसरी और इन संस्थानों के विभिन्न विकार अथवा रोग भी दूर होते हैं। स्वमूत्र शरीर के लिए एक प्राकृतिक टीके (Natural Vaccine) का कार्य करता

है जिसके प्रयोग से शरीर में तेजी से प्रतिजन (Antigen) विकसित होते हैं और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित बढती है। शिवाम्बु चिकित्सा शारीरिक रोगों के साथ साथ मानसिक रोगों में भी लाभकारी प्रभाव रखती है। चूंकि शिवाम्बु प्रयोग विषक्त (नकारात्मक) पदार्थों के निष्कासन की क्रिया को त्रीव करता है अतः विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों जैसे मानसिक तनाव, अवसाद, चिन्ता, भय, घबराहट आदि से ग्रस्त रोगियों पर मूत्र चिकित्सा प्रयोग करने से सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं। शिवाम्बु चिकित्सा का अन्य प्रमुख लाभ यह भी है कि यह चिकित्सा सरल एवं दुष्प्रभावरहित चिकित्सा है जिसका प्रयोग रोगों में स्थाई लाभ प्रदान करता है अर्थात इससे ठीक होने के उपरान्त पुनः रोग उत्पन्न नही होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– सत्य /असत्य

(क) शिवाम्बुपान प्रातःकाल सूर्योदय उपरान्त ही करना चाहिए।

(ख) स्वमूत्र की 200 मिली (ml) से 300 मिली (ml) मात्रा का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए।

(ग) प्रातःकाल उत्सर्जित स्वमूत्र से तुरन्त शरीर की मालिश करनी चाहिए।

(घ) मानव मूत्र कृमियुक्त होता है अर्थात इसमें कृमि (कीडे) उत्पन्न होते हैं।

(ड) स्वमूत्र शरीर के लिए एक प्राकृतिक एंटी बॉयोटिक का कार्य करता है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) शिवाम्बु ––––– स्वभाव युक्त क्षारीय, नमकीन एवं मधुर स्वाद युक्त द्रव्य होता है।

(ख) ––––––– दोष प्रधान व्यक्तियों को शिवाम्बु सेवन निम्न मात्रा में करना चाहिए।

(ग) प्रातःकाल नींद से जागने पर उत्सर्जित मूत्र की ––––––– धारा का सेवन करना उत्तम होता है।

(घ) मुँह में शिवाम्बु भरकर गरारे करने से ––––––– रोगों का नाश होता है।

(ड) शिवाम्बु प्रयोग से कैन्सर को उत्पन्न करने वाली ––––––– सैल्स की वृद्धि तुरन्त रुक जाती है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) किस रोग में मूत्र चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है –

(a) कैन्सर (b) हृदय रोग

(c) त्वचा रोग (d) उपरोक्त सभी।

(ख) स्वमूत्र चिकित्सा की प्रसिद्ध पुस्तक The Water of Life (जीवनजल) के लेखक हैं –

(a) रार्बाट हुक (b) एडोल्फ जुस्ट

(c) जॉन आर्मस्ट्रांग (d) चार्ल्स डार्विन ।

(ग) मूत्र में उपस्थित कौन सा तत्व त्वचा के लिए एक प्राकृतिक क्रीम का कार्य करता है– (a) यूरेसिन (Ureacin) (b) बोरॉन (Boron)
(c) ग्लूकोज (Glucose) (d) वसा (Fat)

(घ) मालिश में मूत्र की कितनी मात्रा का प्रयोग करना चाहिए –
(a) 50 मिली0 (b) 250 मिली0
(c) 100 मिली0 (d) 500 मिली0।

(ड) ग्रीष्म ऋतु में शिवाम्बु पान किस औषध द्रव्य के साथ करना चाहिए –
(a) हरडे के साथ (b) पीपली के साथ
(c) गुड के साथ (d) उपरोक्त सभी

11.5 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ स्वमूत्र प्रयोग की विधियों के साथ किया गया है। इकाई में स्वमूत्र प्रयोग की छह प्रमुख विधियों पर प्रकाश डाला गया है। सर्वप्रथम स्वमूत्र द्वारा मालिश को समझाते हुए इसकी विधि एवं सावधानियों को स्पष्ट किया गया है। इकाई में समझाया गया है कि स्वमूत्र को मालिश के रुप में प्रयोग करने से पूर्व दो से सात दिनों तक शीशियों में भरकर रखना चाहिए। तत्पश्चात स्वमूत्रपान की विधि को समझाया गया है। स्वमूत्रपान के अन्तर्गत प्रातःकाल नींद से जागने पर उत्सर्जित मूत्र की मध्य धारा का सेवन करना उत्तम होता है। स्वमूत्र सेवन की मात्रा को पाँच–दस बूँदों से प्रारम्भ करते हुए, इसे धीरे धीरे बढाते हुए इसकी सामान्य मात्रा अर्थात 300 मिलीग्राम मूत्र का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। स्वमूत्रपान का उत्तम काल सूर्योदय पूर्व होता है। इकाई में आगे स्वमूत्र प्रयोग की अगली लाभकारी एवं प्रभावी विधि स्वमूत्र पर उपवास को समझाया गया है। उपवास काल में जल के साथ शिवाम्बु का सेवन करने से अथवा शिवाम्बु पर उपवास करने से शरीर शोधन क्रिया अधिक प्रभावी रुप में होती है जिससे कम समय में ही अधिक सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं। इससे आगे स्वमूत्र की पट्टियों को समझाते हुए दो प्रकार की पट्टियों पर प्रकाश डाला गया है। इकाई में स्वमूत्र प्रयोग की कपडे की पट्टियों एवं मिट्टी की पट्टियों के विषय में समझाया गया है। तत्पश्चात स्वमूत्र का विभिन्न औषध द्रव्यों के साथ सेवन को समझाते हुए विभिन्न ऋतुओं में उपयुक्त औषध द्रव्यों का ज्ञान कराया गया है। स्वमूत्र प्रयोग की अन्तिम विधि में नस्यपान, मुख प्रक्षालन एवं नेत्र प्रक्षालन को समझाया गया है।

इकाई में आगे स्वमूत्र के रोगों में प्रयोग को समझाया गया है। स्वमूत्र जिसे शास्त्रों में शिवाम्बु की संज्ञा दी गयी है, रोगियों के लिए संजीवनी के समान लाभकारी होता है। इस शिवाम्बु प्रयोग के प्रभाव से सामान्य एवं साध्य रोगों से लेकर गंभीर एवं असाध्य रोगों को ठीक करने की क्षमता होती है। शिवाम्बु की इसी क्षमता का प्रयोग विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में किया जाता है। अंत में मानसिक रोगों को दूर करने में स्वमूत्र चिकित्सा को स्पष्ट करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

11.6 पारिभाषिक शब्दावली–

पुरुषार्थ	जीवन का मूल अथवा महत्वपूर्ण कार्यविशेष
प्रधान	प्रबल रहने वाला

दोष	शरीर में उपस्थित विशेष प्रकार का द्रव्य अथवा पदार्थ
क्रमानुसार	एक के बाद दूसरा
एंटी बॉयोटिक	रोगाणुनाशक
असाध्य रोग	ऐसे रोग जिनका उपचार कठिनाई से होता है

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क.	उष्ण	क.	d
ख.	सत्य	ख.	पित्त	ख.	c
ग.	असत्य	ग.	मध्य	ग.	a
घ.	असत्य	घ.	कंठ	घ.	b
ड.	सत्य	ड.	कार्सिनोजन	ड.	d

11.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 स्वमूत्र चिकित्सा – डॉ0 एस0 के0 शर्मा, डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा0) लि0, नई दिल्ली। (संस्करण – 2003)

2 स्वमूत्र चिकित्सा – श्री कृष्णानन्द शास्त्री, रोजगार प्रकाशन, हालनगंज, मथुरा।

3 कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।

4 मूत्र–चिकित्सक का साथी – अनुवादक विमला तिवारी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी। (संस्करण मार्च 2003)

5 हठ प्रदीपिका – संस्करणकर्त्ता स्वामी दिगम्बर जी, डा0 पीताम्बर झा, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला। (संस्करण 2001)

11.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. स्वमूत्र चिकित्सा की विभिन्न विधियों की सविस्तार व्याख्या किजिए।
2. विभिन्न रोगों में स्वमूत्र चिकित्सा के प्रयोगों को समझाइये।
3 रोगोपचार में स्वमूत्र के महत्व पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 12 गोमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियां व रोगों में प्रयोग

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 गोमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियां
12.3.1 गोमूत्र सेवन
12.3.2 गोमूत्र का अर्क
12.3.3 पच्चगव्य
12.3.4 गोमूत्र से मालिश
12.3.4 अन्य प्रयोग की विधियां
12.4 गोमूत्र के चिकित्सकीय गुण
12.5 सारांश
12.8 पारिभाषिक शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, भारतीय समाज में गाय को अत्यन्त विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन वैदिक साहित्य अर्थात वेद, उपनिषदों से लेकर आयुर्वेद के ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से गाय की महिमा का गुणगान किया है। शास्त्रों के अनुसार गाय के गोबर में लक्ष्मी का वास एवं गोमूत्र में गंगा का वास होता है। वास्तव में शास्त्रों की यह मान्यता मात्र श्रृद्धाभाव अथवा अतिश्योक्ति का प्रतीक नही है अपितु वैज्ञानिक विश्लेषण गाय के गोबर एवं गोमूत्र के लाभकारी प्रभावों की पुष्टि करते हुए गाय की उपयोगिता एवं महत्व को सिद्ध करते हैं। वर्तमान काल के अनेक प्रसिद्ध चिकित्सक गोमूत्र के लाभों से प्रभावित होकर गोमूत्र को मानव जाति के लिए प्रकृति का दिया वरदान मानते हैं जबकि कुछ चिकित्सक गाय के चिकित्सकीय गुणों से प्रभावित होकर गाय को एक चलता फिरता चिकित्सालय कहते हैं।

पूर्व की इकाई में आपने मूत्र चिकित्सा एवं स्वमूत्र चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया है किन्तु इनके विषय में जानने के उपरान्त आपके मन में गोमूत्र के विषय में जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। जिस प्रकार स्वमूत्र प्रयोग शरीर के लिए लाभकारी एवं विविध रोगों की चिकित्सा में महत्वपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार गोमूत्र भी अत्यन्त लाभकारी एवं महत्वपूर्ण औषधि है। वास्तव में आधुनिक चिकित्सा पद्धति के महंगे, जटिल एवं दुष्प्रभावयुक्त इलाज की तुलना में गोमूत्र चिकित्सा अत्यन्त सरल, प्रभावी एवं दुष्प्रभावहीन चिकित्सा है। वर्तमान समय में अनेक सरल एवं गंभीर रोगों के उपचार में इसका प्रयोग किया जा रहा है।

उपरोक्त तथ्यों से अवगत होने के उपरान्त आपके मन में गोमूत्र के प्रयोग की विभिन्न विधियों को जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इसके साथ साथ यह प्रश्न भी अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा कि किन किन रोगों में गोमूत्र का प्रयोग लाभकारी प्रभाव

रखता है अतः अब गोमूत्र के प्रयोग की विभिन्न विधियों एवं रोगों में प्रयोगों पर सविस्तार विचार करते हैं –

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- गोमूत्र का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- गोमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियों का ज्ञान प्राप्त करोगें।
- गोमूत्र प्रयोग के सामान्य लाभों को समझाने में सक्षम हो सकेंगे।
- गोमूत्र प्रयोग द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार को जान सकेगें।
- गोमूत्र प्रयोग के विषय में अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

12.3 गोमूत्र चिकित्सा की विभिन्न विधियां

प्रिय पाठकों, गोमूत्र का प्रयोग घरों में सामान्य स्वच्छता से लेकर गंभीर रोगों के उपचार तक में किया जाता है। गोमूत्र को एक पवित्र एवं शुद्ध द्रव्य की संज्ञा देते हुए गंगाजल, गोंद, घोत आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। भारतीय समाज में गोमूत्र का प्रयोग अत्यन्त व्यवहारिक एवं व्यापक रुप से किया जाता है। इसका प्रयोग यज्ञ हवन में भूमि को शुद्ध करने हेतु छिडकाव करने से लेकर गंभीर रोगों को दूर करने की औषधि तथा विषम एवं नकारात्मक ऊर्जा को दूर करने तक में किया जाता है। यद्यपि गोमूत्र प्रयोग की अनेक विधियां प्रचलित हैं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण एवं प्रमुख विधियां इस प्रकार है –

(1) गोमूत्र का सेवन
(2) गोमूत्र का अर्क
(3) पच्चगव्य
(4) गोमूत्र से मालिश
(5) प्रयोग की अन्य विधियां

इन विधियों का सविस्तार वर्णन इस प्रकार है –

12.3.1 गोमूत्र सेवन– गोमूत्र सेवन की विधि के अन्तर्गत प्रातःकाल गाय द्वारा उत्सर्जित मूत्र को किसी पात्र में एकत्र कर लेते हैं। उसके उपरान्त इस मूत्र को कुछ समय के लिए (आधा घंटा) एक जगह रख दिया जाता है। इससे इसमें उपस्थित अशुद्धियाँ पात्र में नीचे बैठ जाती हैं। अब उस मूत्र को किसी सूती कपडे से दो अथवा तीन बार छानकर पीने के रुप में प्रयोग लाते हैं। प्रातःकाल खाली पेट गोमूत्र सेवन का सर्वोत्तम काल होता है। प्रारम्भ में गोमूत्र में समान मात्रा में जल मिलाकर सेवन किया जा सकता है। गोमूत्र सेवन कुछ निम्न लिखित सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए –

(1) पित्त दोष प्रधान व्यक्तियों को खाली पेट अथवा अधिक मात्रा में गोमूत्र का सेवन नही करना चाहिए।

(2) गोमूत्र का सेवन दिन के स्थान पर प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व करना चाहिए।

(3) बिना ब्याही हुई बछिया का मूत्र अधिक लाभकरी होता है, यद्यपि कुछ चिकित्सक दूध देने वाली गाय के मूत्र प्रयोग को भी लाभकारी बतलाते हैं किन्तु सावधानी के दृष्टिकोण से गर्भवती महिला को चिकित्सक की सलाह एवं देखरेख में ही गोमूत्र का सेवन करना चाहिए।

(4) जिस गाय से मूत्र लिया जा रहा है वह पूर्ण रुप से रोगों से मुक्त अर्थात स्वस्थ होनी चाहिए।
(5) जिस गाय से मूत्र लिया जा रहा है वह जंगल चरने वाली होनी चाहिए अथवा उसका चारा रासायनिक पदार्थों से मुक्त होना चाहिए।
(6) खुले में घूमने वाली, प्राकृतिक चारे का सेवन करने वाली एवं स्वेच्छा से पानी पीने वाली स्वस्थ पहाडी अथवा देशी गाय का मूत्र अधिक लाभकारी एवं प्रभावयुक्त होता है।
(7) गोमूत्र को फ्रिज में रखकर प्रयोग नही करना चाहिए।
(8) गोमूत्र को प्रयोग करने से पूर्व कई बार सूती कपडे अथवा छलनी से छान कर प्रयोग करना चाहिए।
(9) यद्यपि गोमूत्र गंगाजल के समतुल्य पवित्र एवं शुद्ध पदार्थ है और जिस पर गंगाजल रखने पर खराब नही होता है उसी प्रकार गोमूत्र रखने पर खराब नही होता है किन्तु फिर भी अधिक समय तक रखे गोमूत्र का सेवन नही करना चाहिए।
(10) गोमूत्र प्रयोग में स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

12.3.2 गोमूत्र का अर्क– वर्तमान समय में विभिन्न रोगों के उपचार में गोमूत्र के अर्क का प्रयोग बहुतायात में हो रहा है। गोमूत्र अर्क को कामधेनु अर्क के नाम से भी जाना जाता है। वास्तव में गोमूत्र का शोधित रुप ही गोमूत्र अर्क है जिसमें गोमूत्र को अग्नि के सर्म्पक में लाकर उसकी वाष्प बनाकर तैयार किया जाता है।
गोमूत्र का अर्क तैयार करने के लिए गोमूत्र को एक बर्तन में लेकर आग पर अच्छी प्रकार उबालते हैं। गोमूत्र के उबलने से उत्पन्न वाष्पों को एक नलिका के माध्यम से दूसरे जार अथवा बर्तन में ले जाते हैं। तत्पश्चात अगली नलिका में वाष्प को ठंडा करते हैं। वाष्प ठंडी होकर जल का रुप ग्रहण कर लेती है। गोमूत्र से तैयार इस जल को तीसरे जार अथवा पात्र में एकत्र कर लेते हैं। इस प्रकार तैयार गोमूत्र के अर्क का प्रयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता है। गोमूत्र अर्क गुणों से युक्त होने के साथ साथ जीवाणुमुक्त एवं अधिक शुद्ध होता है।

12.3.3 गोमूत्र से मालिश– गोमूत्र प्रयोग करने की एक प्रमुख विधि गोमूत्र द्वारा मालिश करना है। इस विधि के अन्तर्गत गोमूत्र का प्रयोग त्वचा पर मालिश करने के रुप में किया जाता है। इसके लिए किसी पात्र में गोमूत्र लेकर उसे धूप में हल्का सा गर्म कर लेते हैं। इसके उपरान्त स्वस्थ मनुष्य अथवा रोगी पुरुष को धूप में तेज वायु के प्रकोप से बचाते हुए इस गोमूत्र से मालिश करते हैं। गोमूत्र त्वचा के लिए एक टॉनिक का कार्य करते हुए विभिन्न रोगों को दूर करता है।
प्रिय पाठकों, गोमूत्र से मालिश करने में किसी अन्य रासायनिक पदार्थ को गोमूत्र में मिलाकर प्रयोग नही करना चाहिए। गोमूत्र को ताबें अथवा पीतल आदि धातु के पात्र में नही रखना चाहिए अपितु गोमूत्र को मिट्टी, काँच अथवा चीनी मिट्टी के पात्र में ही रखना चाहिए। गोमूत्र से मालिश के काल में साबून एवं शैम्पू आदि रासायनिक पदार्थों से युक्त पदार्थों का प्रयोग नही करना चाहिए। इसके साथ साथ खट्ठे एवं तीखे पदार्थ व नमक का प्रयोग बंद करते हुए गोमूत्र से मालिश करने से विभिन्न त्वचा रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

12.3.4 पच्चगव्य–पच्चगव्य गाय से उत्पन्न पाँच पदार्थों के समयोग से उत्पन्न औषध द्रव्य है जिसके प्रयोग से विभिन्न रोग नष्ट होते हैं एवं उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

पच्चगव्य के पाँच घटक द्रव्यों में गाय का दूध, गोदधि (गाय की दही), गोघृत, गोमूत्र एवं गोमय (गाय का गोबर) होते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में पच्चगव्य को स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अत्यन्त उपयोगी माना गया है। पच्चगव्य को बनाने घटक द्रव्यों के अनुपात पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि एक भाग घृत, एक भाग गोमूत्र, एक भाग गोमय, दो भाग दही एवं तीन भाग दूध मिलाने से पच्चगव्य का निर्माण होता है।

पच्चगव्य दुष्प्रभाव रहित औषधि है जिसके प्रयोग से शरीर रोगों में मुक्त रहता है। पच्चगव्य बनाने के लिए उपरोक्त पाँचों द्रव्यों को चाँदी अथवा काँच की कटोरी में रखकर मिलाते हुए तैयार किया जाता है। प्रातःकाल मुख शुद्धि के उपरान्त पच्चगव्य सेवन किया जाता है। पच्चगव्य सेवन करने से शरीर स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनता है।

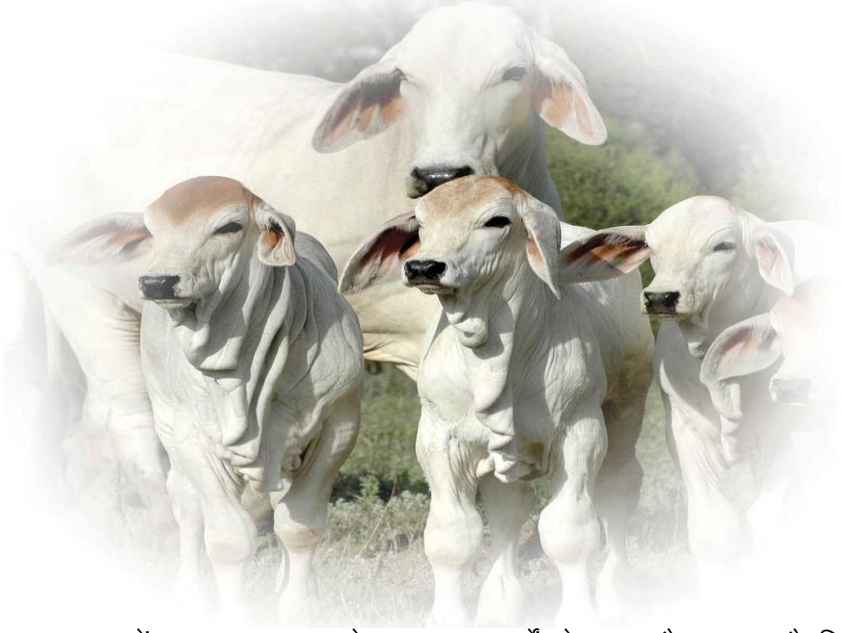

प्रिय जिज्ञासु पाठकों, पच्चगव्य गाय से उत्पन्न पदार्थों से बना औषध तत्व है जिसका सेवन करने में पूर्व वर्णित सावधानियों का पालन अवश्य करना चाहिए तथा इसके साथ साथ इसके प्रयोग काल में किसी भी प्रकार के तामसिक पदार्थ जैसे शराब, गुटका, पान मसाला एवं तम्बाकू आदि का प्रयोग पूर्णतया निषेध रखना चाहिए। माँसाहार एवं अन्य व्यसनों को त्याग कर ही पच्चगव्य का सेवन करना चाहिए। पच्चगव्य सेवन काल में अग्रेंजी दवाईयों का प्रयोग भी बंद कर देना चाहिए।

12.3.3 गोमूत्र प्रयोग की अन्य विधियां–

(क) गोमूत्र का छिडकाव– गोमूत्र प्रयोग की सबसे सरल एवं व्यव्हारिक विधि गोमूत्र का छिडकाव है। प्रायः प्रसव के उपरान्त घरों में शुद्धिकरण हेतु गो मूत्र का छिडकाव किया जाता है। इसी प्रकार अन्तिम संस्कार करने के उपरान्त घाट से आने वाले सभी व्यक्तियों के ऊपर गोमूत्र का छिडकाव किया जाता है।

गोमूत्र के अन्दर जीवाणुओं एवं रोगाणुओं को नष्ट करने की विलक्षण शक्ति पायी जाती है। इस विधि के अन्तर्गत गोमूत्र की इसी शक्ति का प्रयोग किया जाता है। चूंकि प्रसव किया के उपरान्त घर में जीवाणुओं एवं रोगाणुओं के विकसित होने के की संभावना अधिक हो

जाती है अतः घरों को शुद्ध, पवित्र एवं रोगणुरहित बनाने हेतु सात दिनों तक नियमित हवन एवं गोमूत्र का छिडकाव की प्रथा भारतीय समाज में प्राचीन काल से चली आ रही है। इसी प्रकार शमसान घाट में भी सडन आदि के कारण रोगाणुओं की संख्या अधिक होती है। इन रोगाणुओं से बचने के लिए शरीर पर गोमूत्र का छिडकाव किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत गोमूत्र को गंगाजल अथवा सामान्य स्वच्छ जल में मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

(ख) गोमूत्र से विभिन्न औषधियों का निर्माण–आधुनिक समय में गोमूत्र के प्रयोग से विभिन्न प्रकार की औषधियों का निर्माण बहुत बडे स्तर पर हो रहा है। इन औषधियों के द्वारा केवल भारत वर्ष में ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व के अनेकों रोगी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहे हैं। इन औषधियों में गोमूत्र अर्क, गोमूत्र घनवटी, गोमूत्र हरीतकी वटी, गोमूत्र मधुमेहारी वटी, गोमूत्र आसव, गोमूत्र गुडमारादि अर्क, गोमय वातनाशक तेल, गोमय दादनाशक वटी, गोमय दंतमंजन आदि का वर्णन प्रमुख रुप से आता है। शरीर के संस्थानों एवं ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित रोगों के साथ साथ कैंसर एवं एड्स जैसे गंभीर रोगों के उपचार में गोमूत्र से निर्मित विभिन्न औषधियों का सेवन कर रोगी लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

(ग) गोमूत्र से विभिन्न घरेलू उत्पादों का निर्माण–

आधुनिक समय में गोमूत्र के प्रयोग से विभिन्न घरेलू उत्पादों का निर्माण बहुत बडे स्तर पर हो रहा है। चूंकि खतरनाक जहरीले रसायनों से युक्त फिनाइल, डिटोल एवं सर्फ आदि की तुलना में गोमूत्र से निर्मित उत्पाद रासायनों से मुक्त एवं प्रकृति के अनुकूल (Eco Friendly) होते हैं अतः इन उत्पादों के लाभकारी प्रभावों से प्रभावित हाने वाले जन सामान्य की संख्या में दिनोदिन बढोतरी हो रही है इसी कारण इन उत्पादों की संख्या भी लगातार बढती जा रही है। इन उत्पादों में गोमूत्र से निर्मित नहाने एवं कपडे धोने के साबून, पाउडर, फर्श साफ करने के लिए फ्लोर वाश तथा हाथों को साफ करने के लिए हैण्ड वाश आदि का वर्णन प्रमुख रुप से आता है।

(घ) फसलों की सुरक्षा करने वाले कीटनाशक उत्पादों का निर्माण–वर्तमान समय में गोमूत्र के प्रयोग से फसलों की सुरक्षा करने वाले कीटनाशक उत्पादों का निर्माणभी बहुत बडे स्तर पर हो रहा है। इसके अन्तर्गत मूल घटक द्रव्य गोमूत्र का प्रयोग किया जाता है। इन कीटनाशक उत्पादों में गोमूत्र के साथ नीम एवं लहसुन के समिश्रण के साथ कीटनाशक उत्पादों का निर्माण किया जाता है। फसलों की सुरक्षा हेतु खतरनाक जहरीली रासायनिक दवाईयों जैसे गेमेक्सीन, रिर्जेन्ट आदि की तुलना में गोमूत्र से निर्मित कीटनाशक उत्पाद प्रकृति के अनुकूल एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अधिक सुरक्षित तथा लाभकारी होते हैं।

प्रिय पाठकों, उपरोक्त तथ्यों को जानने एवं समझने के उपरान्त आपको यह स्पष्ट हुआ होगा कि वर्तमान समय में भिन्न भिन्न रुपों में गोमूत्र का प्रयोग किया जा रहा है। किन्तु आपके मन में सह प्रश्न भी अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा कि गोमूत्र में कौन कौन से गुण होते हैं जिस कारण इसका प्रयोग इतने अधिक रुपों में किया जाता है। अतः अब गोमूत्र के चिकित्सकीय गुणों पर विचार करते हैं –

12.4 गोमूत्र के चिकित्सकीय गुण

गोमूत्र में प्रमुख रुप से निम्न लिखित तत्व उपस्थित होते हैं जिनका प्रभाव मानव शरीर के संस्थानों एवं अंगों पर पडता है –

क्रमांक	तत्व का नाम	शरीर पर प्रभाव
1	नाइट्रोजन	वृक्कों एवं उत्सर्जन तंत्र की क्रियाशीलता बढाता है।
2	यूरिया	शरीर पर रोगाणुनाशक प्रभाव रखता है।
3	अमोनिया	रक्त एवं रक्त परिसंचरण तंत्र को स्वस्थ बनाती है।
4	कार्बोलिक अम्ल	रोगाणुनाशक प्रभाव के साथ प्रतिरक्षा तंत्र को क्रियाशील बनाता है।
5	सल्फर	पाचन तंत्र को सक्रिय बनाता है।
6	कॉपर	अनावश्यक चर्बी को बाहर निकालता है।
7	विटामिन्स	शरीर की वृद्धि एवं विकास में सहायक हैं।
8	हार्मोन्स	शरीर की चयापचय दर को नियमित रखते हैं।
9	एन्जाइम्स	पाचन तंत्र को सक्रिय बनाता है।
10	खनिज लवण	शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाते हैं।

प्रिय पाठकों, गोमूत्र में नाइट्रोजन, पोटेशियम, सोडियम, यूरिया एवं यूरिक ऐसिड आदि तत्व प्रमुख रुप से विधमान रहते हैं। इनके प्रयोग से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति प्रबल बनी रहती है। गोमूत्र का प्रयोग करने से मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य उन्नत बना रहता है एवं वह व्यक्ति रोगमुक्त रहता हुआ दीर्ध आयु को प्राप्त करता है। गोमूत्र सेवन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि गोमूत्र प्रयोग स्वस्थ एवं रोगी दोनों प्रकार के मनुष्यों के लिए लाभकारी है। स्वस्थ मनुष्य गोमूत्र प्रयोग से अपने स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं जो वहीं रोगी मनुष्य गोमूत्र प्रयोग से अपने रोग पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। गोमूत्र प्रयोग के रोगों में लाभकारी प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए आचार्य सुश्रुत लिखते हैं –

गौमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं सक्षारस्नान वातलम् लाघ्वाग्निं, दिपनं, मध्यं, पित्तल, कफवात, शुलं, गुल्मोदरानाहविरे कास्थापनादिषु, मूत्रा प्रयोग साध्येषु गव्यं, मूत्रा प्रयोजयेत।।

(सु0अ0 45/220–221)

अर्थात गोमूत्र कडवा, चरखा, कषैला, तीक्ष्ण, उष्ण, शीघ्र पाचक, मस्तिष्क के लिए शक्तिवर्धक, कफ वात हरने वाला, शूल, गुल्म उदर, आनाह, खुजली, मुख रोग नाशक है।

गोमूत्र के उपरोक्त चिकित्सकीय गुणों के विषय में जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होनी भी स्वाभाविक ही है कि गोमूत्र का प्रयोग किन किन रोगों में लाभकारी प्रभाव रखता है अतः अब गोमूत्र के विभिन्न रोगों में प्रयोग पर विचार करते हैं –

12.5 गोमूत्र का रोगों में प्रयोग

जिज्ञासु पाठकों, गोमूत्र में एक महत्वपूर्ण तत्व कार्बोलिक अम्ल उपस्थित होता है जो कीटाणुओं व रोगाणुओं को नष्ट करने की विशेष शक्ति रखता है। इसी कारण गोमूत्र प्रयोग से प्रायः सभी प्रकार के संक्रामक रोग दूर हो जाते हैं। इसके साथ साथ गोमूत्र में शरीर के तीन दोषों – वात, पित्त एवं कफ को सम बनाने की क्षमता होती है इसी कारण गोमूत्र प्रयोग से दोषों की विषमता से उत्पन्न रोगों में तुरन्त लाभ प्राप्त होने लगता है। कुछ चिकित्सकों का मत है कि दूध देने वाली गाय के मूत्र में लेक्टोज नामक तत्व उपस्थित होता है जो हृदय एवं मस्तिष्क को बल प्रदान करता है। इस तत्व के प्रभाव से

हृदय एवं मस्तिष्क की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है एवं इन अंगों से सम्बन्धित रोग दूर होते हैं। गोमूत्र के प्रयोग से शरीर से विभिन्न तंत्रों पर अनुकूल प्रभाव पडता है एवं इन तंत्रों से सम्बन्धित रोग भी दूर होते हैं। विविध रोगों के उपचार में गोमूत्र चिकित्सा का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी एवं चमत्कारी प्रभाव रखता है। निम्न लिखित रोगों के उपचार में गोमूत्र प्रयोग विशेष रुप से लाभकारी प्रभाव रखता है –

(1) गोमूत्र का प्रयोग त्वचा रोगों में अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है। सामान्य खुजली से लेकर दाद, कुष्ट एवं कोढ जैसे गंभीर रोगों के उपचार में गोमूत्र प्रयोग से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। त्वचा में संक्रमण होने पर गोमूत्र का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है। विभिन्न त्वचा रोगों में गोमूत्र से मालिश करने से रोग दूर होते हैं इसके साथ साथ त्वचा रोग से ग्रस्त रोगियों को गिलोय के रस को गोमूत्र में मिलाकर सेवन कराने से रोग ठीक होने लगता है।

(2) रक्त विकारों एवं हृदय रोगियों के लिए गोमूत्र एक अमृत रसायन का कार्य करता है। गोमूत्र में उपस्थित लेक्टोज नामक तत्व रक्त को पतला बनाता है इसके प्रभाव से रक्तचाप सामान्य होता है। गोमूत्र के प्रभाव से रक्त में थक्के नही जमते हैं। हृदय रोगियों को दस ग्राम अर्जुन की छाल का चूर्ण गोमूत्र में मिलाकर पिलाने से रोग में विशेष लाभ प्राप्त होता है।

(3) वृक्कों की क्रियाशीलता को बढाने में गोमूत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वृक्क की क्रियाशीलता कम होने पर शरीर में रक्त छानने की क्रिया धीमी पड जाती है जिस कारण व्यक्ति को कृत्रिम रुप से रक्त को छानना पडता है। कृत्रिम रुप से रक्त छानने की क्रिया डायालिसिस कहलाती है जो एक अप्राकृतिक, महंगी एवं जटिल प्रक्रिया है इसकी तुलना में इस प्रकार के रोगी को गोमूत्र सेवन कराने से रोगी के शरीर में स्थित वृक्कों की अपनी स्वाभाविक क्षमता का विकास होता है, गोमूत्र के प्रभाव से वृक्कों की क्रियाशीलता तेजी से बढती है एवं रोगी को आराम मिलता है।

(4) गोमूत्र के साथ त्रिफला चूर्ण अथवा हरड का चूर्ण का सेवन करने से सभी प्रकार के पाचन रोगों में तुरन्त लाभ प्राप्त होता है। गोमूत्र के प्रभाव से पाचन शक्ति अर्थात जठाराग्नि व्रीव होती है एवं कब्ज, अजीर्ण, मंदाग्नि, अपच आदि रोगों में लाभ मिलता है। गोमूत्र में अरण्ड का तेल अथवा बादाम रोगन की दो चम्मच मिलाकर पिलाने से कब्ज रोग में तुरन्त आराम मिलता है।

(5) गोमूत्र का यकृत पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पडता है। यकृत के कम क्रियाशील अथवा निष्क्रिय होने से पीलिया रोग होता है। इस रोग से ग्रस्त रोगी को खाली पेट प्रातःकाल गोमूत्र का सेवन कराने से रोग में आराम मिलता है। पीलिया रोगी को पुर्ननवा के पच्चीस ग्राम रस में पचास ग्राम ताजा गोमूत्र मिलाकर पिलाने से रोग ठीक होने लगता है। गोआर पाठा (घृतकुमारी) के पच्चीस ग्राम रस में पचास ग्राम गोमूत्र मिलाकर पिलाने से पाचन तंत्र के अन्य रोगों में भी आराम मिलता है।

(6) ज्वर, मलेरिया एवं वायरल सर्दी जुकाम आदि संक्रामक रोगों में गोमूत्र सेवन से लाभ मिलता है। गोमूत्र में हल्दी चूर्ण, मधु अथवा पुराना गुड मिलाकर सेवन करने से रोगी के शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता तेजी से विकसित होती है जिसके परिणाम स्वरुप रोग में शीघ्र आराम मिलता है।

(7) ज्ञानेन्द्रियों एवं तंत्रिकाओं से सम्बन्धित विकारों में गोमूत्र प्रयोग से लाभ प्राप्त होता है। कान में दर्द होने पर गोमूत्र को गर्म करके इसकी बूँदें कान में डालने से रोग ठीक होता

है। तंत्रिकाओं की विकृतियों एवं मानसिक विक्षेपों से ग्रस्त रोगी को गोमूत्र प्रयोग करने से रोग में लाभ प्राप्त होता है।

(8) खाँसी, दमा, जुकाम आदि कफ की विकृति से सम्बन्धित रोगों में गोमूत्र सीधा ही प्रयोग में लाने से कफ बाहर निकल जाता है और रोगी को आराम मिलता है।

(9) घुटने, कोहनियों, पैर के पँजों में दर्द एवं सूजन, सियाटिका दर्द एवं जोडों के दर्द व सूजन में गोमूत्र एक उत्तम औषधि के रुप में कार्य करता है। गोमूत्र के प्रयोग से वात दोष की विकृति से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के दर्द में शीघ्र आराम मिलता है।

(10) डायाबिटीज रोगी द्वारा गोमूत्र प्रयोग करने से रोग में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। गोमूत्र सेवन करने से पेन्क्रियाज ग्रन्थि की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है एवं ग्रन्थि से संतुलित मात्रा में इन्सूलिन हार्मोन का स्रावण होने लगता है जिससे मधुमेह रोगी को रोग में आराम मिलता है।

(11) स्त्री रोगों में भी गोमूत्र का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है। मासिक धर्म के काल में गोमूत्र का सेवन करने से स्त्री अनेंक प्रकार के कष्टों से बच जाती है।

(12) गोमूत्र अर्क का प्रयोग करने से शरीर से विषाक्त पदार्थों का निष्कासन तेजी से होता है। गोमूत्र अर्क के प्रभाव से शराब के दुर्व्यसन पर भी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। शराब के दुर्व्यसन से ग्रस्त व्यक्ति को 15 दिनों तक सयंम के साथ शराब के स्थान पर गोमूत्र अर्क का सेवन कराने से उसका रक्त शुद्ध हो जाता है और उसका मन शराब से हट जाता है। नियमित रुप से छह माह गोमूत्र अर्क का सेवन कराने से शराबी व्यक्ति की शराब की आदत को पूर्ण रुप से नियंत्रित कर सकता है। इसी प्रकार अन्य दुर्व्यसनों को दूर करने में गोमूत्र प्रयोग महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– सत्य / असत्य

(क) गोमूत्र को फ्रिज में रखकर प्रयोग करना चाहिए।

(ख) गोमूत्र के अन्दर जीवाणुओं एवं रोगाणुओं को नष्ट करने की विलक्षण शक्ति पायी जाती है।

(ग) वृक्कों की क्रियाशीलता कम करने में गोमूत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(घ) गोमूत्र को ताबें अथवा पीतल आदि धातु के पात्र में ही रखना चाहिए।

(ड) गोमूत्र अर्क के प्रभाव से शराब के दुर्व्यसन पर भी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) ––––––– रोगियों को अर्जुन की छाल का चूर्ण गोमूत्र में मिलाकर पिलाने से विशेष लाभ प्राप्त होता है।

(ख) गिलोय के रस को गोमूत्र में डालकर सेवन कराने से –––रोग ठीक होने लगते हैं।

(ग) गोमूत्र में उपस्थित ––––– अम्ल कीटाणुओं व रोगाणुओं को नष्ट करने की विशेष शक्ति रखता है।

(घ) गोमूत्र में अरण्ड का तेल अथवा बादाम रोगन मिलाकर पिलाने से ––––––– रोग में तुरन्त आराम मिलता है।

(ड) गोमूत्र में हल्दी चूर्ण एवं मधु मिलाकर सेवन करने से शरीर की ——— तेजी से विकसित होती है।

3– **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) किस दोष प्रधान व्यक्तियों को खाली पेट अथवा अधिक मात्रा में गोमूत्र का सेवन नही करना चाहिए ?

(ख) कृत्रिम रुप से रक्त छानने की क्रिया क्या कहलाती है ?

(ग) पुर्ननवा के रस में ताजा गोमूत्र मिलाकर पिलाने से कौन सा रोग ठीक होने लगताहै ?

(घ) किस रोग से ग्रस्त रोगियों को गिलोय के रस को गोमूत्र में मिलाकर सेवन कराने से रोग ठीक होने लगता है ?

(ड) गोमूत्र सेवन करने से ग्रन्थि की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है ?

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) गोमूत्र सेवन का सर्वोत्तम काल है –

(a) प्रातःकाल (b) दोपहर

(c) सन्धा काल (d) रात्रिकाल।

(ख) गोमूत्र प्रयोग की विधि है –

(a) गोमूत्र सेवन (b) गोमूत्र अर्क सेवन

(c) पच्चगव्य सेवन (d) सभी ।

(ग) गोमूत्र में उपस्थित कौन सा तत्व रक्त को पतला बनाता है –

(a) फ्रक्टोज (Fructose) (b) लेक्टोज (Lectose)

(c) ग्लूकोज (Glucose) (d) यूरिया (Urea) ।

(घ) गोमूत्र में उपस्थित एन्जाइम्स किस तंत्र को सक्रिय बनाते हैं –

(a) उत्सर्जन तंत्र (b) रक्त परिसंचरण तंत्र

(c) पाचन तंत्र (d) श्वसन तंत्र ।

(ड) पच्चगव्य का घटक द्रव्य है –

(a) गोमूत्र (b) गाय का दूध

(c) गाय का घी (d) उपरोक्त सभी के साथ।

12.7 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ गोमूत्र प्रयोग की विधियों के साथ किया गया है। इन विधियों में गोमूत्र सेवन, गोमूत्र अर्क, पच्चगव्य, गोमूत्र से मालिश एवं अन्य व्यवहारिक विधियों पर प्रकाश डालते हुए समझाया गया है कि वर्तमान काल में गोमूत्र से निर्मित उत्पादों की संख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। तत्पश्चात गोमूत्र के चिकित्सकीय गुणों का विश्लेषण करते हुए समझाया गया है कि गोमूत्र में उपस्थित विभिन्न तत्व मानव शरीर के विभिन्न अंगों एवं तंत्रों पर सकारात्मक एवं लाभकारी प्रभाव रखते हैं। गोमूत्र प्रयोग से शरीर के विभिन्न अंगों एवं तंत्रों की सक्रियता में वृद्धि होती है। इसके साथ साथ गोमूत्र में उपस्थित कार्बोलिक अम्ल रोग नाशक प्रभाव रखता है जिसके प्रयोग से शरीर प्रतिरक्षा तंत्र को बल मिलता है एवं अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं। अंत में विभिन्न शारीरिक रोगों के उपचार में गोमूत्र प्रयोग के लाभकारी प्रभाव के स्पष्ट करते हुए इकाई को पूर्ण किया गया है।

12.8 पारिभाषिक शब्दावली–

प्रधान	प्रबल रहने वाला
र्दुव्यसन	बुरी अथवा गंदी आदतें
क्रमानुसार	एक के बाद दूसरा
एंटी बॉयोटिक	रोगाणुनाशक गुण युक्त पदार्थ
असाध्य रोग	ऐसे रोग जिनका उपचार कठिनाई से होता है
मानसिक विक्षेप	मनोरोग जैसे तनाव, अवसाद एवं चिन्ता आदि

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क. हृदय	क. पित्त	क.	a
ख.	सत्य	ख. त्वचा	ख.डायालिसिस	ख.	d
ग.	असत्य	ग. कार्बोलिक	ग. पीलिया	ग.	b
घ.	असत्य	घ. कब्ज	घ. त्वचा	घ.	c
ड.	सत्य	ड. प्रतिरोधक क्षमता	ड. पेन्क्रियाज	ड.	d

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6. गो–चिकित्सा – www.RajiivDixitMp3.com।
7. कल्याण आरोग्य अंक (जनवरी एवं फरवरी 2001 ई0) – गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. मूत्र–चिकित्सक का साथी – अनुवादक विमला तिवारी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी।(संस्करण मार्च 2003)

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न–

1 गोमूत्र प्रयोग की विभिन्न विधियों की सविस्तार व्याख्या किजिए।
2. विभिन्न रोगों में गोमूत्र चिकित्सा के प्रयोगों को समझाइये।
3 वर्तमान काल में रोगोपचार में गोमूत्रचिकित्सा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 13 फिजियोथेरेपी का अर्थ, इतिहास एवं उपयोगिता

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 फिजियोथेरेपी का अर्थ
13.4 फिजियोथेरेपी का इतिहास
13.5 फिजियोथेरेपी की उपयोगिता
13.6 फिजियोथेरेपी एवं मानव शरीर
13.7 सारांश
13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना :–

वर्तमान समय में प्रतिस्पर्धा के यान्त्रिक युग में मानव भागमभाग के चक्कर में दुर्घटनाग्रहस्त होकर शारीरिक रूप से पीड़ित हो रहा है। आज स्लिप डिस्क, सर्वाइकल, घुटने का दर्द, एड़ी का दर्द आदि रोग आम बात हो गयी हैं। ऐसे में कंधे, कमर, पीठ, घुटने एवं एड़ी आदि के दर्दों से मुक्ति पाने के लिये फिजियोथेरेपी चिकित्सा पद्धति वरदान साबित हो रही है। पोलियोग्रस्त बच्चों में, गर्भवती महिलाओं में वृद्धजनों में, पक्षाघात (लकवा), एवं मोटापा से पीड़ित रोगियों में फिजियोथेरेपी के द्वारा आशातीत लाभ हो रहा है। फिजियोथेरेपी द्वारा शारीरिक क्षमता, अंगों एवं मांसपेशियों की कार्य क्षमता को उन्नत बनाने एवं बीमारी अंगों को ठीक करने हेतु उपचार तकनीक होती है। चाहे चोट की वजह से हो या बीमारी की वजह से या उम्र के हिसाब से शारीरिक कार्य क्षमता में आयी कमी को फिजियोथेरेपी में दुरूस्त किया जाता है ताकि शारीरिक क्षमता एवं शक्ति पुनः सामान्य हो सके। शारीरिक कसरत एवं इलेक्ट्रोथेरेपी द्वारा दो तरह से यह तकनीक मुख्य रूप प्रचलित है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेगें कि

- ⇒ फिजियोथेरेपी का अर्थ
- ⇒ फिजियोथेरेपी का इतिहास
- ⇒ फिजियोथेरेपी की उपयोगिता

13.3 फिजियोथेरेपी का अर्थ

शारीरिक कार्य क्षमता की गुणवत्ता को पहचानने एवं बढ़ाने हेतु चाहे अथवा रोगों के बचाव, उपचार एवं इलाज एवं दर्द निवारण एवं पुनर्वास (रीहेबिलिटेशन) की तकनीकों का अध्ययन फिजियोथेरेपी कहलाता है।

इस विज्ञान में शारीरिक कसरत द्वारा एवं तंत्रिका तंत्र को उद्दीप्त करने हेतु इलेक्ट्रोथेरेपी का उपयोग किया जाता है।

प्रिय पाठको फिजियोथेरेपी का अर्थ निम्न परिभाषां से स्पष्ट हो सकेगा।

W.H.O. के अनुसार :– विज्ञान की वह शाखा जिसमें चोट या उम्र की वजह से अंगों एवं शारीरिक जोड़ों एवं मांसपेशियों की कार्य क्षमता को जांचा परखा जाकर बढ़ाया जाता है एवं दर्द को कम किया जाता है।

वह तकनीक जो अंग पूर्ण रूप से कार्य ना करे तो मशीनरी द्वारा सहयोग करते हुये उन्हें कार्य करने हेतु तैयार (Rehabilitation) किया जाता है।

(1) फिजियोथेरेपी में निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जाता है :–

1. रोगी के चोटिल/काम न कर रहें अंग का परीक्षण करना
2. रोग की एवं कार्य क्षमता की तीव्रता का आंकलन करना
3. रोग एवं शारीरिक कमी की पहचान करना एवं निदान करना
4. रोग/ बीमार अंग/जोड़ों की कार्य क्षमता सुधारने हेतु इलाज करना
5. घर पर करने वाली तकनीकों की उचित सलाह देना

(2) फिजियोथेरेपिस्ट को निम्नानुसार में पांरगत होना चाहिये :–

1. शारीरिक बनावट की पूर्ण जानकारी
2. शरीर की समस्त अस्थियों (हड्डि़यों) की जानकारी
3. शरीर की समस्त मांसपेशियों की बनावट एवं कार्य की जानकारी
4. दर्द की जगह एवं कारणों की जानकारी
5. फिजियोथेरेपी में काम आने वाले उपकरणों की जानकारी
6. मरीज की आर्थिक हालत के अनुसार उपचार की उचित सलाह की जानकारी
7. शरीर के समस्त हड्डी के जोड़ों तथा उनके कार्यों की जानकारी
8. बच्चों, महिलाओं एवं वृद्धों के सामान्य रोगों की जानकारी
9. रोगों के सही समय पर सही इलाज की जानकारी
10. रोगी के प्रति मृदुभाषी होना एवं सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना आदि

(3) फिजियोथेरेपी की प्रेक्टिस का विस्तार निम्नानुसार है :–

- PROMOTION → स्वास्थ्य एवं रोगों के प्रति जागरूकता
- PREVENTION → बचाव के उपायों पर विशेष ध्यान
- INTERVENSION → रोगो के उपचार तकनीकों का उपयोग कर के रोग निवारण करना
- MODIFICATION → वातावरण, घर की स्थिति एवं कारकों को देखकर रोगी को सलाह देना

(4) फिजियोथेरेपी के चिकित्सक/तकनीशियनों का कार्य क्षेत्र :–

1. हॉस्पिटल
2. आर्थोपेडिक अस्पताल
3. वृद्धाश्रम
4. फिटनेस क्लब, जिम
5. प्राईवेट संस्थायें
6. स्कूल, कॉलेज
7. स्पोर्ट्स टीम
8. व्यायामशाला
9. विभिन्न फेक्ट्रियों एवं कंपनियों में

13.4 फिजियोथेरेपी का इतिहास

सर्वप्रथम सर पेरहेनरिकलिंग (जो कि स्वीडन देश मे जिम्नास्टिक के गुरू थे) ने फिजियोथेरेपी की शुरूआत सन् 1813 में की थी।

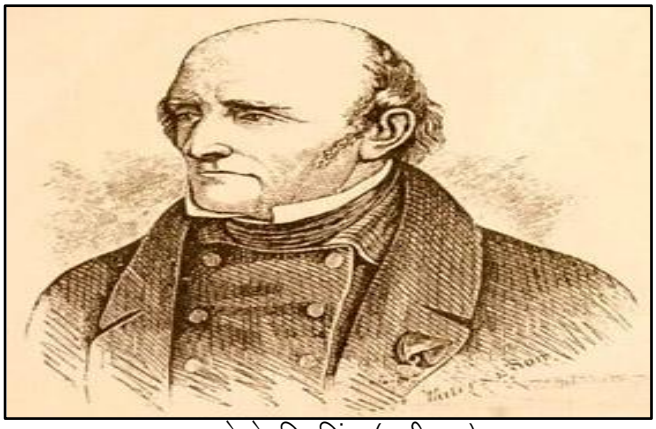

सर पेरहेनरिकलिंग (स्वीडन)

⇒ सन् 1894 में ग्रेट ब्रिटेन में चार्टेड सोसाइटी ऑफ फिजियोथेरेपी की स्थापना हुई।

⇒ सन् 1913 में न्यूजीलैण्ड में ओटागों यूनिवर्सिटी में फिजियोथेरेपी स्कूल पहली बार तथा खोला गया।

⇒ 19 वीं शताब्दी के अन्त में आधुनिक फिजियोथेरेपी की शुरूआत हुई।

⇒ 19 वीं शताब्दी के अन्त में अमेरिका मे भी मालिश एवं शारीरिक कसरत द्वारा ऑर्थोपेडिक सर्जन्स द्वारा रोगियों को फिजियोथेरेपी की सलाह दी जाने लगी।

⇒ सन् 1921 मे यूनाइटेड स्टेट में प्रथम 'फिजिकल थेरेपी रिसर्च' का प्रकाशन "PT Review" के नाम से हुआ

⇒ सन् 1921 में मेक मेरी मिलन द्वारा फिजिकल थेरेपी एसोसिएशन की स्थापना की गयी, जिसे आजकल "अमेरिकन फिजिकल थेरेपी एसोसिएशन" (APTA) कहा जाता है।

⇒ ऐसा माना जाता है कि सर हिप्पोक्रेट्स ने दर्द के निवारण हेतु शारीरिक थेरेपी की शुरूआत सन् 460 B.C. मे की थी।

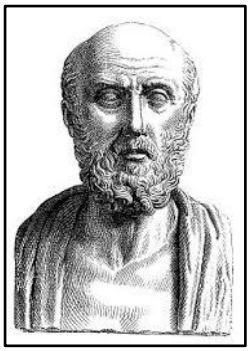

सर हिप्पोक्रेट्स (460 **B.C.)**

⇒ हाइड्रोथेरेपी की शुरूआत 460 B.C. मे ग्रीक देश मे हुई थी।

⇒ सन् 1917 से 1918 मे प्रथम विश्व युद्ध के बाद हमें ''रीहेबिलिटेशन थेरेपी'' के रूप में जाना जाता था।

⇒ मेरी मेकमिलन को "Mother of Physical Therapy" कहा जाता है।

⇒ 1950 से विभिन्न विदेशी अस्पतालों में फिजियोथेरेपी का विधि पूर्व इस्तेमाल होने लगा वर्तमान में विभिन्न मशीनरी उपकरणों इलेक्ट्रिक मशीनों एवं अन्य तकनीकों की सहायता से यह शाखा आज वैज्ञानिक रूप से भलिभांति विकसित हो चुकी है।

13.5 फिजियोथेरेपी की उपयोगिता

घुटने एवं कमर की फिजियोथेरेपी

* वर्तमान मे फिजियोथेरेपी की रोगों के बचाव, उपचार, दर्दनिवारण एवं पुनर्वास में बहुत उपयोगिता है।
* फिजियोथेरेपी द्वारा निम्न सामान्य तथा विशेष रोगों में प्रभाव निम्नानुसार है –
  - → कंधे का दर्द
  - → कमर दर्द
  - → पीठ दर्द
  - → घुटने एवं कूल्हे का दर्द
  - → मांसपेशियों का दर्द
  - → लकवाग्रस्त रोगियों का उपचार
  - → व्यायाम/शारीरिक बनावट आदि मे सहायता
  - → स्पोर्ट्स एवं जिम्नास्टिक की कसरतें
  - → वृद्ध जनों की शारीरिक क्षमता बढ़ाने में फिजियोथेरेपी
  - → गर्भवती महिलाओं हेतु फिजियोथेरेपी
  - → पोलियो रोग ग्रस्त बच्चो की फिजियोथेरेपी
  - → इलेक्ट्रोथेरेपी से विद्युतधारा, ताप या लाल रंग के प्रकाश से उपचार
  - → चुम्बकीय उपकरणों की सहायता से रोगों एवं दर्द का इलाज
  - → छाती एवं फेंफड़ों के रोगो मे फिजियोथेरेपी इत्यादि से कफ निकलवाना एवं श्वास लेने की विशेष तकनीक आदि

→ फ्रेक्चर/चोट लगने के बाद शारीरिक जोड़ों में कार्य क्षमता बढ़ाना एवं सूजन कम करवाना

इस तरह विभिन्न रोगों का इलाज, दर्द निवारण एवं शारीरिक कार्य क्षमता बढ़ाने हेतु फिजियोथेरेपी का अत्यन्त महत्वपूर्ण उपयोग है। जो अंग बेकार हो चुके हो (हाथ–पैर इत्यादि) उन्हें चलाने एवं दैनिक कार्य करने हेतु मशीनरी की सहायता से कार्य करने का प्रशिक्षण इसमें बताया जाता है।

प्रत्येक आर्थोपेडिक सर्जरी के बाद फिजियोथेरेपी की सलाह अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान समय में कमजोर हो चुके अंगों को वापस सुचारू रूप से कार्य करने की क्षमता प्राप्त करवाने हेतु फिजियोथेरेपी बहुत उपयोगी है।

13.6 फिजियोथेरेपी एवं मानव शरीर

शरीर परिभाषा – ''शीर्यते इति शरीरम्'' – विभिन्न ग्रन्थियों की पाक–क्रिया से तथा समयानुसार जिसका निरन्तर क्षरण होता रहे उसे शरीर कहते हैं।

शीर्यते हिनस्ति आत्मानम् इति शरीरम् ।

जो निरन्तर गति करने के कारण अपने आप को नष्ट करता है, उसे शरीर कहते हैं।

शरीर के अंग अवयव :– महर्षि चरक ने शरीर के अवयवों का 6 भागों में विभाजन करते हुए षडंग शरीर की व्याख्या की है। दो हाथ, दो पाँव, शिरोग्रीवा एवं मध्य शरीर इस प्रकार 6 अंग बताये हैं। सुश्रुत–संहिता में भी षडंग शरीर का इसी तरह का वर्णन है।

भाव प्रकाश में विस्तार से 8 अंगों में निम्नानुसार विभाजन किया गया है।

1. शिर
2. ग्रीवा
3. दोनों हाथ

4. वक्ष
5. उदर
6. पार्श्व
7. पृष्ठवंश
8. सक्थि (दोनों पाँव)।

उपर्युक्त आठ अंगों के वर्णन के साथ उनके उपांगों का भी वर्णन किया गया है :–

1. शिर – शिर के साथ ज्ञानेन्द्रियों का वर्णन है।
2. हाथ व पाँव के साथ अंगुलियों का।
3. वक्ष के साथ हृदय, फुफ्फुस एवं स्तनों का।
4. उदर के साथ यकृत, प्लीहा, क्लोम (फुफ्फुस), आन्त्र, बस्ति, मूत्राशय, वृक्क एवं गुदा का।
5. पृष्ठवंश में कटि एवं नितम्बादि का वर्णन किया है।

- शाखाओं के कार्य – शरीर की अनेक चेष्टाएँ जैसे – उठाना, पकड़ना, चलना, दौड़ना, वस्तुओं का आदान–प्रदान करना आदि कार्य चारों शाखाओं द्वारा किये जाते हैं।
- मध्य शरीर के कार्य – रक्त संचार, श्वास क्रिया, मूत्र निर्माण एवं पाचन आदि अनेक क्रियाओं का सम्पादन करने वाले सभी आशयों का आधार मध्य–शरीर है। जिस प्रकार किसी वृक्ष में पत्ते तथा उसकी टहनियों का आधार तना होता है, उसी प्रकार मध्य शरीर भी शिर एवं सभी शाखाओं का आधार है।
- शिर के कार्य – यह सभी प्रकार की आभ्यन्तर एवं बाह्य क्रियाओं की आधार भूमि है। श्वास, अन्नद्वार, मुख मण्डल संज्ञावाहक और चेष्टावाहक सभी नाड़ियों और ज्ञानेन्द्रियों का अधिष्ठान शिर है। यह ज्ञान का स्थान होने से उसे सर्वोत्तम बताया गया है।

(1) अस्थि – मनुष्य शरीर का आधार अस्थियाँ हैं। यदि इन अस्थियों को शरीर से बाहर निकाल दिया जाय तो शरीर एक मांस पिण्ड के समान रह जायेगा, जो किसी भी प्रकार की क्रिया करने में समर्थ नहीं होगा। शरीर के सभी अंग, प्रत्यंग, अवयव एवं अन्य सात धातुएँ इन्हीं अस्थियों पर आधारित होती हुई अपने–अपने कार्य करने में समर्थ होती हैं। मनुष्य की गति या चलने फिरने की क्रियाएँ भी इन अस्थियों के व्यवस्थित होने पर निर्भर करती हैं। इसी कारण शरीर की सप्त धातुओं में शरीर रचना की दृष्टि से अस्थियों का विशेष महत्त्व है। इन्हीं अस्थियों पर मांसपेशियाँ लगी हुई हैं, उन्हीं से ये अस्थियाँ ढकी रहती हैं।

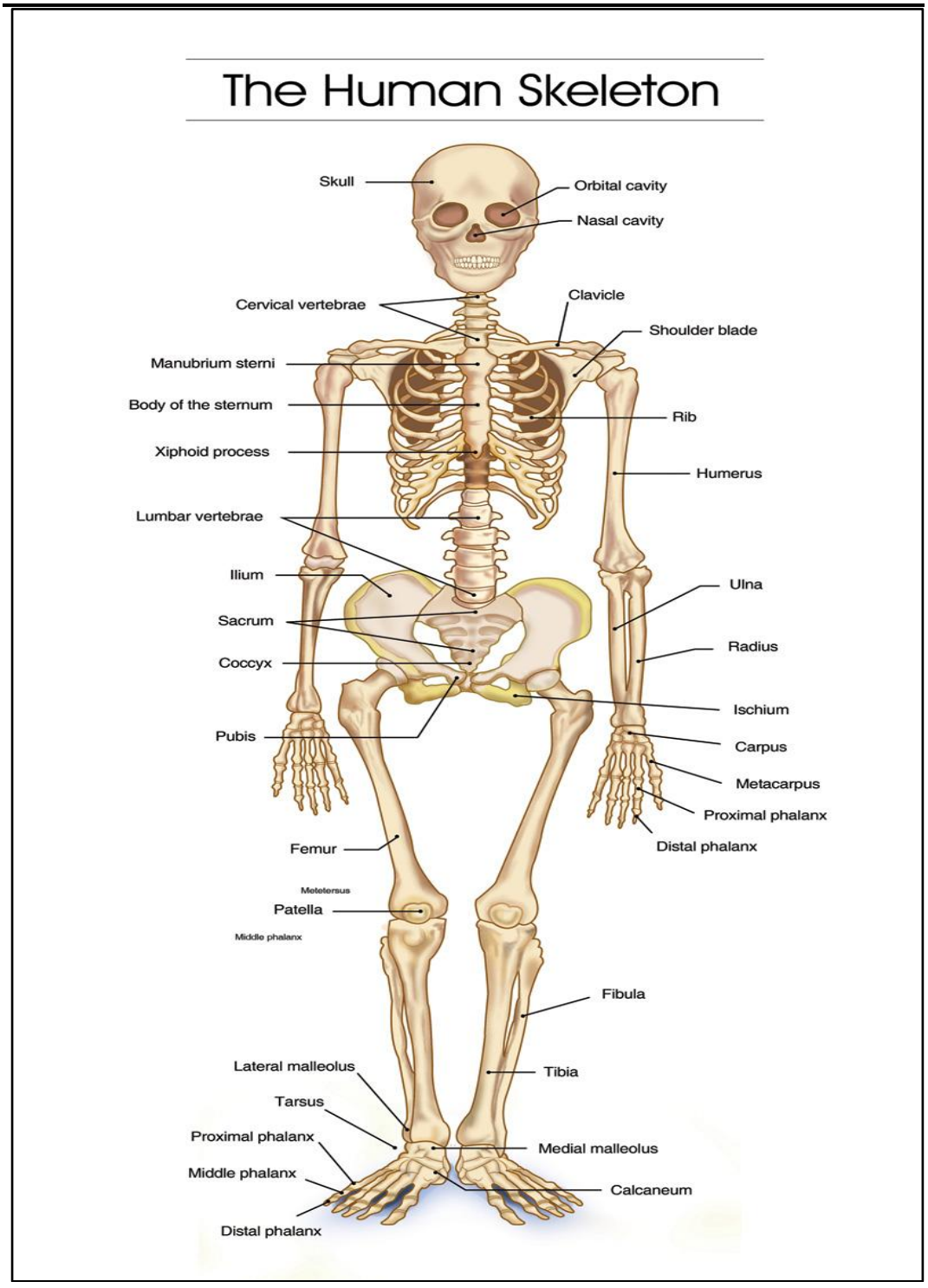
The Human Skeleton
Skull
Orbital cavity
Nasal cavity
Cervical vertebrae
Clavicle
Shoulder blade
Manubrium sterni
Body of the sternum
Rib
Xiphoid process
Humerus
Lumbar vertebrae
Ilium
Ulna
Sacrum
Radius
Coccyx
Ischium
Pubis
Carpus
Metacarpus
Proximal phalanx
Distal phalanx
Femur
Metetersus
Patella
Middle phalanx
Fibula
Lateral malleolus
Tibia
Tarsus
Proximal phalanx
Medial malleolus
Middle phalanx
Calcaneum
Distal phalanx

मानव अस्थि तंत्र

(I) अस्थि स्वरूप :– अस्थि कठिन और दृढ़ होती है किन्तु उसमें कुछ की स्थिति स्थापकता भी होती है। उसके भीतर में भरी रहती है और अस्थियों के पोषण के लिए रक्तनलिकायें भी होती है।

(II) अस्थि **(Bones)** के निम्नलिखित कार्य है :–

1. शरीर के अंगों को आश्रय देना
2. सन्धियों की गति का आधार
3. मांसपेशियों का आधार
4. शरीर की आकृति का धारक

(2) मांस धातु **(Muscular tissue)** :– मांस धातु की शरीर धारक विशिष्ट रचना को पेशी कहते हैं। शरीर में त्वचा के नीचे वसर और प्रावरणी से आच्छादित मांसपेशियों का स्तर होता है। यह धातु लाल वर्ण के लम्बे सूत्रों के गुच्छों से बना होता है। जिनमें संकोच का गुण होता है तथा जो बाहर की ओर संयोजक धातु द्वारा परस्पर आबद्ध होते हैं।

(i) क्रिया विज्ञान की दृष्टि से पेशियाँ दो प्रकार की होती है :–

A. स्वतन्त्र (Involuntary) → जिस पर हमारा नियंत्रण नहीं होता ।

B. परतन्त्र (Voluntary) → जिस पर हमारा नियंत्रण होता है।

(ii) सूक्ष्म रचना की दृष्टि से पेशियाँ चार प्रकार की होती है :–

1. रेखांकित (Striated)
2. अरेखांकित (Unstrained)
3. स्वच्छ (Plain)
4. हृदयिक (Cardiac)

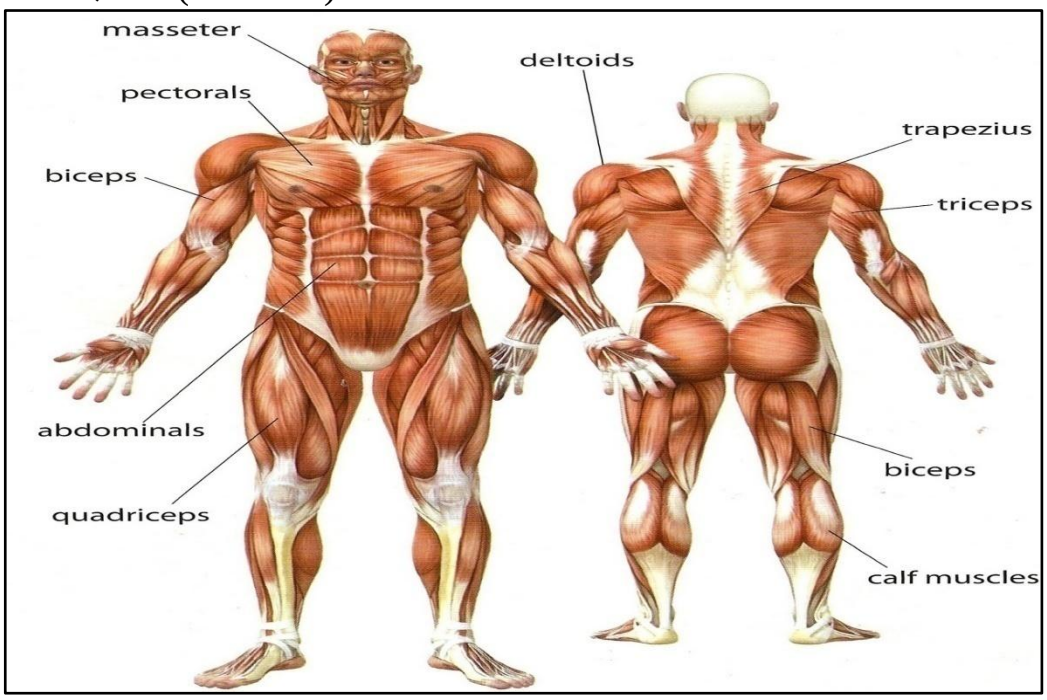

मांसपेशीय तंत्र

(iii) मांस धातु का कार्य :– मांस धातु का कार्य शरीर में गति उत्त्पन्न करना है। शरीर में जितनी चेष्टायें होती है, वे पेशियों के आधार पर ही क्रियान्वित होती हैं।

(iv) मांस पेशी

परिभाषा – शरीर में लाल रंग की रेशेदार आकुंचन प्रसरणशील जो धातु है, उसी मांस पिण्ड को मांसपेशी कहा जाता है।

उत्पत्ति – इसकी उत्पत्ति शरीर के मांस धातु से होती है।

अस्थियों के सन्धि–स्थान को दृढ़ करने एवं उनकी गति में सहायक होने से मांस पेशी का भी शरीर की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। शरीर के प्रत्येक अंगों और प्रत्यंगों में आच्छादित होकर सम्पूर्ण शरीर के अवयवों की रक्षा करती है। ये पेशियाँ शरीर के सभी प्रकार की चेष्टाओं में सहायक हैं। चेष्टावह नाड़ियाँ मस्तिष्क तथा सुषुन्मा काण्ड की सभी नाड़ियों की अन्तिम शाखाएँ पेशियों के बीच में प्रविष्ट करती हैं। अतः इनको अनुप्रसारणी नाड़ी (मोटर नर्व) कहते हैं। आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से पेशियों की शक्ति वायु है। इन सभी पेशियों की चेष्टाएँ शरीर के अंग विशेष के अनुसार होती हैं।

(v) पेशियों के कार्य –

''सिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धया शरीरिणाम्।
पेशीभिः सवृतान्यत्र बलवन्ति भन्त्यतः।।'' (सुश्रुत –5/49)

शरीरधारियों को शिराएँ, स्नायु, अस्थि, पर्व और सन्धियाँ ये सभी पेशियों से ढके रहते हैं, अतः ये बलवान् एवं उपयोगी हैं।

सामान्तः पेशी के कार्य मुख्य निम्नानुसार हैं –

1. शरीर में स्थित संधि, शिरा और स्नायुओं को पेशियाँ ढकती हैं।
2. संधियों को बाँधने का कार्य करती है।
3. पेशियाँ ही शरीर के स्वरूप को दर्शाने का कार्य करती है।
4. पेशियाँ आकुंचन का कार्य करती है।
5. पेशियाँ प्रसार का कार्य करती है।
6. शरीर के भीतरी अंगों की रक्षा करती है।
7. अस्थि आदि को घेर कर उनके कार्यों में सहायक होती है।
8. शरीर को बल प्रदान करने का कार्य करती है।
9. शरीर निर्माण में पहला आधार पेशियाँ होती हैं, जो मांस पिण्ड के रूप में दिखाई देती है।
10. पेशियों में स्प्रिंग जैसा संकुचन शीलता का विशेष गुण होता है।
11. अपनी स्थिति स्थानकता के कारण शरीर की नियमित क्रियाओं में सहायक होती है।
12. अस्थि सन्धि आदि अंगों की अपेक्षा पेशियों में कई गुना अधिक शक्ति होती है।
13. शरीर का उठना–बैठना, चलना–फिरना आदि क्रियाएँ पेशियों द्वारा होती हैं।
14. पेशियाँ रक्त संचार के कार्य में सहायक होती हैं।
15. इन्हीं पेशियों में सिरा, स्नायु, धमनी और कोशिकाओं का जाल बिछा रहता है, जिसके द्वारा शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है।
16. शरीर की स्वतंत्र और परतंत्र दोनो प्रकार की गतियों में सहायक होती है।
17. हृदय का स्पन्दन आदि पेशियों द्वारा सम्पन्न होता है।

(3) सन्धि

दो अस्थियाँ जब आपस में मिलकर जोड़ बनाती हैं, तो उन्हें सन्धि कहते हैं

गति के आधार पर प्रकार :–

(1) चेष्टावन्त – ऐसी सन्धियाँ जिसमें चेष्टा हो सकती हैं, अर्थात– अपने ही स्थान पर संकोच एवमं प्रसार, अन्दर की तरफ झुकाव, बाहर की तरफ झुकाव, घुर्णन आदि चेष्टा या गति होती है। ये चेष्टावन्त सन्धियाँ हैं, यथा – शाखा हनु. कटि की सन्धि।

(2) स्थिर संन्धि – दो अस्थियों के मेल की सन्धियाँ, जिसमें किसी प्रकार की गति नहीं होती वे स्थिर सन्धियाँ हैं।

(4) स्नायु **(TENDON)**

(1) परिभाषा – स्नायु शरीरगत श्वेत सूत्रमय उपधातु है, जो सन्धि और मांसपेशी के बन्धन में काम आती है।

(2) स्नायु उत्पत्ति :– जो सिरायें मेद के स्नेह भाग को ग्रहण कर लेती है, वे पककर स्नायु के रूप में प्राप्त होती हैं, क्योंकि सिरा तथा स्नायु में आयुर्वेद मतानुसार इतना ही अन्तर है कि सिराओं का पाक मृदु होता है तथा स्नायु पाक खर होता है।

(3) स्नायु का महत्त्व :–

नह्यस्थीनि न वा पेश्यो न शिरा न च सन्धयः।
व्यापादितास्तथा हन्युर्यथा स्नायु शारीरिणम् ।। (सुश्रुत शारीर 5/45)

1. सभी स्नायु देह में मांस, अस्थि, मेद और सन्धियों के बन्धन हैं, अतः शिराओं की अपेक्षा ये सुदृढ़ कहे गये हैं अतः इनका विशेष महत्त्व है।
2. स्नायुओं के पीड़ित स्थान में बहुत पीड़ा होती है। मोच इतनी सरल, बीमारी होते हुए भी महीनों तक तंग करती है और कभी तो जिस अंग में मोच आ जाती है, वह काम करना ही कम कर देता है। अतः स्नायु का अस्थि, सन्धि पेशी की अपेक्षा विशेष महत्त्व है।

(5) नाड़ी संस्थान :–

नाड़ी संस्थान के प्रधान रूप से दो कार्य देखे जाते हैं –

(i) शारीरिक सम्पूर्ण क्रियाओं का संचालन करना एवं

(ii) बाह्य परिस्थिति के अनुसार शारीरिक विविध चेष्टाओं में परिवर्तन आदि करना है। इसी कारण सम्पूर्ण नाड़ी संस्थान को दो भेदों के रूप में देखा जाता है। इसमें प्रथम प्रकार की नाड़ियाँ बाह्य जगत् के सभी प्रकार के ज्ञान, वेदना आदि के ज्ञान को केन्द्र स्थान तक पहुँचाती हैं उवं द्वित्तीय प्रकार की नाड़ियाँ नाड़ी केन्द्र से मिलने वाले सन्देश को सम्बन्धित अवयवों तक पहुँचाती हैं। अतः प्रथम प्रकार की नाड़ियों को संज्ञा ग्रहण करने से ''संज्ञावह'' (Sensory) तथा दूसरे प्रकार की नाड़ियों को ''चेष्टावह'' (Motor) कहा जाता है।

(iii) नाड़ी संस्थान विभाग – नाड़ी संस्थान को दो भागों में विभाजित किया गया है – पहला मस्तिष्क सोषुम्णिक नाड़ी संस्थान (सेरेब्रोस्पाइनल नर्व सिस्टम) एवं दूसरा स्वतंत्र नाड़ी संस्थान (आटोनोमस नर्वस सिस्टम) है। दोनों संस्थान एक दूसरे के सहयोग से ही कार्य करते हैं।

(iv) नाड़ी धातु :– सूक्ष्म दृष्टि से नाड़ी के मुख्यतः चार भाग होते हैं :–

1. नाड़ी कोषाणु (Neurons)
2. नाड़ी सूत्र (Nerve Fibers)
3. नाडयाधार कोषाणु (Nerve ganglia)
4. नाडयाधार कोषाणु (Neuro-motor unit)

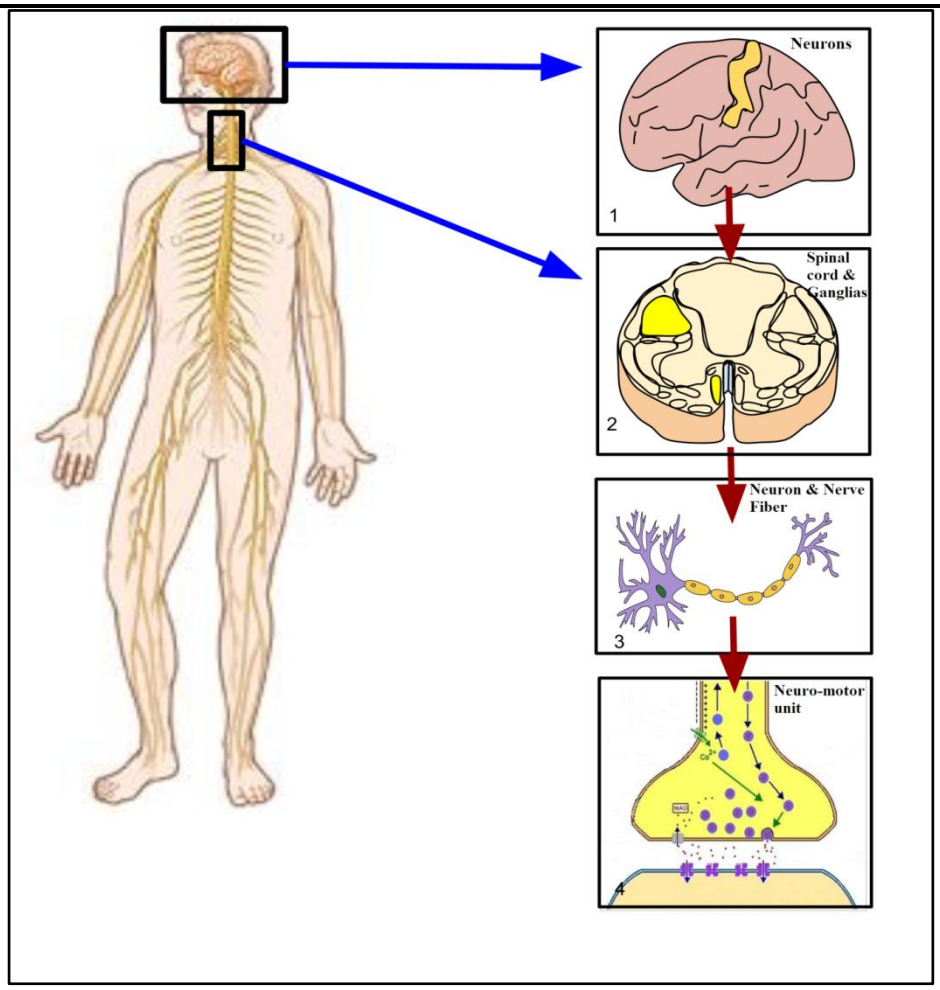

नाड़ी धातु

नाड़ी कोषाणु नाड़ी धातु के विशिष्ट अवयव है, जो मस्तिष्क, सुषुम्नाकाण्ड के धूसर भाग में एकत्र पाये जाते हैं। नाड़ियों पर जो गण्ड होते है, उनमें भी कुछ कोषाणु पाये जाते हैं। इन कोषाणुओं से निकलने वाले लम्बे–लम्बे प्रसर भागों को नाड़ीसूत्र कहते हैं। मस्तिष्क और सुषुम्ना का श्वेत भाग विशेषतः इन्हीं का बना हुआ है। नाडयाधार वस्तु केवल मस्तिष्क और सुषुम्ना शीर्ष में नाड़ी कोषाणुओं के बीच स्थित पाई जाती है।

(v) नाड़ियों की संख्या, नाम एवं कार्य –

1. घ्राण नाड़ियाँ = गंध ग्राही।
2. दृष्टि नाड़ियाँ = रूप दर्शन ग्राही।
3. नेत्र चेष्टनी नाड़ियाँ = नेत्र गोलकों में क्रिया कराना।
4. नेत्र चेष्टनी नाड़ियाँ = पुतलियों की चेष्टा कराना।
5. त्रिधारा नाड़ियाँ = इसमें प्रत्येक नाड़ी के तीन विभाग हैं, जिसके कारण मुख एवं शिर के स्पर्श की संज्ञा का ज्ञान कराना एवं चबाने की क्रिया कराना।
6. नेत्र चेष्टनी = नाड़ी फलकों की गति कराना।

7. मुख नाड़ियाँ = जिव्हा में रस का स्वाद कराना एवं मुखगत पेशियों में परिवर्तन लाना, साथ ही हृदय के भावों को चेहरे पर यही प्रकट करती है।
8. कर्ण नाड़ियाँ = शब्द ज्ञान कराना, अन्तःकर्ण में होने वाले परिवर्तन का धाम्मिलक तक सन्देश पहुँचाना।
9. कण्ठ रासनीनाड़ी = जिव्हाके पृष्ठ भाग में स्वाद का ज्ञान कराना एवं गले की पेशियों को कार्य हेतु प्रेरित कराना।
10. प्राणवहा नाड़ियाँ = इसे न्यूमौगैस्ट्रीक नर्व भी कहा जाता है। इनके द्वारा अन्न मार्ग, श्वास मार्ग एवं फुफ्फुस, हृदय, यकृत, प्लीहा आदि (पाचन सम्बन्धी अवयवों) की चेष्टाएँ मिलती हैं।
11. ग्रीवा नाड़ियाँ = यह प्राणदा नाड़ी एवं मन्य तथा पृष्ठच्छदा पेशियों में उत्तेजना देती है।
12. जिव्हामूलिनी नाड़ियाँ = यह प्राणदा नाड़ी एवं मन्य तथा पृष्ठच्छदा पेशियों में उत्तेजना देती है।

(vi) नाड़ी वर्णन – शिव संहिता एवं गोरक्ष संहिता में शरीर की समस्त नाड़ी संख्या को चार भागों में विभक्त किया गया है। त्रिविध नाड़ियाँ, दशाविध नाडियाँ, चतुर्दश नाड़ियाँ और कुल संख्या बहत्तर हजार अथवा साढ़े तीन लाख बताई गयी है।

(vii) त्रिविध नाड़ियाँ – यद्यपि दस नाड़ियाँ प्रमुख बताई गई हैं, उनमें भी इड़ा, पिंगला व सुषम्ना तीन प्रमुख बताई गई हैं।

मेरूदण्ड के वाम भाग में इड़ा (AORTA) नाड़ी स्थित है, इसका देवता चन्द्रमा है। मेरूदण्ड के दक्षिण भाग में पिंगला (VENA-CAVA) नाम की नाड़ी स्थित है, इसका देवता सूर्य है। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी (SPINAL CORD) है, जिसका देवता अग्नि है।

(viii) दशविध नाड़ी – गोरक्ष संहिता में वर्णित सभी नाड़ियों में से दस नाड़ियों का विशेष उल्लेख किया है तथा साथ ही इनकी स्थिति का परिचय भी दिया है। नासिका के बायें भाग में इड़ा, दायें भाग में पिंगला और इन दोनों के मध्य में सुषुम्ना स्थित है। बायें नेत्र में गन्धारी, दक्षिण में हस्तजिता, दायें कान में पूषा, बायें कान में यशस्विनी रहती है। अवलम्बुषा का स्थान मुख बताया गया है। लिंग देश में कुहू और मूल स्थान में शंखिनी इस प्रकार ये दस नाड़ियाँ है।

(ix) चतुर्दश नाड़ी विवरण –शिव संहिता में साढ़े तीन लाख नाड़ियों का नामोल्लेख किया है एवं इनमें भी चौदह नाड़ियों को प्रधान बताया है, जो इस प्रकार है –

1. सुषुम्ना
2. इड़ा
3. पिंगला
4. गन्धारी
5. हस्तजिता
6. कुहू
7. सरस्वती
8. पूषा
9. शंखिनी
10. पयस्विली
11. वारूणा
12. अलंबुषा
13. विश्वोदरी
14. यशस्विनी

जैसे चौदह लोकों में मेरू मानदण्ड है, वैसे ही शरीर की प्रमुख चौदह नाड़ियाँ मेरूदण्ड (पृष्ठवंश) के आश्रय करके क्रियाकलाप करती हैं।

कुल नाड़ी संख्या –

ऊर्ध्व मेढ्रादधो नाभेः कन्दोयोनिः खगाण्डवत्।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्तत्तिः।।

लिंग मूल से ऊपर नाभि के कुछ नीचे कंद के सदृश समस्त नाड़ियों का मूल (उत्पत्ति स्थान) पक्षी के अण्डे के समान आकार वाला है। इससे 72,000 नाड़ी ऊपर नीचे तिरछी होकर सर्वांग शरीर में व्याप्त हैं। 72,000 नाड़ियों में मुख्य 72 ही हैं, इनमें भी प्राणवाहिनी दस नाड़ियों को प्रधान बताया है।

13.7 सारांश

चिकित्सा क्षेत्र के समय में फिजियोथेरेपी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी शुरूआत 460 B.C. सन् से होकर वर्तमान मे इसका बहुत विस्तार हुआ है।

आजकल हर मल्टी स्पेशिलिटी अस्तपतालों एवं हड्डी के अस्पतालों में फिजियोथेरेपी की आवश्यकता मरीजों को होती है।

कमजोर अंगो को पुनः सामान्य कार्य करने लायक बनाना, दर्द व सूजन कम करवाना, मांसपेशियों की ऐंठन कम करना आदि इसके मुख्य लक्ष्य होते हैं। बालकों, महिलाओं, वयस्कों से लेकर वृद्ध जनों तक को इसकी आवश्यकता होती है। प्रस्तुत इकाई में स्वास्थ्य की दृष्टि से फिजियोथेरेपी का इतिहास उपयोगिता एवं मानव शरीर में नाड़ी तंत्र की कार्य पद्धति का सम सामयिक वर्णन किया गया है।

इकाई 13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

- → WORLD CONFEDERATION OF PHYSICAL THERAPY
- → AMERICAN PHYSICAL THERAPY ASSOCIATION – GUIDE TO PHYSICAL THERAPIST
- → WWW. PHYSIOTHERAPY-TREATMENT.COM
- → WWW.JBLEARNING.COM/SAMPLE/0763740691/40691_CH01_FINAL.PDF
- → INTRODUCTION TO PHYSICAL THERAPY BY PAGLIARULO, MI CHAE
- → HAND BOOK OF TEACHING FOR PHYSICAL THERAPIST BY SHEPARD, KATHERINE
- → PHYSICAL REHABILITATION, BY SUSAN SULLIVAN, T SCHMITZ
- → PRINCIPALS OF EXERCISE THERAPY, BY DENA GARDINER
- → PRACTICAL EXERCISE THERAPY, BYMARGARET HOLLIS, PHYL COOK
- → THERAPEUTIC EXERCISE: FOUNDATION & TECHNIQUES, BY CAROLYN KISNER, LYN ALLEN COLBY
- → CLAYTON'S ELECTROTHERAPY, BY FORSTER & PALASTANGA
- → TIDYS PHYSIOTHERAPY, BY STUART POTER

→ CASH'S TEXTBOOK OF ORTHOPAEDICS & RHEUMATOLOGY OF CARDIOVASCULAR & RESPIRATORY CONDITIONS
→ NEUROLOGY OF GENERAL MEDICAL & SURGICAL CONDITIONS FOR PHYSIOTHERAPISTS
→ DR. ANIL SONI - MEDICAL COLLEGE, KOTA
→ DR. HARSH, M.RAJDEEP - PHYSIOTHEYPIST-KOTA
→ DR. ANJANA SHARMA - OESTOPATH & PANCHKARMA-KOTA
→ DR. NITYANAND SHARMA - YOGA & AYURVEDA-KOTA
→ चरक संहिता – डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी
→ सुश्रुत संहिता – डॉ. अम्बिकादत्त शास्त्री
→ अष्टांग संग्रह – डॉ. रविदत्त त्रिपाठी
→ स्वस्थवृत्त विज्ञान – डॉ. सर्वेश कुमार अग्रवाल
→ पंचकर्म विज्ञान – वैद्या अंजना शर्मा
→ पातन्जल योगदर्शन – वैद्य नित्यानन्द शर्मा

इकाई 13.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. फिजियोथेरेपी की परिभाषा बताइये ?
2. फिजियोथेरेपी चिकित्सक को किन बिन्दुओं में पारंगत होना चाहिये ?
3. फिजियोथेरेपी की प्रेक्टिस का विस्तार पर संक्षेप में लिखिये ?
4. फिजियोथेरेपी की आवश्यकता कहां–कंहां होती है ?
5. फिजियोथेरेपी का इतिहास बताइये ?
6. फिजियोथेरेपी की वर्तमान समय में उपयोगिता पर लिखिये ?
7. फिजियोथेरेपी वृद्धावस्था में उपयोगी है, वर्णन कीजिये ?

इकाई–14 फिजियोथेरेपी के भाग–इलेक्ट्रोथेरेपी तथा एक्सरसाइज थेरेपी

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 इलेक्ट्रोथेरेपी एवं उसके भाग
14.3 (A) अल्ट्रासाउण्ड थेरेपी
14.3 (B) इन्टरफेरेंशियल थेरेपी
14.3 (C) शोर्ट वेव थेरेपी
14.3 (D) लेजर थेरेपी
14.4 एक्सरसाइज थेरेपी (व्यायाम)
14.5 इलेक्ट्रोथेरेपी एवं एक्सरसाइज थेरेपी के लाभ
14.6 सारांश
14.7 निबंधात्मक प्रश्न
14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम फिजियोथेरेपी में काम आने वाली दो मुख्य विधियों का अध्ययन करेंगे।

1. **इलेक्ट्रोथेरेपी**
2. **एक्सरसाइज थेरेपी**

फिजियोथेरेपी विभाग में किसी भी रोग का उपचार काम आने वाले विभिन्न उपकरणों, तकनीकों एवं अन्य सुविधाओं का अध्ययन इस इकाई में करेंगे। ''इलेक्ट्रोथेरेपी में विद्युतधारा, ताप, अल्ट्रासाउण्ड तंरगों एवं लेजर द्वारा दर्द एवं सूजन कम करके उपचार करके शारीरिक जोड़ों एवं अंगों की कार्य क्षमता बढ़ाई जाती है।'' ''एक्सरसाइज थेरेपी में शरीर की मांसपेशियों के व्यायाम द्वारा अंग विशेष का दर्द/ सूजन कम करके उसे अधिक दक्ष बनाया जाता है।'' इस प्रकार फिजियोथेरेपी इलेक्ट्रोथेरेपी एवं एक्सरसाइज थेरेपी का स्वास्थ्य प्राप्ति में पूर्ण महत्त्व है।

14.2 उद्देश्य

इलेक्ट्रोथेरेपी एवं उसके भाग
अल्ट्रासाउण्ड
इन्टरफेरेंशियल थेरेपी
शोर्ट वेव थेरेपी
लेजर थेरेपी
एक्सरसाइज थेरेपी (व्यायाम)
इलेक्ट्रोथेरेपी एवं एक्सरसाइज थेरेपी के लाभ

14.3 इलेक्ट्रोथेरेपी एवं उसके भाग

इलेक्ट्रोथेरेपीः–परिभाषाः–

(1) विद्युत धारा का इस्तेमाल इलाज के रूप में करना इलेक्ट्रोथेरेपी कहलाता है।

(2) चिकित्सा क्षेत्र में इलेक्ट्रोथेरेपी उसे कहते है जिसमें विद्युतधारा को शरीर में उपकरणों की सहायता से प्राप्ति कर रोगों का उपचार दर्द में कमी करके एवं तंत्रिका तंत्र को उद्दीप्त करके इलाज किया जाता है।

इतिहासः– प्रथमतया सन् 1767 लन्दन में मिडलसेक्स हॉस्पिटल में शारीरिक इलाज के रूप में विद्युत धारा का उपयोग लिया गया।

सन् 1855 में सर गुलॉम डूचेन ने विद्युत धारा का उपयोग मांसपेशीय संकुचन में बताया।

सन् 1999 में यह ज्ञात हुआ कि शरीर में विद्युत धारा प्रवाह से शारीरिक घाव बहुत जल्दी भरते हैं।

सन् 2000 में ''डच मेडिकल काउंसिल'' ने इलेक्ट्रोथेरेपी का इस्तेमाल विस्तृत रूप सेकिया।

इलेक्ट्रोथेरेपी का वर्गीकरणः– मुख्यतया इलेक्ट्रोथेरेपी के कारकों के आधार पर इसे तीन तरह से बांटते हैः–

इलेक्ट्रिक उद्दीपन कारक निम्नानुसार पाँच प्रकार के होते हैं।

(A) TENS - TRANSCUTANEOUS ELECTRICAL NERVE STIMULATION

(B) IFT - INTER FERENTIAL THERAPY

(C) NMES - NEURO MUSCULAR ELECTRIC STIMULATION

(D) HVPGS- हाई वॉल्टेज पल्स गेलवेनिक स्टीमुलेशन

(E) MCT - MICRO CURRENT THERAPY

Neuro-Muscular Electronic Stimulator

TENS Instrument

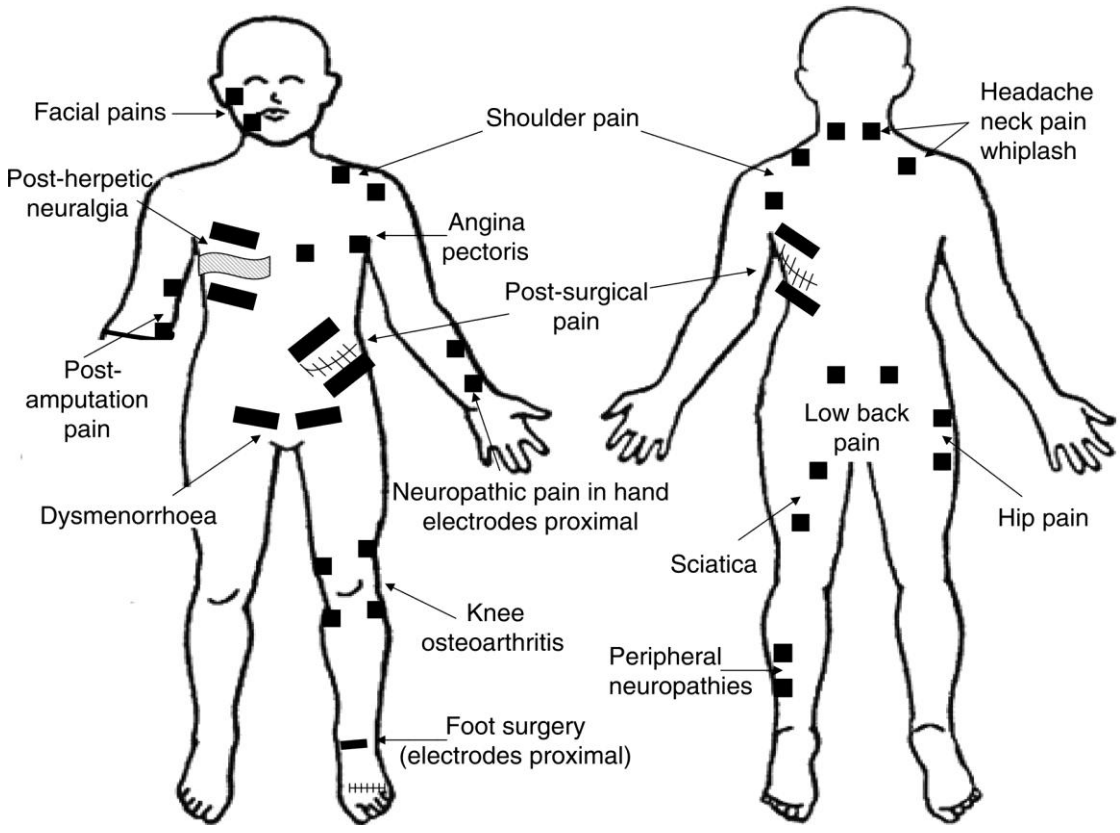

Trans coetaneous Nerve Stimuli – Machine & Uses

2. इलेक्ट्रोथेरेपी थर्मल कारक के निम्नानुसार पाँच प्रकार की होती हैं।

A. IRR - इन्फ्रारेड इर्रेडिएशन
B. SWD - SHORT WAVE DIA THERAPY
C. LASER ELECTRO THERAPY
D. COLD & HOT THERAPY
E. MWD - MICRO WAVE DIATHERAPY

IRR - इन्फ्रारेड इर्रेडिएषन

3. Non-Thermal Agent:- ये निम्नानुसार दो प्रकार के होते हैं।

(A) अल्ट्रासाउण्ड
(B) चुम्बकीय थेरेपी

चुम्बकीय थेरेपी देते हुये

चार मुख्य इलेक्ट्रोथेरेपी देने की महत्त्वपूर्ण विधियाँ निम्नानुसार हैं:–

(A) अल्ट्रासाउण्ड थेरेपी

(B) इन्टर फेरेंशियल थेरेपी

(C) शोर्ट वेव थेरेपी

(D) लेजर थेरेपी

14.3.1 अल्ट्रासाउण्ड थेरेपी–सामान्य तथा मनुष्य का कान 20 हर्ट्स से 20 किलोहर्ट्स तक की आवृत्ति सुन सकता हैं। 20 किलोहर्ट्स से ज्यादा आवृत्ति तंरगों को अल्ट्रासाउण्ड कहते हैं। जब दर्द, सूजन एवं घाव वाली जगह पर अल्ट्रासाउण्ड मशीन द्वारा तरंगें डाली जाती है तो वहां के परमाणु उद्दीप्त होते है एवं थोड़ी उष्णता पैदा होती है। सोडियम एवं पोटेशियम आयनों का Threshold माप कम होता है तो वहां की मांसपेशियां एवं तंत्रिका तंत्र उद्दीप्त होकर अच्छा कार्य करने लगती है एवं अंग जल्दी ठीक होने लगता है। इस हेतु अल्ट्रासाउण्ड तरंग पैदा करने वाली मशीन एवं डिलिवरी हेतु ट्रांसड्यूसर की आवश्यकता पड़ती है।

अल्ट्रासाउण्ड थेरेपी की मशीन

अल्ट्रासाउण्ड थेरेपी के लाभः–

(1) इस तकनीक से घाव जल्दी भरते हैं।

(2) दर्द कम होता है।

(3) सूजन कम होती है।

14.3.2 इन्टरफेरेंशियल थेरेपी

इसमें 50 हट्र्स फेराडे विद्युतधारा 100 cm^2 चमड़ी के क्षेत्रफल के हिसाब से दी जाती है एवं वॉल्टेज कम दिया जाता है। इस तकनीक मे दो जगह अलग–अलग आवृत्ति एक 4000 हट्र्ज एवं एक 3900 हट्र्ज की धाराएँ एक साथ शरीर में प्रवाहित करायी जाती है। इससे एक औसत AMF (Amplitude Modulaton Frequency) उत्पन्न होता हैं जो कि अपने प्रभाव से दर्द एवं सूजन कम करता हैं।

इन्टरफेरेंषियल थेरेपी देते हुये

इन्टरफेरेंशियल थेरेपी के लाभः–

1. रोगी के सम्बन्धित अंग का दर्द (Pain) दूर होता है।
2. रोगी के सम्बन्धित अंग की सूजन (शोध) दूर होती है।
3. सुप्त तंत्रिका तंत्र सजग होता है।
4. मांसपेशियाँ उद्दीप्त होकर स्वस्थ होती है।

इन्टरफेरेंशियल थेरेपी मशीन एवं प्रयोग

14.3.3 शोर्ट वेव थेरेपी (Short Wave Therapy)

''सामान्यतः 2 से 100 मेगा हट्र्ज की इलेक्ट्रोमेग्नेटिक रेडिएशन तरंगों को शोर्ट वेव थेरेपी कहते है।'' यह तरंगें शरीर में प्रवाहित करने के बाद यह शरीर में ताप उत्पन्न करती है जिससे अदंरूनी सिकाई होती है।

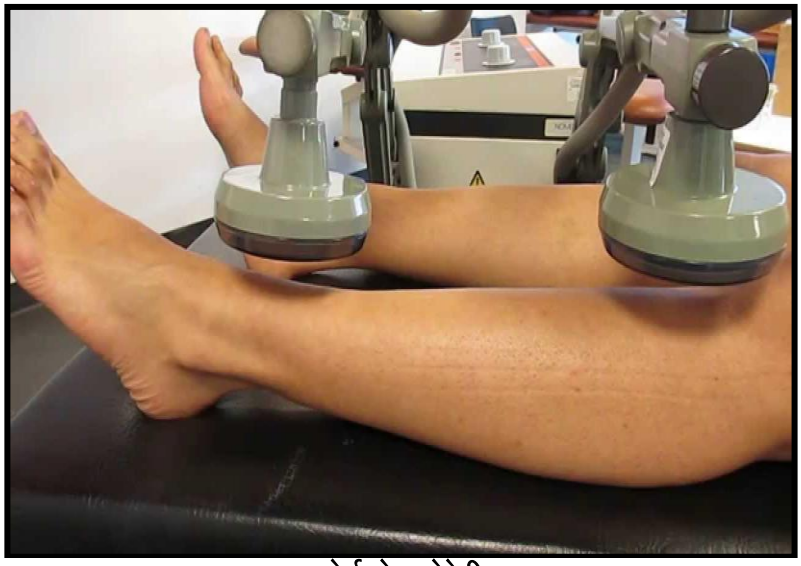

शोर्ट वेव थेरेपी

शोर्ट वेव थेरेपी (Short Wave Therapy) के लाभः–

- ♦ ताप के कारण घाव जल्दी भरते है।
- ♦ मांसपेशियों की अकड़न कम होती है, दर्द कम होता है।
- ♦ जोड़ों की कार्य क्षमता पुनः सामान्य होने लगती है। इस तकनीक से
- ▪ Deep Heating अर्थात् अन्दरूनी सिकाई होती है।

सावधानियाँः– शोर्ट वेव थेरेपी निम्न लोगों को नहीं देना चाहियेः–

- * दुबले पतले मरीज को ।
- * अत्यधिक बीमार रोगी को ।
- * हृदय रोगियों को ।
- * जिनके शरीर में Pace-Maker या मेटल का कोई चीज डली हुई हो।
- * थेरेपी देने से पहले सोने चांदी के जेवर खुलवाने चाहिये ।
- * बुखार के रोगी इत्यादि को।

14.3.4 लेजर थेरेपी

LASER - LIGHT AMPLIFICATION STIMULATED EMISSION OF RADIATION

लेजर चार तरह की होती हैः–

(1) Class -I
(2) Class –II
(3) Class -III
(4) Class –IV

लेजर मशीन

लेजर मशीन द्वारा थैरेपी देते हुये

सामान्यतया Laser Class-I ही उपयोग लिया जाता है। लेजर थेरेपी देते वक्त रोगी एवं चिकित्सक दोनों को आँखें एवं कान ढककर रखने चाहिये। Laser Class-Ist से भी तापमान उत्पन्न होता है एवं दर्द, सूजन कम होकर रोगी को आराम मिलता है।

14.4 एक्सरसाइज थेरेपी (व्यायाम थेरेपी)

विज्ञान की वह शाखा जिसमें मांसपेशीय एवं हड्डी तंत्र के कार्यो को पुनः सामान्य अवस्था में लाया जाने का एवं बीमारी या चोट की वजह से हुए दर्द का उपचार किया जाता है उसे एक्सरसाइज थेरेपी कहते हैं।

विशिष्ट उपचार उद्देश्य हेतु विशिष्ट कसरत द्वारा उपचार करवाना ''एक्सरसाइज थेरेपी'' कहलाता है।

इसके अन्य नाम निम्न हैः–

- Activity based therapy
- Activity Based Recovery therapy
- न्यूरो थेरेपी
- पुनःस्थापन थेरेपी (Rehabilitation)
- व्यायाम पद्धति

इसमें विभिन्न जोड़ों एवं मांसपेशियों की कसरते करवाई जाती है ताकि वह जोड़ या मांसपेशी सामान्य कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर सके। एक्सरसाइज थेरेपी से एक तरफ मांसपेशी हष्टपुष्ट होती है और दूसरी तरफ उसके कार्य करने की शक्ति भी बढ़ती है अर्थात् मांसपेशी की शक्ति एवं वजन (Mass) भी बढ़ता है।

एक्सरसाइज थेरेपी

प्राचीन काल में यह कार्य पहलवान इत्यादि लोग करते थे उदाहरण के तौर पर :–
पैर की मोच निकालना
उतरे हुए कंधे के जोड़ को पुनः सामान्य अवस्था मे लाना
उतरे हुए कूल्हे के जोड़ (Dislocation) को पुनः सही करना
गर्दन एवं कमर की ऐंठन व दर्द की मालिश द्वारा इलाज करना
एक्सरसाइज थेरेपी मुख्यतया तीन प्रकार की होती है–

* मांसपेशीय सुड़ौलता बढ़ाने हेतु।
* मांसपेशीय अकड़न/जकड़न दूर करने हेतु
* मांसपेशीय शरीर को लचीला बनाने हेतु।
* मांसपेशियों की शक्ति बढ़ाने हेतु।

सामान्यतया एक्सरसाईज थेरेपी की निम्न व्यावहारिक विधियाँ –

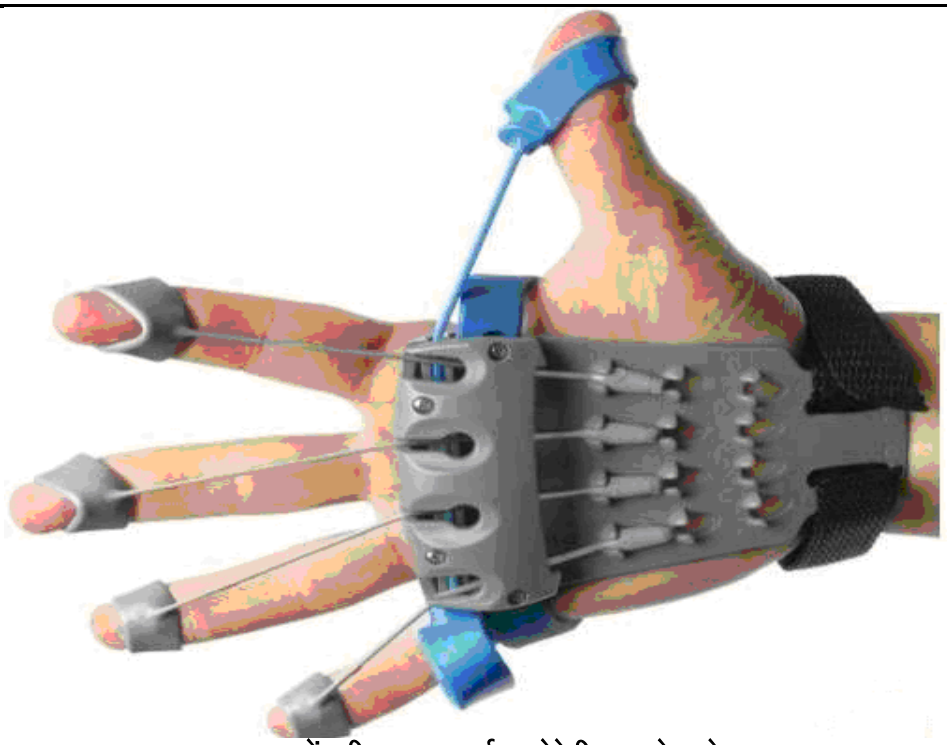

हाथों की एक्सरसाईज थेरेपी कराते हुये

1. मेनुअल थेरेपी (Manual Therapy)
2. हाइड्रोथेरेपी (पानी में कसरत करवाना)
3. मालिश थेरेपी (Massage Therapy)
4. अन्य एक्सरसाईज थेरेपी

मेनुअल थैरेपी के विकसित रूप निम्नानुसार है :–

- एक्यूप्रेशर
- व्यायाम
- Craniosacral Therapy
- डोम तरीका
- जोइंट मेनिपुलेशन
- मेरूदण्ड मेनिपुलेशन
- मायो थेरेपी
- ओस्टियोपेथिक मेनपुलेशन
- पेशाब एवं मल के अनियंत्रण को सही करने की व्यायाम थेरेपी
- लिम्फ नलिकाओं के रूकने से आई सूजन को कम करने की थेरेपी
- बर्फ/ठण्डे पानी से सिकाई इत्यादि
- गर्म पानी से सिकाई इत्यादि

मेनुअल थेरेपी के चार घटकः–

* मालिश
* मोबिलाइजेशन
* मेनिपुलेशन
* शिक्षा

कंधे की मेनिपुलेशन थेरेपी देते हुये

मालिश मे चिकित्सक अपने हाथों द्वारा विशेष तकनीक से रोगित जोड़ो या मांसपेशियो पर मालिश करते है। आजकल मालिश हेतु विभिन्न इलेक्ट्रोनिक उपकरण, वाइब्रेटर इत्यादि भी इस्तेमाल किये जा रहे है।

मोबिलाइजेशन में जोड़ो को या शरीर के मांसपेशीय–हड्डी सिस्टम को खींचना, धक्का देना, जोर डालना, मोड़ना, घुमाना आदि किया जाता है ताकि उनका लचीलापन सामान्य हो सके व कार्यक्षमता बढ़ सके एवं दर्द / सूजन भी कम हो सके।

मेनिपुलेशन मे शरीर के रोगित जोड़ों पर दबाव बनाया जाता है। यह दबाव हाथों द्वारा या विशिष्ट उपकरण की सहायता से बनाया जाता है ताकि जोड़ का दर्द/सूजन कम हो एवं वह सामान्य कार्य कर सके।

शिक्षा में रोगी को घर पर करने लायक कसरतें बताई जाती है एवं विशिष्ट उपकरणों की जानकारी एवं उनके इस्तेमाल की जानकारी दी जाती है।

हाइड्रोथेरेपीः– सन् 2004 मे राष्ट्रीय कम्लीमेन्ट्री एवं इन्टीग्रेटिव हेल्थ सेन्टर ने मेनुअल थेरेपी/एक्सरसाइज थेरेपी को Complementary & Alternative Medicine (CAM) के रूप में स्वीकार किया । पानी मे कसरत करने से जोर कम लगाना पड़ता है इसलिए जो रोगी थोड़ा सा भी शारीरिक तनाव (व्यायाम के समय) सहन नहीं कर सकते उनको पानी के अन्दर विशिष्ट व्यायाम आदि की सलाह दी जाती है ताकि उनका व्यायाम/कसरत करने का आत्मविश्वास बढ़ सकें। गुनगुने पानी में व्यायाम करने से रक्त संचरण सही होता है, जिससे अन्दरूनी सूजन एवं घाव भरने में शीघ्र सहायता मिलती है।

14.5 इलेक्ट्रोथेरेपी एवं एक्सरसाइज थेरेपी के लाभ निम्नानुसार हैः–

1. दर्द निवारण – दर्द में आराम मिलता है।
2. जोड़ों की क्रियाशीलता (Activity) बढ़ती है।

घुटने के दर्द में इलेक्ट्रोथेरेपी देते हुये

3. लकवे, पक्षाघात एवं एट्रोफी के मरीजों की मांसपेशीय शक्ति बढ़ाने एवं रक्त संचरण सही करने में होता है।
4. बीमार जोड़ की कार्य करने की क्षमता एवं चालित क्षमता (Mobility) बढ़ती है।
5. रक्त संचरण बढ़ने से घाव जल्दी भरते हैं।
6. त्वचा एवं मांसपेशीय चोट सही होने में मदद मिलती है।
7. सूजन (Swelling) कम होती ळें
8. रक्त की धमनियाँ, शिराएँ एवं अन्य नलिकाएं स्वस्थ होती है एवं उनका लचीलापन सही होने से उच्च रक्तचाप आदि सही होने में सहायता मिलती है।
9. मूत्र एवं मल द्वार अनियंत्रण रोगों में सहायता मिलती है।
10. तंत्रिका तंत्र (Lymphatic drainage) प्रवाह सही होने से सूजन कम होती है।
11. मांसपेशीय अकड़न, जकड़न दूर होती है।

कंधे के दर्द हेतु इलेक्ट्रोथेरेपी देते हुये

12. शारीरिक सुड़ौलता आती है।
13. जोड़ो के ढीले टेन्डन एवं लिगामेन्ट मजबूत होते हैं।
14. चलते फिरते समय शरीर का संतुलन सही बनता हैं।
15. शारीरिक कार्य करने की शक्ति बढ़ती है।
16. शरीर में स्फूर्ति आती है।

एडी के दर्द में इलेक्ट्रोथेरेपी देते हुये

इकाई 14.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में फिजियोथेरेपी के दोनों भागों का वर्णन किया गया हैं। मुख्यतया– (1) इलेक्ट्रोथेरेपी (2) मेनुअल थेरेपी। इलेक्ट्रोथेरेपी में विद्युतधारा, अल्ट्रासाउन्ड, शोर्टवेव, लेजर आदि से उपचार किया जाता है। वहीं मेनुअल थेरेपी में चिकित्सक अपने हाथों से मालिश एवं उपकरणों की मदद से रोगी का उपचार करता है।

जोड़ों, एवं मांसपेशियों/हड्डियों के दर्द, सूजन, अकड़न आदि कम करने, मांसपेशियों एवं जोड़ों के कार्यो को सामान्य करने में बहुत सहायता मिलती है। विभिन्न फिजियोथेरेपी केन्द्रों पर इनके उपकरण एवं उपयोग के तरीके सिखाये जाते हैं। इस इकाई में स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु इलेक्ट्रोथेरेपी एवं मेनुअल थेरेपी की उपयोगिता के बारे में संक्षेपतः वर्णन किया गया हैं।

इकाई 14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- WWW. ELECTRO THERAPY. ORG
- WWW. APTA. ORG
- ELECTRO THERAPY – PURE CARE INC.
- CRITICAL REVIEW OF USE OF ELECTRO THERAPY BY R. CARNIEL & R. SAGGINI
- ELECTRO THERAPY – REHP OPREMA
- BASIC ELECTRO THERAPY COURSE EBOOK PDF
- INTRODUCTION TO PHYSIC THERAPY BY PAGLIARULO, MICHAEL
- WORLD CONFEDERATION OF PHYSICAL THERAPY
- PHYSICAL REHABILITATION, BY SUSAN SULLIVAN, T SCHMITZ
- PRINCIPALS OF EXERCISE THERAPY, BY DENA GARDINER
- PRACTICAL EXERCISE THERAPY, BY MARGARET HOLLIS, PHYL COOK
- THERAPEUTIC EXERCISE: FOUNDATION & TECHNIQUES, BY CAROLYN KISNER, LYN ALLEN COLBY
- CLAYTON'S ELECTROTHERAPY, BY FORSTER & PALASTANGA
- TIDYS PHYSIOTHERAPY, BY STUART POTER
- CASH'S TEXTBOOK OF ORTHOPEDICS & RHEUMATOLOGY OF CARDIOVASCULAR & RESPIRATORY CONDITIONS
- NEUROLOGY OF GENERAL MEDICAL & SURGICAL CONDITIONS FOR PHYSIOTHERAPISTS

- DR. ANIL SONI- MEDICAL COLLEGE, KOTA
- DR. HARSH, M.RAJDEEP- PHYSIOTHEYPIST-KOTA
- DR.ANJANA SHARMA-OESTOPATHY& PANCHKARMA-KOTA
- DR. NITYANAND SHARMA -YOGA & AYURVEDA-KOTA (RAJASTHAN)

इकाई 14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. इलेक्ट्रोथेरेपी के कितने भाग होते है ?
2. इलेक्ट्रोथेरेपी के बारे में विस्तार से समझाइयें ?
3. फिजिकल थेरेपी को कितने भागों में बॉटा गया है ?
4. कारकों के आधार पर इलेक्ट्रोथेरेपी को कितने भागों मे बॉटा है, मुख्य बिन्दु लिखिये ?
5. इलेक्ट्रोथेरेपी देने के मुख्य तरीकों पर विस्तार से समझाइये ?
6. अल्ट्रासाउण्ड थेरेपी के बारे में लिखियें ?
7. शोर्टवेव थेरेपी व लेजर थेरेपी के बारे में लिखिये ?
8. एक्सरसाईज थेरेपी क्या होती है व यह थेरेपी देने के तरीकों के नाम लिखिये?
9. मेनुअल थेरेपी पर प्रकाश डालिये ?
10. इलेक्ट्रोथेरेपी के लाभ एवं उपयोग लिखिय`?
11. मेनुअल थेरेपी के लाभ व उपयोग लिखिये ?
12. इलेक्ट्रोथेरेपी एवं मेनुअल थेरेपी में अन्तर स्पष्ट कीजिये ?

इकाई 15 रोगों में फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग –1

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 तंत्रिका तंत्र सामान्य परिचय
15.4 तंत्रिका तंत्र संबधी रोगों में अनुप्रयोग
15.5 अस्थियों एवं मांसपेशीय रोगों में अनुप्रयोग
15.6 खेलकूद/स्पोर्ट्स मे फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
15.7 वक्ष (छाती) के रोगों में फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
15.8 सारांश
15.9 निबंधात्मक प्रश्न
15.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.1 प्रस्तावना

आज की लाइफ स्टाइल में किचन में खड़े होकर काम करना, खड़े होकर बफर में भोजन करना, आरामदायक कुर्सियों पर बैठना, गद्देदार बिस्तरों पर सोना, गलत तरीके से उठना–बैठना एवं चलना आदि के कारण ''पोश्चर रिलेटेड प्रोबलम्'' होकर एड़ी, घुटना, कमर, कंधा, गर्दन आदि में दर्द–सूजन जैसे रोग हो जाते हैं। इन सर्वाइकिल रोगों में, स्लिपडिस्क आदि में फिजियोथेरेपी बहुत ही लाभदायक चिकित्सा पद्धति हैं।

फिजियोथेरेपी विद्या का हम दैनिक जीवन में बेहत अनुप्रयोग कर सकते है, जैसे कि तंत्रिका तन्त्र रोगों में, अस्थि (हड्डी) रोगों में मांसपेशीय रोगों में, खेलकूद/स्पोर्ट्स ट्रैनिंग एवं रोगोंउपचार में, वक्ष (छाती) के कुछ विशिष्ट रोगों के उपचार आदि में।

''फिजियोथेरेपी तकनीक द्वारा दर्द कम करने एवं चोटिल अंग को जल्दी स्वस्थ करने में बहुत उपयोगी है।''

इकाई 15.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेंगें कि
तंत्रिका तंत्र संबंधी रोगों मे अनुप्रयोग
हड्डी एवं मांसपेशीय रोगों मे अनुप्रयोग
खेलकूद/स्पोर्ट्स मे अनुप्रयोग
वक्ष (छाती) के रोगों में अनुप्रयोग

15.3 तंत्रिका तंत्र (Nervous System) सामान्य परिचय

परिचय (Introduction)–

तंत्रिका तंत्र हमारे शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण Controlling तन्त्र हैं। जो शरीर की सभी ऐच्छिक तथा अनैच्छिक क्रियाओं को नियंत्रित करता है।

तंत्रिका तंत्र का मुख्य कार्य संवेदनाओं (Impulses) को प्राप्त करना, उनका संचय (Store) करना तथा उन्हें मुक्त (Release) करना हैं। इसी–से सारे कार्य संपादित होते हैं।

तंत्रिका तंत्र बहुत सारी तंत्रिका कोशिकाओं से मिलकर बना होता हैं, ये कोशिकाएँ सामूहिक रूप से न्यूरोन (Neuron) कहलाती हैं।

चिकित्सा विज्ञान की वह शाखा जिसमें तंत्रिका सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है, उसे न्यूरोलॉजी (Neurology) कहते हैं।

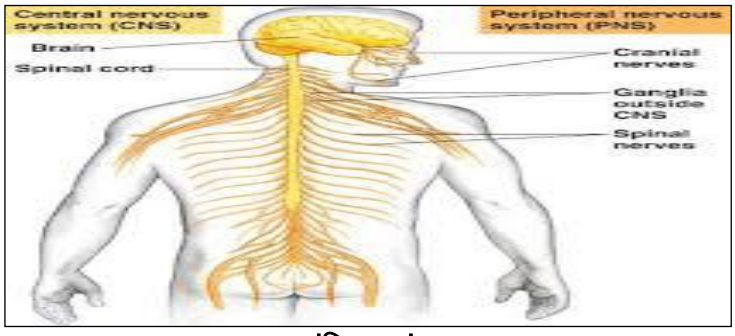

तंत्रिका तंत्र

(1) न्यूरोन (NEURON)-

न्यूरोन की संरचना (Structure of Neuron):– न्यूरोन में निम्नलिखित तीन संरचनाएँ पाई जाती है।

1. कोशिका काय (Cell body)
2. पार्श्व तन्तु (Dendrites)
3. अक्ष तन्तु (Axon)

1. कोशिका काय (Cell body):-

1 यह न्यूरोन का सबसे प्रथम भाग होता हैं। इसे सोमा (Soma) भी कहते हैं।

2 यह न्यूरोन का अनियमित आकार का बड़ा भाग होता हैं।

3 कोशिका काय के बीच में एक संरचना पाई जाती है। जिसे केन्द्रक (Nucleus) कहते हैं।

कार्य (Function):- कोशिका काय पार्श्वतन्तु तथा अक्ष तन्तु के लिए प्रोटीन का निर्माण करती है।

2. पार्श्व तन्तु (Dendrites) :-

1 यह न्यूरोन का द्वितीय भाग होता है।

2 इसकी संरचना पेड़ से निकली शाखाओं जैसी होती है। (Branch Tree like)

3 इन शाखाओं को प्रवर्ध कहते हैं।

कार्य (Function):- पार्श्व तन्तु एक ऐन्टिना (Antennae) की तरह कार्य करते है जिनका मुख्य कार्य आने वाले आवेगों (Impulses) को प्राप्त करना हैं।

3. अक्ष तन्तु (Axon):-

1 यह न्यूरोन का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग होता है।

2 यह कोशिका काय से निकलने वाली एक लम्बी संरचना हैं।

3 इसे तंत्रिकाक्ष भी कहते हैं। लम्बाई लगभग 0.1 m.m. से 2 m.m. (Millimeters) होती हैं।

4 अक्षतन्तु (Axon) के चारों तरफ एक पतली झिल्ली पायी जाती है, जिसे एक्सोलेमा (Axolemma) कहते हैं।

5 अक्षतन्तु में एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं की श्रृंखला (Series of cells) पायी जाती है जिसे स्वान सैल (Schwann cell) कहते हैं।

6 स्वान सैल परिसरीय तंत्रिका तंत्र (Peripheral nervous system) की Supporting cells होती हैं।

7 अक्ष तन्तु एक माइलिन परत द्वारा ढका होता है, बीच–बीच में यह माइलिन परत विभक्त हो जाती है, जिसे नोड ऑफ रेनवियर (Node of ranveir) कहते हैं।

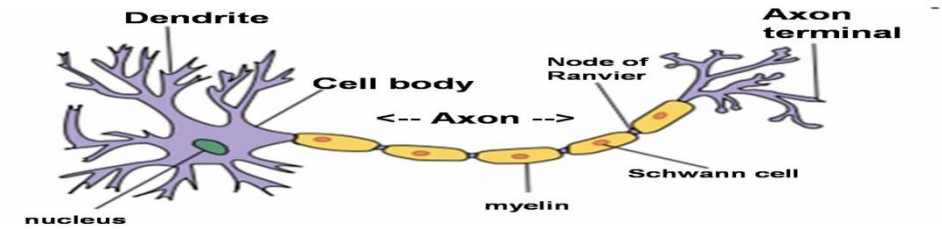

न्यूरोन एवं इसकी संरचना

कार्य (Function):- का मुख्य कार्य सूचनाओं (Information) को एक तंत्रिका कोशिका से अन्य तंत्रिका कोशिका तक पहुँचाना होता है।

(2) परिसरीय तंत्रिका तंत्र (PERIPHERAL NERVOUS SYSTEM)

परिचय (Introduction):-

परिसरीय तंत्रिका तंत्र में दो प्रकार की तंत्रिकाएँ सम्मिलित है जो कि मस्तिष्क तथा स्पाइनल कोर्ड से निकलती हैं। जो कि निम्न प्रकार से हैं।

1. कपालीय तंत्रिकाएँ (Cranial nerves) = 12 जोड़ी (Pairs)
2. स्पाइनल तंत्रिकाएँ (Spinal nerves) = 31 जोड़ी (Pairs)

(I) कपालकीय तंत्रिकाएँ (Cranial nerves):-

1 मस्तिष्क से 12 जोड़ी कपालकीय तंत्रिकाएँ निकलती हैं।

2 ये तंत्रिकाएं संवेदी (Sensory),प्रेरक (Motor) तथा मिश्रित प्रकार की होती हैं।

3 इन सभी तंत्रिकाओं का अपना–अपना विशिष्ट कार्य है।

1. ऑलफैक्टरी नर्व (Olfactory nerve):-

उद्भव – यह तंत्रिका नाक से निकलती हैं।

कार्य – यह सुगन्ध या दुर्गन्ध का ज्ञान कराती है।

2. ऑप्टिक नर्व (Optic nerve):-

उद्भव – यह आँख के रेटिना से निकलती हैं।

कार्य– यह देखने की क्रिया से सम्बन्धित हैं।

3. ऑक्युलोमोटर नर्व (Coulometer nerve):-

उद्भव – यह आइरिस (Iris),तिर्यक पेशी तथा नेत्र गोलक (Eyeball) को आपूर्ति करती है।
कार्य– यह नेत्र गोलक की पेशियों को उत्तेजित करने तथा नेत्र गोलक की गति से सम्बन्धित हैं।

4. ट्रॉक्लियर नर्व (Trochlear nerve):-

उद्भव – यह नेत्र गोलक की सुपीरियर तिर्यक पेशी को आपूर्ति करती है।
कार्य– नेत्र गोलक की गति से सम्बन्धित हैं।

5. ट्रॉइजेमिनल नर्व (Trigeminal nerve):-

उद्भव– यह त्वचा, चेहरे तथा जबड़े की पेशियों को आपूर्ति करती है। तीनों तंत्रिकाओं से मिलकर बनी होती हैं।

1 ऑफ्थेल्मिक नर्व (Opthalmic nerve)
2 मेक्सिलरी नर्व (Maxillary nerve)
3 मेण्डीबुलर नर्व (Mandibular nerve)

कार्य – यह चेहरे के स्पर्श एवं चेहरे की मांसपेशियों एवं चबाने के कार्य से संबंध रखती है।

6. एब्ड्यूसेन्ट नर्व (Abducent nerve):-

उद्गम – नेत्र गोलक की लेटरल रेक्ट्स पेशी को आपूर्ति करती हैं।
कार्य – नेत्र गोलक की गति से संबंध रखती हैं।

7. फेशियल नर्व (Facial nerve):-

उद्गम– यह जीभ, लार, ग्रन्थियों, चेहरे की पेशियों को आपूर्ति करती है।
कार्य – स्वाद का ज्ञान, लार का स्त्रावण, चेहरे की मुद्रा से संबंध रखती है।

8. ऑडिटरी या वेस्टिब्यूलोकॉक्लियर नर्व (Auditory or Vestibulochelar nerve):-

उद्गम – यह आंतरिक कर्ण के वेस्टीब्यूल/कोकलीया को आपूर्ति करती है।
कार्य– श्रवण क्रिया से संबंध रखती हैं।

9. ग्लॉसोफेरिन्जियल नर्व (Glossophatyngeal nerve):-

उद्गम – यह ग्रसनी, जीभा का पश्च भाग, टॉन्सिल तथा लार ग्रन्थियों को आपूर्ति करती है।
कार्य– स्वाद का अनुभव, निगलने की क्रिया, लार के स्त्रावण से संबंध रखती है।

10. वेगस नर्व (Vagus nerve):-

उद्गम – ग्रसनी, स्वरयंत्र, ट्रेकिया, इसोफेगस, आमाशय, आंत्र, पित्ताशय आदि के आन्तरिक अस्तरों को आपूर्ति करती है।
कार्य– इन सभी अंगों से सम्बन्धित पेरासिम्पेथेअिक प्रभाव डालती है।

11. एसेसरी नर्व (Accessory nerve):-

उद्गम– कोमल, तालु, ग्रसनी, फेफड़े, ट्रेपीजियस पेशी, स्टर्नोक्लीडोमेस्टाइड पेशियों को आपूर्ति करती हैं।
कार्य– सिर की, कन्धे की गति तथा वाणी से संबंध रखती है।

12. हाइपोग्लॉसल नर्व (Hypoglossal nerve):-

उद्गम – जीभ की आन्तरिक/बाह्य पेशियों तथा हॉयड अस्थि की पेशियों को आपूर्ति करती है।

कार्य– बोलने एवं निगलने से संबंधित है।

(II) स्पाइनल तंत्रिकाएँ (Spinal nerves)-

ये संख्या में 31 जोड़ी होती हैं, जो कि स्पाइनल कोर्ड से निकलती है , जो निम्नानुसार है–

सर्वाइकल तंत्रिकाएँ (Cervical Nerves)	=	08 जोड़ी
थॉरेसिक तंत्रिकाएँ (Thoracic Nerves)	=	12 जोड़ी
लम्बर तंत्रिकाएँ (Lumbear Nerves)	=	05 जोड़ी
सेक्रल तंत्रिकाएँ (Sacral Nerves).	=	05 जोड़ी
कॉक्सिजिअल तंत्रिकाएँ (Coccygeal Nerve)	=	01 जोड़ी

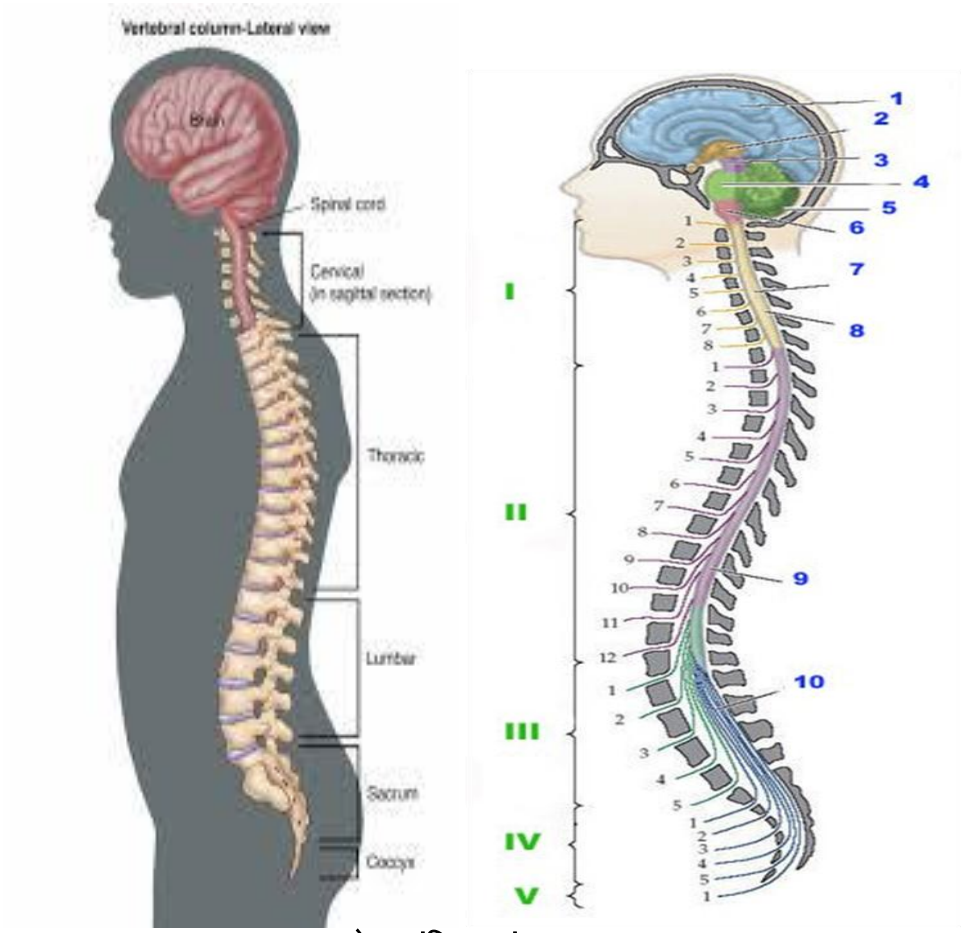

मेरू तंत्रिका तंत्र

ये तंत्रिकाएँ भी कपालकीय तंत्रिकाओं की भांति संवेदी, प्रेरक तथा मिश्रित प्रकार की होती हैं।

(III) क्लिनिकल नोट्स (CLINICAL NOTES) :-

1. मैनिन्जाइटिस (Meningitis):-

मस्तिष्क तथा मेरूरज्जु को आच्छादित करने वाली झिल्लियों में संक्रमण तथा शोध उत्पन्न हो जाना मैनिन्जाइटिस या मस्तिष्क आवरण शोध कहलाता हैं, यह जीवाणु, विषाणु या अन्य सूक्ष्मजीवों के संक्रमण से उत्पन्न होता हैं।

2. एनसिफेलाइटिस (Encephalitis):-

मस्तिष्क ऊतक अथवा मस्तिष्क पेरेनकायमा में शोध उत्पन्न होना एनसिफेलाइटिस सा मस्तिष्क शोध कहलाता है।

3. एपीलेप्सि (Epilepsy):-

मस्तिष्क कोशिकओं में इलेक्ट्रीकल Activity बढ़ने से उत्पन्न आक्षेपकों के दौरें एपिलेप्सि या मिर्गी की अवस्था कहलाती हैं। इसमें भावनाएँ तथा व्यवहारिक स्थिति में असामान्य परिवर्तन होता हैं।

4. स्ट्रोक (Stroke):-

मस्तिष्क के किसी भाग में रक्त आपूर्ति में कमी आ जाना जिससे ऑक्सीजन नहीं मिलती और परिणामस्वरूप मस्तिष्क कोशिकाएँ नष्ट हो जाती है उस अवस्था को स्ट्रोक कहते है।

5. ब्रेन ट्यूमर (Brain tumer):-

मस्तिष्क के किसी भाग में कोशिकाओं की असामान्य वृद्धि ब्रेन ट्यूमर कहलाती हैं। यह दो प्रकार की होती है– Benign & Malignant

6. पारकिन्सन रोग (Parkinson's disease):-

यह तंत्रिका तंत्र की Progressive degenerative disease है जिसमें रोगी का माँसपेशियों तथा शरीर संतुलन पर नियंत्रण नहीं रहता हैं। उसकी दैनिक क्रियाएँ धीरे–धीरे कम हो जाती है जिसको लगातार Physiotherapy तथा Medication द्वारा थोड़ा बहुत सुधारा जा सकता हैं।

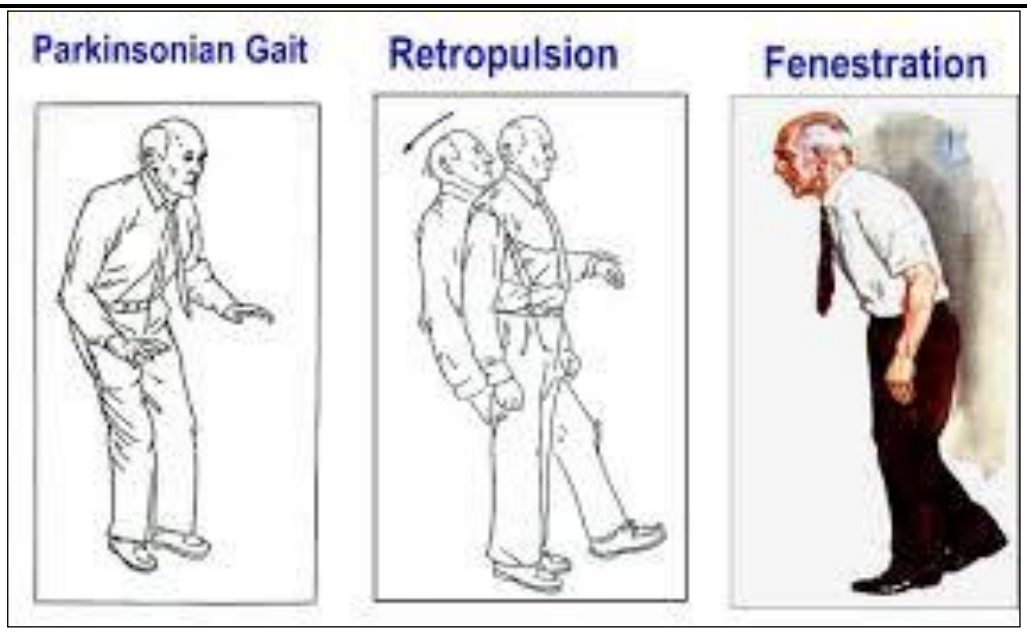

पारकिन्सन रोग

7. **डिमेन्शिया (Dementia):-**

भूलने की बीमारी को डिमेन्शिया कहते हैं।

Loss of memory is dementia

तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण संज्ञाये

शब्दावली (GLOSSARY)–

ओटोनोमिक नर्वस सिस्टम (Autonomic nervous system)	स्वायत्त तंत्रिका तन्त्र।
एक्सोन (Axon)	कोशिका काय से निकलने वाला प्रवर्ध जो आवेगों को दूर ले जाता हैं।
ब्रेन (Brain)	मस्तिष्क।
क्रेनियल नर्व (Craninal nerves)	कपालीय तंत्रिकाएँ जिनकी संख्या 12 जोड़ी होती है।
सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम (Central nervous system)	केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र।
ड्यूरा मेटर (Dura matter)	मस्तिष्क एवं सुषुम्ना रज्जु को ढकने वाली बाहरी परत।
मेनिन्जीज (Meninges)	मस्तिष्क एवं सुषुम्ना रज्जु को ढकने वाली परत। (ड्यूरामेटर, एराक्नाइड मेटर, पाया मेटर)
माइलिन शीथ (Myelin sheath)	तंत्रिकाओं के अक्ष तंतुओं के चारों ओर की परत।

न्यूरोलेमा (Neurolemma)	तंत्रिका तंतुओं को चारों ओरबंद करने वाली एक पतली झिल्लीनुमा
न्यूरोन (Neuron)	तंत्रिका कोशिका।
पेरीफ्रल नर्वस सिस्टम (Peripheral nervous system)	परधिय/परिसरीय तंत्रिका तंत्र।
पाया मेटर (Pia mater)	मस्तिष्क एवं सुषुम्ना को चारों ओर से ढकने वाली भीतरी परत।
स्पाइनल कोर्ड (Spinal card)	सुषुम्ना रज्जु/मेरूरज्जु।
स्पाइनल नर्वज (Spinal nerves)	मेरूरज्जु से निकलने वाली 31 जोड़ी तंत्रिकाएँ।
सिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम (Sympathetic nervous system)	अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र

15.4 तंत्रिका तंत्र संबधी रोगों में फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

(1) Neurology Rehabilitaion न्यूरोलोजी पुनर्वास :–

रिहेबिलिटेशन (पुनर्वास) का अर्थ होता है कि क्षति (Injury) होने के पश्चात इस अंग का पुनः सामान्य कार्य क्षमता आंशिक/या पूरी तरह पूर्व स्थिति में लाने का प्रयास।
इसमें निम्न तथ्यों पर काम किया जाता है : –
पक्षाघात/ Brain Stroke के पश्चात्
अंगों के सामान्य कार्य करने का उपचार
Speech Therapy
तंत्रिंका तंत्र की Injury (क्षति) होने उपरान्त देखभाल

न्यूरोलोजिकल रोग :–

* Brain Hemorrhage
* Brain injury
* Cerebral पाल्सी
* मल्टीपल स्क्लेरोसिस
* पार्किंसन बीमारी
* मेरूरज्जू Spinal cord क्षति
* पक्षाघात
* मोटर न्यूरोन बीमारी
* एट्रोफी
* तंत्रिका क्षति (Cranial pasy)
* Gait imbalance (चलने में परेशानी)
* अर्ध पक्षाघात– Hemiplegia

* साइटिका (Sciatica)
* न्यूरोपेथी
* चक्कर आना BPPV (Benign positional Vertigo)
* कार्पल टनेल सिण्ड्रोम
* पोलियों
* जबड़े का दर्द Trigeminal Neuralgia
* कॉडा इक्विना
* कोनस मेड्यूलेरिस

Electrotherapy in Lumber Spondylitis

निम्न लक्षण आने पर Neurological Rehabilitating की आवश्यकता पड़ती है।

- चक्कर आना
- चलने में सन्तुलन नहीं बनना
- चलने में कमजोरी महसूस होना
- हाथों में कम्पन्न एवं कमजोरी एवं सुन्नपन का आना
- 6 मिनट तक भी पैदल नहीं चल पाना
- बोलने में परेशानी होना
- चेहरे की असामान्यता (Asymmetry) होना
- शरीर का भारी लगना व सुन्न होना
- चलते समय पैरों से बार–बार चप्पल निकल जाना
- भोजन निगलनें में परेशानी होना
- आवाज का बदल जाना
- मल–मूत्र की संवेदना का पता नहीं लग पाना।

मानव मस्तिष्क में मेरूरज्जू (Spinal Card) के 31 जोड़े अग्र एवं पश्च तंत्रिका तंतु तंत्रिकाएं एवं मोटर न्यूरोन यूनिट होती हैं। मानव मस्तिष्क में अरबों ''न्यूरोन'' होते हैं जो समूह में विभिन्न काम करते हैं। यहाँ सारे तंत्रिका तंत्र के Centers (केन्द्र) होते हैं। इसमें रक्त की सूक्ष्म रक्तवाहिनी का फटना या थक्का जम जाने पर संबंधित Area को रक्त संचार नहीं मिलने पर Oxygen एवं ग्लूकोज नहीं मिलता तो वह हिस्सा काम करना बन्द कर देता है और उससे संबंधित अंग एवं मांसपेशियाँ भी कार्य करना बंद कर देती है। मस्तिष्क ही सारे शरीर की संवेदनाएं ग्रहण कर वापस सुचारू प्रतिक्रिया एवं कार्य करने का आदेश देता है।

मेरूरज्जू रीढ़ की कशेरूकाओं (Vertebra) के बीच के छिद्र में रहती है। यह सारे शरीर की तंत्रिकाओं के बारीक तन्तुओं के दाब, ताप, स्पर्श, दर्द एवं स्वचालित तंत्रिका तंत्र के तन्तुओं को मस्तिष्क तक Connect करने का माध्यम है। यहा तंत्रिका तंन्तु संघनित रूप से होते हैं एवं थोड़ी सी चोट से संबंधित अंग प्रभावित हो कर काम करना बंद कर देते है। इसे Spinal cord injury कहते है।

अन्य तंत्रिकाएँ Chord एवं सामान्य एकल तंत्रिका के रूप में पूरे शरीर में अंगों एवं माँसपेशियाँ को जाती है। इनमें क्षति होने पर उससे सम्बन्धित (Supplied Organ) मांसपेसियां काम करना बंद कर देती है।

केन्द्रीय तंत्रिकाएं (Cranial Nerves) – यह संख्या में 12 होती है जो आंख, नाक, कान, गला, चेहरा, जबड़े की Muscles, गले की मांसपेशियां, बोलने की मांसपेशियों को Supply देती है। इनमें विकृति आने पर संबंधित अंग निष्क्रिय हो जाता है। मांसपेशियाँ पांचों ज्ञानेन्द्रियों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

न्यूरो–रीहेबिलिटेशन – Phyrotherapy में निम्न प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैः–

- Gait Training – चलने के लिए कूल्हें एवं घूटने की कसरत चलने का तरीका बदलना
- Balance Training – हाथ पैर, कूल्हे एवं घुटने की कसरत प्रक्रिया जिसमें चलतेंसमय

सम्पूर्ण संतुलन बनाए रखना सिखाया जाता है।

मल्टीपल स्क्लेरोसिस

पार्किनसन्स बीमारी

मस्तिष्काघात (Brain injury)

जोड़ों की क्षति (Joint injury)

चालित यंत्र की सहायता Mobility Aids :-

Walker

Walker

Cruches, Wheel Chair, लकड़ी का सहारा (Stick Support)

(Stick Support)

इन की सहायता से व्यक्ति को चलना सिखाया जाता है, ताकि वह अपनी दैनिक दिनचर्या के सामान्य कार्य कर सके।

पैरों की फिजियोथेरेपी कराते हुए

Hydrotherapy:- सूजन वाले हाथ पैर Stiff joint एवं ऐठन युक्त मांसपेसियों वाले अंगों को गर्म पानी में डूबों कर रखना।

आमवात (Osteoarthrits), पार्किनसन बीमारी, गठिया बाय।

लकवा ग्रस्त अंग हाथ, पैर, पंजा इत्यादि की कसरतें ताकि उनमें कुछ संवेदनाएं एवं मोटर–पॉवर कुछ हद तक आ सके।

लकवा ग्रस्त पैरों की फिजियोथेरेपी कराते हुए

लकवा ग्रस्त (Paralysis) अंग एवं मांसपेशियों में electrotherapy द्वारा विद्युत ऊर्जा का संचार कर कुछ लिमिट तक अंग के कार्य करने की क्षमता का पुनः विकास (पुनर्वास) करने की कोशिश की जाती हैं।

मालिश द्वारा भी कमजोर पडे हाथों पैरों एवं अन्य मांसपेसियों की कार्यक्षमता पुनः लौटाने का प्रयास किया जाता हैं।

Facial palsy

जो जोड़ कड़क पड़ चुके हैं इनकी Range of Motion अर्थात अस्थि जोड़ का लचीलापन वापस पुर्नवासित करने का प्रयास किया जाता है।

न्यूरोजनित दर्द में आराम के लिए अन्य कसरत मालिश, दबाव तकलीफ, Traction इत्यादि, एवं लेजर, अल्ट्रासाउण्ड़ की सहायता से दर्द कम करने का उपचार किया जाता है।

आवाज न निकलने पर Speech Therapy व गले की अन्य मांसपेशियों द्वारा आवाज निकलने की प्रक्रिया समझाई जाती है।

भोजन नहीं निगल सकने पर भोजन निगलने की विशेष प्रक्रिया समझाई जाती है।

15.5 अस्थियों (हड्डी) एवं मांसपेशीय रोगो में फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

Orthopedic Phygotherapy:- हड्डी एवं मांसपेशियों के युग्म से Musculo-Skeleton सिस्टम बनता है एवं इसमें Injury/क्षति/फ्रेक्चर/दर्द/जकड़न/ऐंठन इत्यादि होने पर दर्द एवं अन्य जोड़ कार्य क्षमता विकार हो जाते है। ये सामान्यतया निम्नानुसार है–

मोच

Sprain

Spasm (ऐंठन)

ऑपरेशन पश्चात् सूजन

फ्रेक्चर पश्चात् दर्द
गर्दन एवं पीठ के हिस्सों में दर्द
रिकेट्स (फक्क रोग)
Genu-Valgum- घुटने के पास आना
Genu-Varum- घुटने दूर हो जाना (bow legs) जैसे कि रिकेट्स में होता हैं
घूटना/कुल्हा प्रत्यारोपण पश्चात् विकार
कुबड़ निकालना
रीड़ की हड्डी की अकड़न
Bamboo-Spine (Ankylosing Spondylitis)
Cevical Spondylosis
स्लिप डिस्क
Osteoporosis

धुटनों की फिजियोथेरेपी कराते हुए

Musculo-Cutaneous System में मांसपेशी, हड्डी, टेन्डन, उपास्थि, Ligament एवं साईनोवियम इत्यादि होती है। इनमें से किसी में भी विकार आने से दर्द, Joint Immobility, जकड़न इत्यादि हो जाती है। जिन्हें Orthopedic Physiotherapy से ठीक करते है। इनमें Physiotherapy चिकित्सक को समस्त मांसपेशियों एवं जोड़ो की गति एवं कार्य याद होने चाहियें एवं उनका परीक्षण करना भी आना भी जरूरी है।

निम्न बिन्दुओं का ध्यान का रखना जरूरी है :–

- कौनसा Joint प्रभावित है।
- कौनसी मांसपेशी कमजोर है।
- कौनसी जगह पर दर्द है।
- कौनसी तंत्रिका प्रभावित है।
- किस Movement पर दर्द होता है।
- सूजन इत्यादि है या नही।
- कौन–कौन से कार्य प्रभावित है।
- संबंधित Joint अंग का तापमान कितना है।

- विपरित साइड़ के सामान्य अंग से बीमार अंग की सापेक्षता
- परीक्षण, अवलोकन, हाथों से दबाकर/छूकर चैक करना।
- दर्द होने पर रोगी के चेहरे की तरफ ध्यान रखना जिससें कि चेहरे के हावभाव से दर्द का पता लग सके।
- कूबड़ आदि हड्डी विकास विकृति अवलोकन।
- रीढ़ की हड्डी की सामान्य/विकृत अवस्था कर परीक्षण।

अनुप्रयोग उदाहरणः–

(1) गर्दन के रोग :– गर्दन में स्थित रीढ़ की हड्डी का परीक्षण गर्दन को आगे (Flexion) पीछें (Extenion Side) में (Lateral Rotation), धुरी पर घुमाकर (Rotation) इत्यादि सें परीक्षण करना चाहिए।

किसी स्थिति में दर्द में बढ़ोतरी होने का ध्यान रखना चाहिये।

- फिर दर्द करने वाली वाली स्थिति Position एवं निदान के अनुसार दर्द कम करने वाली कसरत/ Manovere इत्यादि की जानकारी एवं परिक्षण देना चाहियें।
- Cervical color का प्रयोग करना।
  - Cervical Disc Prolpose
  - Cerical Spondylosis
  - Muscle Spasm

(2) कंधे के रोग–

कंधे की Flexion, Extension, Rotation, Adduction, Abduction इत्यादि कार्यो की जाँच करके रोग का निदान एवं आवश्यक कसरत का प्रशिक्षण।

- Frozen Shoulder
- Rotator Cuff Tear
- Deltoid Palsy
- Bursitis
- Dislocation

(3) कोहनी, कलाई एवं हाथों के रोग :–कोहनी Elbow का Extension Flexion एवं Rotation की जाँच, Supination, Pronation की जाँच, कोहनी की Flexion, Extension, Side में Deviation इत्यादि की जाँच, हाथों की अंगुलियों की Grif, Power, Flexion Extension इत्यादि की जाँच।

Tennis Elbow
Stiff Joint
कार्पल टनेल सिड्रोम
Wrist Drop, Claw Hand, Palsy
Ulnar Nerve Palsy
Radial Nerve Palsy
Median Nerve Palsy

कोहनी, कलाई की फिजियोथेरेपी कराते हुए

(4) हाथों, भुजाओं की मांसपेशियों का परीक्षणः–

- ❖ Biceps
- ❖ Triceps
- ❖ Extension, Flexion of elbow & Wrist

(5) कमर का परीक्षण :– आगे झुकना (Flexion), पीछे झुकना (Extension), side to side rotation (घूर्णन) एवं दर्द की स्थिति एवं विस्तार (Radiation) का परीक्षण

- ➢ Slip Disc
- ➢ Ankylosing Spondylosis
- ➢ Osteoporosis
- ➢ Radiculopathy, Neuropathy
- ➢ अकड़न (stiffness)

Slip Disc की **M.R.I.**

(6) कूल्हे का परीक्षण :–

Abduction, adducation, flexion, extension, rotation, प्रशिक्षण एवं निदान उपरान्त उसका उपचार

Gait :- चलते समय दोनों कूल्हों का Balance एवं सामान्य गति एवं इसमें आई विकृति का निदान

संबंधित विकृति के अनुसार कसरत की ट्रेनिंग

(7) घुटने का परीक्षण :–

Flexion, extension, Knee Jerk परीक्षण, घुटने की परिधि का नाप, तापमान का माप (Arthritis की स्थिति में), सूजन, पानी भरा होना – effusion, लिगामेंन्ट एवं टेन्डन का परीक्षण आदि

- दोनो घुटनों के बीच की सामान्य /असमान्य दूरी का माप
- Dislocation का परीक्षण
- Cruciate Ligament का परीक्षण
- चंद्राकार उपस्थि (Menisci) का परीक्षण
  - Osteo arthritis
  - Rheumatic arthritis
  - Fracture
  - Effusion
  - Ligament injury
- संबंधित विकार का निदान एवं उपयोगी कसरत की ट्रेनिंग ।

(8) पैर के पंजे एवं पैर का परीक्षण :–

- पैर (पिण्ड़ली) की मांसपेसियों की परीक्षण
- Foot drop
- टखने के जोड़ का flexion extension, rotation, Side to Side devition का परीक्षण
- संबंधित विकार की कसरत की ट्रेनिंग

पैर के पंजे फिजियोथेरेपी कराते हुए

इकाई 15.6 खेलकूद/स्पोर्ट्स के रोगों मे फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

(3) **Sports Physiotherapy:-** यह खेलकूद करने वाले एथलिटों के लियें होती है। इसमें प्राथमिक उपचार, चोट की रोकथाम, मालिश, व्यायाम ट्रेनिंग इत्यादि शामिल है।

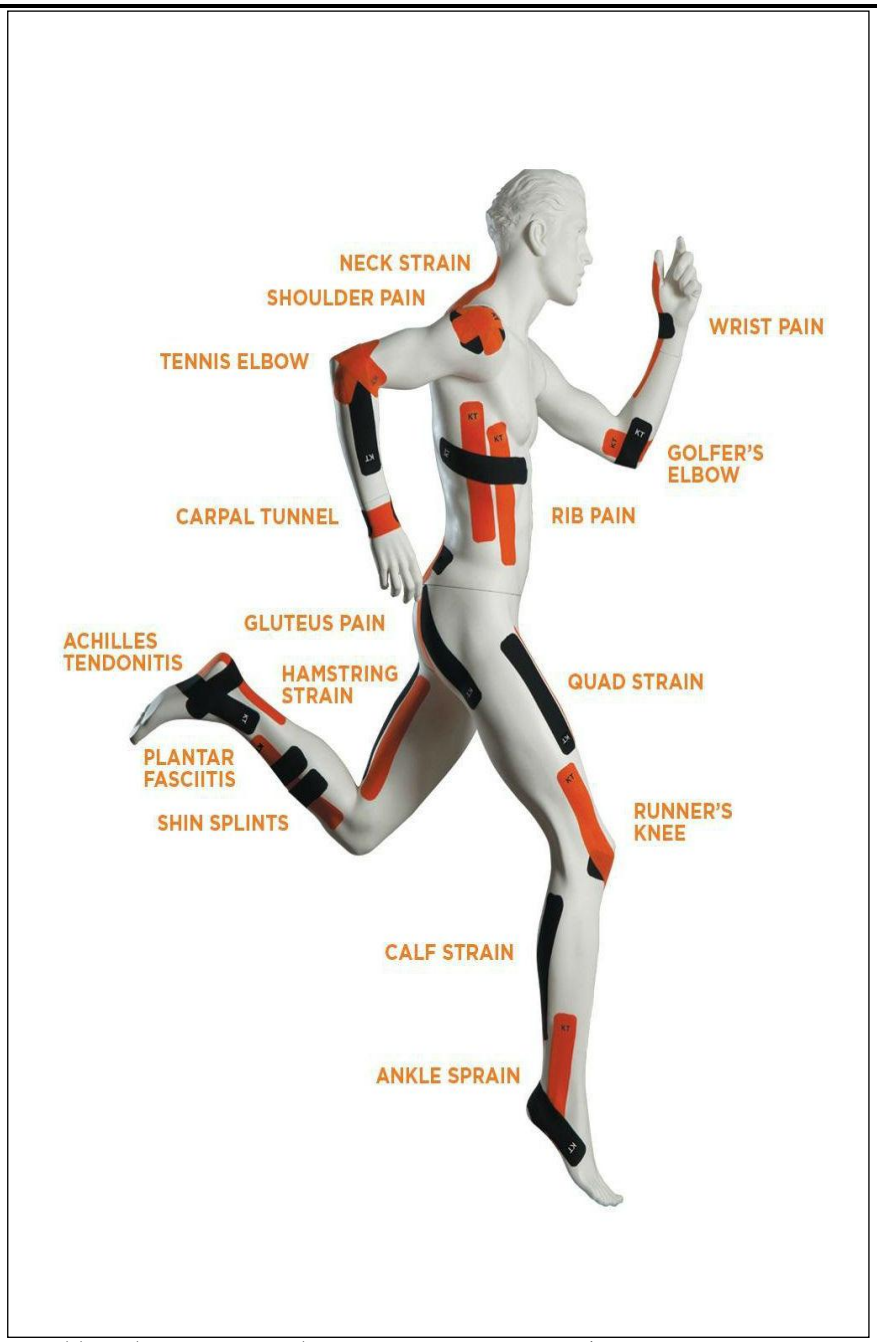

स्पोर्ट फिजिकल थेरेपी में निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है।

- ♦ लिगामेंन्ट्स की सम्पूर्ण जानकारी
- ♦ शरीर की प्रत्येक मांसपेशी की जानकारी
- ♦ शरीर के समस्त टेण्डन (स्नायु) की जानकारी

- शरीर के प्रत्येक (स्पोर्टस से संबद्व) मांसपेशी के कार्य की जानकारी एवं उनमें क्षति होने पर उत्पन्न हुए प्रभाव की जानकारी
- समस्त मांसपेसियों के तंत्रिका तंत्र एवं रूधिर संचरण की जानकारी
- शरीर को लचीला बनाए रखने की सम्पूर्ण जानकारी
- मांसपेशी थकान (Fatigue) एवं उपचार की जानकारी
- अत्यधिक परिश्रम या स्पोर्टस करने पर होने वाली क्षति की जानकारी
- मांसपेशियों की सही तरीके से कसरत की जानकारी
- एरोबिक्स व्यायामों एवं क्रिया कलापों की जानकारी
- हृदय एवं रक्त दाब एवं संचरण संबधी जानकारी
- एथलीट के भोजन पोषण (Nutrition) संबंधी जानकारी
- प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेड़ एवं वसा भोजन एवं इनसे मिलने वाली कैलोरी की जानकारी

स्पोर्ट्स फिजियोथेरेपिस्ट के मुख्य कार्य एवं अनुप्रयोग

- गर्दन के व्यायाम एवं रोग/चोट का निदान एवं उपचार में दक्षता
- कंधें की समस्त मांसपेसियों एवं उनके कार्यो की जानकारी एवं चोट लगने पर प्राथमिक उपचार एवं पुनर्वास में दक्षता

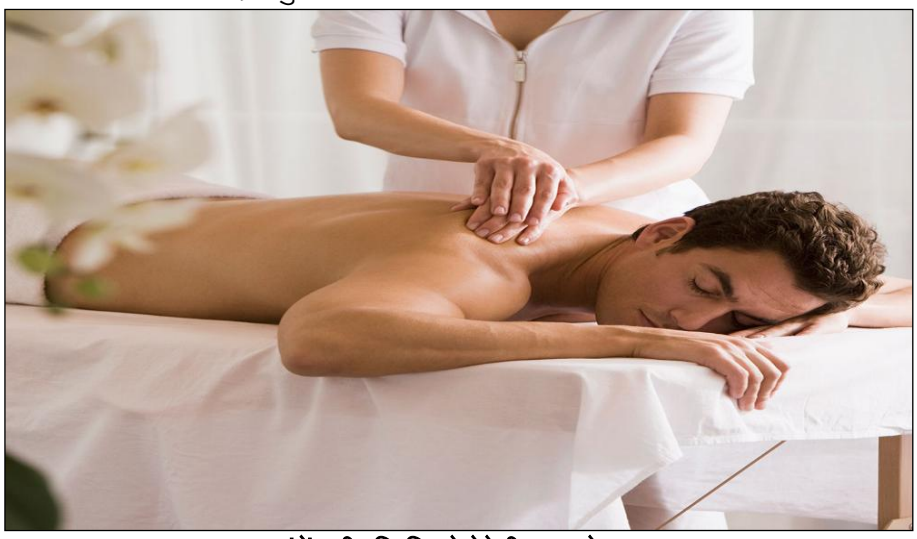

कंधें की फिजियोथेरेपी कराते हुए

- कोहनी, कलाई एवं अगुंलियों के समस्त जोडों एवं मांसपेशियों का ज्ञान, एवं चोट लगने पर उचित निदान एवं कसरत की ट्रेनिंग इत्यादि
- पीठ एवं कमर में रीढ़ की हड्डियों एवं Spinal cord segment की जानकारी लगी चोट का उपचार एवं पुनर्वास कसरत ट्रेनिंग

- कूल्हो के जोड़ो, घूटने के जोड़ो की समस्त मांसपेशियों एवं उनके कार्यो, तंत्रिका सप्लाई एवं चोट लगने पर हुए कार्य अभाव की जानकारी, परीक्षण, प्राथमिक उपचार एवं पुनर्वास एक्सरसाइज की ट्रैनिंग

कूल्हो, घूटने के जोड़ो की फिजियोथेरेपी कराते हुए

- पैर के पंजे के जोड़ों एवं टेन्डन लिगामेंन्टस की जानकारी, कार्य एवं क्षति होने पर हुए कार्य अभाव का प्राथमिक प्राथमिक उपचार एवं पुनर्वास एवं कसरत ट्रेनिंग
- आवश्यक दवाइयों की जानकारी
- एथलिट के शरीर में सबसे उपयोगी मांसपेसियों की एक्सरसाइज ट्रेनिंग एवं सही दिशा में उसका उपयोग की जानकारी
- स्पोर्ट्स थेरेपिस्ट की वर्तमान में बहुत माँग हैं एवं यह विभिन्न खिलाड़ियों एवं खेलों की टीमों के साथ कार्य करते हैं। चोटिल होने पर तुरन्त खिलाड़ियों को त्वरित चिकित्सा देते हैं।

स्पोर्ट्स थेरेपी

15.7 (वक्ष) छाती/फेफड़ों के रोगों में फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

(4) **Chest Physical Therapy:-**छाती की फिजियोंथेरेपी यह छाती में जमें कफ, म्यूकस, बलगम, अन्य स्त्राव को निकालनें में सहायक अस्थमा एवं (C.O.P.D) के मरीजों में सांस लेने की कसरत ट्रेनिंग इत्यादि की जानकारी दी जाती है। फेफड़ों में Infection एवं अन्य रोग होने पर कफ ज्यादा बनता हैं एवं अन्य स्त्राव भी फेंफड़ो की एलवीओली एवं Bronchus नलियों में जमा हो जाते हैं परिणामस्वरूप मरीज को कफ, खांसी, सांस में दिक्कत छाती में दर्द इत्यादि तकलीफें शुरू हो जाती है।

Chest Physical Therapy- निम्न प्रकार के कार्य करके रोगियों की मदद करता है–

पीठ थप–थपाकर एवं वाईब्रेटर इत्यादि मशीनों से कफ /secretion/ जमाव को ढ़ीला करना

फिर मरीज की पोजिशन बदल–बदल कर अलग–अलग तरीकों से उसे बाहर निकालने की कोशिश करना

छाती की मांसपेशियों का लचीलापन बनाए रखना

श्वसन लेने की विशेष तकनीक का इस्तेमाल करवाना

हृदय एवं फेफड़ों की कसरत हेतु कार्डियो पलमोनरी कसरत करवाना

निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिये–

1 यह सब खाली पेट करवाएं।

2 अस्थमा एवं टी. बी. के मरीजों में विशेष सावधानियाँ रखें।

3कमजोर/भंगुर पसलियों वालों में यह काम ना करें।

4 कफ के साथ रक्त आवें तो ब्रोंकोस्कोपी की सलाह दे।
5 रीढ़ की हड्डी एवं छाती की हड्डियों में विकार वाले रोगियों में यह सावधानी पूर्वक करें।

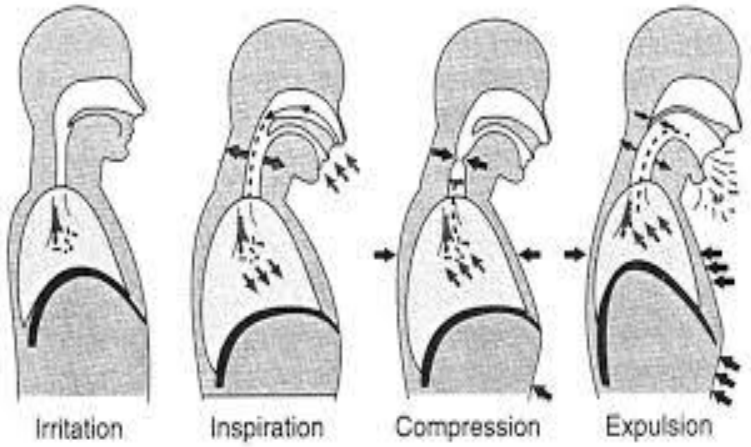

चेस्ट फिजियोथेरेपी की विधियाँ

निम्न रोगों में चेस्ट फिजियोथेरेपी दी जाती हैः–

- सिस्टिक फाइब्रोसिस
- गुलीन बार सिण्ड्रोम
- टीटनेस
- लकवा (पक्षाघात)
- न्यूमोनिया
- ब्रोंकाइटिस
- ब्रोन्काइक्टेसिस
- C.O.P.D. (Chronic obstructive pulmonary disease)

चेस्ट फिजियोथेरेपी में निम्न विधियाँ अपनाई जाती है :–

पोस्चुरल ड्रेनेज – अर्थात रोगी के शरीर की पोजिशन बदल–बदल कर कफ बाहर निकलवाना।

- सक्रिय सांसों की कसरत
- धनात्मक दबाव एवं सांसों की कसरतें
- पीठ और छाती पर हथेली से थपथपाना
- वाईब्रेटर थेरेपी
- Force Expiratory Exercise
- स्पाइरोमेट्री
- Respirometer exercise

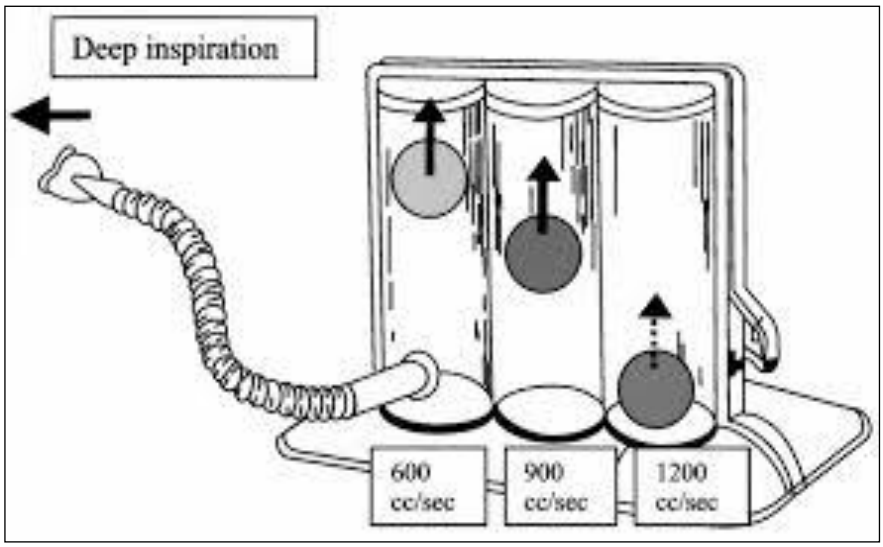

Respirometer

15.8 सारांश

इस इकाई मे हमने फिजिकलथेरेपी का अनुप्रयोग न्यूरोलोजिकल (तंत्रिका तंत्र) रोगो, अस्थियों एवं मांसपेशीय रोगों, स्पोर्ट्स खेलने वालो के चोटों/रोगों एवं छाती के रोगों (फेफड़ों के रोगों) में व्यायाम आदि सीखा।

लकवाग्रस्त रोगियों, कमजोर पड़े अंगों, चोट के बाद हड्डियों एवं मांसपेशियों सहित जोड़ों मे दर्द/सूजन/अकड़न/जकड़न आदि रोगों के उपचार एवं रिहेबिलिटेशन (पुनर्वास)के बारे में जानकारी प्राप्त की। रिहेबिलिटेश का अर्थ है पुनर्वास अर्थात जो अंग काम नहीं कर रहे उनको उपकरणों की सहायता से कार्य लेना ताकि दैनिक जीवन में व्यक्ति सामान्य कार्य कर सके।

स्पोर्ट्स करने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण व विशिष्ट कसरतों की आवश्यकता होती है तथा खेलते समय चोट लगने पर उनका तुरन्त उपचार भी किया जाता है जिसमें कि फिजियोथेरेपिस्ट की अहम भूमिका होती है। इस प्रकार स्वास्थ्य प्राप्ति में फिजियोथेरेपी की महती भूमिका हैं।

इकाई 15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- CARDIO VASCULAR – PULMONARY ESSNTIALS BY MARILYN MOFFAT
- EXERCISE TESTING & PRESCRIPTION BY AMERICAN COLLEGE OF SPORTS MEDICINE STAFF
- WWW. APTA.ORG
- WORLD CONFEDERATION OF PHYSICAL THERAPY BY SHEPARD, KATHE RINE

- AMERICAN PHSICAL THERAPY ASSOCIAN GUIDE TO PHYSICAL THERAPIST.
- PHYSICAL REHABILITATION, BY SUSAN SULLIVAN, T SCHMITZ
- PRINCIPALS OF EXERCISE THERAPY, BY DENA GARDINER
- PRACTICAL EXERCISE THERAPY, BY MARGARET HOLLIS, PHYL COOK
- THERAPEUTIC EXERCISE: FOUNDATION & TECHNIQUES, BY CAROLYN KISNER, LYN ALLEN COLBY
- CLAYTON'S ELECTROTHERAPY, BY FORSTER & PALASTANGA
- TIDYS PHYSIOTHERAPY, BY STUART POTER
- CASH'S TEXTBOOK OF ORTHOPEDICS & RHEUMATOLOGY OF CARDIOVASCULAR & RESPIRATORY CONDITIONS
- NEUROLOGY OF GENERAL MEDICAL & SURGICAL CONDITIONS FOR PHYSIOTHERAPISTS
- DR. ANIL SONI- MEDICAL COLLEGE, KOTA
- DR. HARSH, M.RAJDEEP- PHYSIOTHEYPIST-KOTA
- DR. ANJANA SHARMA-OESTOPATHYS PANCHKARMA-KOTA
- DR. NITYANAND SHARMA-YOGA& AYURVEDA-KOTA

इकाई 15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोगों के नाम लिखिए ?
2. न्यूरोलोजी पुनर्वास क्या होता है विस्तार से समझाइये एवं फिजियोथेरेपी की दूसरे उपयोगिता क्या है?
3. न्यूरोलोजिकल रोगों के नाम बताइये?
4. ओर्थोपेडिक (हड्ड़ियो एवं मांसपेशियो) सिस्टम की फिजियोथेरेपी से किन रोगों का उपचार होता है एवं इनके अनुप्रयोगों के बारे में विस्तार से समझाइये?
5. घुटने गर्दन एवं कमर के दर्द हेतु फिजियोथेरेपी का महत्त्व समझाइये?
6. स्पोर्टस फिजिकल थेरेपी के बारे में लिखिये?
7. वक्ष (छाती) की फिजियोथेरेपी क्या है व यह किन रोगों में लाभदायी है?
8. चेस्ट फिजियोथेरेपी की विधियो के बारे में समझाइये?

इकाई–16 रोगों में फिजियोंथेरेपी के अनुप्रयोग –2

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 बच्चों की फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
16.4 महिलाओं की फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
16.5 त्वचा (चमड़ी) के रोगों मे फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
16.6 वजन कम करने हेतु फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
16.7 हाइड्रोथेरेपी के अनुप्रयोग
16.8 वृद्ध लोगों हेतु फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
16.9 सारांश
16.10 बोधात्मक प्रश्न
16.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

इकाई 16.1 प्रस्तावना

फिजियोथेरेपी का उपयोग हम बच्चों के शारीरिक विकास एवं रोगों के उपचार में, महिलाओं और वृद्ध मानवों के विभिन्न खास रोगों के उपचार में किया जाता हैं। वजन कम करने में फिजियोथेरेपी तकनीक को अहम भूमिका रहती है।इस तकनीक का उपयोग कुछ त्वचा (चमड़ी) के रोगों आदि में भी करते है। इस इकाई मे हम बच्चों, महिलाओं, वृद्धों, त्वचा के रोगों में एवं पानी द्वारा फिजियोथेरेपी उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

इकाई 16.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेंगे कि

- बच्चों की फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
- महिलाओं की फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
- चमड़ी के रोगों में फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
- वजन घटाने/मोटापा कम करने हेतु फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग
- हाइड्रोथेरेपी द्वारा रोग उपचार के अनुप्रयोग
- वृद्ध लोगो हेतु फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

इकाई 16.3 बच्चों में फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

बच्चे की फिजियोथेरेपी करते हुये

(1) **Pediatric physiotherapy** :– बच्चों में जन्म से लेकर 16 वर्ष तक शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक विकास होता है। नर्सरी, प्राथमिक स्कूल, सैकण्ड़री एवं सीनियर सेकण्ड़री स्कूल तक के बच्चों की विशेष देखभाल एवं दिशा निर्देशों की आवश्यकता रहती है।

बच्चों के फिजियोथेरेपिस्ट को बच्चों के शारीरिक विकास की जानकारी, बीमारियों एवं पुनर्वास विधियों की जानकारी होनी चाहियें।

Defect :- भौतिक शरीर में आघातज क्षति (Injury)

Disability:- क्षति के उपरान्त कार्य क्षमता का अभाव

Rehabilitation :- क्षति उपरान्त पुनर्वास

बच्चों से संबन्धित विभिन्न रोग निम्न है :–

डाउन सिड्रोंम

सेरेब्रल पालसी

Muscular dystrophy

एनसीफेलाइटिस (दिमागी बुखार)

जुवेनाइल आर्थराइटिस (जोड़ों का दर्द)

कुपोषण

पोलियो

कैंसर

फ्रेक्चर

एक्सीडेंन्ट

विकास अवरूद्वि

जीनू वेलगम (घुटनो का पास–पास आ जाना)

रिकेट्स (फक्क रोग)

Hyperflexia

जुवेनाइल आर्थराइटिस की फिजियोथेरेपी करते हुये

पीड़ियाट्रिक फिजियोथेरेपी तकनीकें :–

हाथ की कसरत या फिजियोथेरेपी आदि के लिए बॉल एवं खिलौनों का उपयोग।
पैरों की फिजियोथेरेपी के लिए आकर्षक खिलौनों चीजों आदि का उपयोग लेना।
बैठना, खड़े होना, चलना इत्यादि की फिजियोथेरेपी के लिये खिलोनों एवं अन्य उपकरणों की मदद लेना ।

बच्चों की फिजियोथेरेपी मे खिलोनों का प्रयोग

शरीर के समस्त मांसपेसियों एवं जोडों की कसरतें एवं GYM में काम आनें वाले उपकरणों की मदद से फिजियोथेरेपी देना।
Baby chair, Baby seat इत्यादि से रोगग्रस्त बालकों का उपचार।
चोट लगने पर Brace, गर्म पट्टी इत्यादि की सहायता द्वारा उपचार।
बच्चों के व्यायाम आदि उपकरण की सहायता से रोग ग्रस्त अंग/जोड़/मांसपेशी की विशेष ट्रेनिंग।

खिलोनों की सहायता से बच्चे को व्यायाम हेतु प्रेरित करते हुए

स्पीच थेरेपी के उपकरण।

खेलकूदनुमा व्यायाम/फिजियोथेरेपी उपकरण।

बच्चें को खेल के साथ फिजियोथेरेपी देते हुए

बच्चों के वजन एवं शारीरिक माप (हाथ, पैर, छाती, पेर, कूल्हें, जांघें, पिण्ड़ली) एवं ऊँचाई की एवं वजन की मोनिटरिंग ।

कुपोषित बच्चो के लिये हल्के व्यायाम।

पीड़ीयाट्रिक फिजियोथेरेपीय के सिस्टम :–

बोबाथ सिस्टम

पीटो सिस्टम

पोरटोज सिस्टम

डोमन डेलेकेटो सिस्टम

इकाई 16.4 महिलाओं हेतु फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

(2) **Physiotherapy for women :-** महिलाओं के लिए फिजियोथेरेपी में निम्न तथ्यों का ध्यान रखना जाता है। :–

शारीरिक (Posture)
मजबूती (Strength)
मोटापा (Obesity)
अन्यन्त दुर्बलता अन्य शारीरिक चोट आदि का ध्यान
गर्भावस्था के दौरान विशेष ध्यान
फिजियोथेरेपी की तकनीक महिलाओं में समान ही रहती है। परन्तु विशेष परिस्थितियों में विशेष ध्यान रखा जाता है। उदाहरणार्थ –
गर्भावस्था में
योनिशिथिलता में
गर्भाशय Prolapse में
सीजेरियन ऑपरेशन के बाद
मूत्राशय Incontinence
रजःस्त्राव के दिनों में (माहवारी)
Menopause (45 Years के बाद) Osteoporosis में

Osteoporosis के रोगी की फिजियोथेरेपी करते हुये

डिलीवरी के बाद कमर दर्द में
गर्भावस्था एवं अन्य अवस्थाओं (Menopose) आदि में विशिष्ट कसरत, व्यायाम, मालिश, एवं शरीर का लचीलापन बनाए रखनें की कसरतें इत्यादि सिखाई जाती है।

गर्भावस्था के दौरान कमर दर्द एवं हाथों की फिजियोथेरेपी

गर्भावस्था के बाद बढ़े हुये मोटापे को कम करने के लिए विशिष्ट कैलोरी के उपयोगार्थ व्यायाम एवं शरीर की सुड़ोलता बनाए रखने के लिये विशेष व्यायाम की पद्धति इत्यादि इसमें सिखाई जाती है।

गर्भवती महिला की फिजियोथेरेपी

गर्भ प्रसव होने के बाद अन्दरूनी जननांगों में आए ढ़ीलेपन को कम करने हेतु फिजियोथेरेपी सिखाई जाती है।

16.5 चर्म रोग हेतु फिजियोथेरेपी अनुप्रयोग

त्वचा रोग के लक्षण (Skin disease)

- ✧त्वचा पर चकत्ते
- ✧फोड़ा–फुंसी–उनमें पीव भरना
- ✧खुजली
- ✧दाद
- ✧दाद से पानी बहना
- ✧छाला–उसमें पानी भरना

✧घुमोरियां।

ये लक्षण हाथ–पैर, कमर, सिर, मुंह आदि पर कहीं भी प्रकट हो सकते हैं।

त्वचा रोगों के कारण :–

1. शरीर के अन्दर विजातीय द्रव्य के संचित होने से, कब्ज बने रहने से शरीर से पसीना न निकल पाने से तथा गंदगी का जीवन बिताने से यह रोग पनपता है।
2. अधिक मीठा व खटाई खाना, ज्यादा आम खाना।
3. नाइलोन के वस्त्र व प्लास्टिक के जूते पहनना।
4. दवाइयों की अधिकता से एलर्जी के रूप में प्रतिक्रिया होने से।
5. संक्रामक रोग – जीवाणु, फफूंद से होते हैं जो उत्तेजक पदार्थों, रासायनिक पदार्थों, साबुन की फैक्ट्री में प्रयोग होने वाले रसायनों तथा क्रीम–पाउडर आदि प्रसाधन–सामग्री से त्वचा के रोग हो जाते हैं।

त्वचा नाखून इत्यादि का अन्य शरीरिक अंगों से क्रियात्मक जुड़ाव रहता है। इलेक्ट्रोथेरैपी की मदद से निम्न रोगों का इलाज त्वचा के रोगों में किया जाता है :–

वयस्कों में कील मुहांसे

बालों का झड़ना

वेरिकोज वेन्स (पांवों में)

किसी भी जगह का दर्द (Dermatome Tingling Semsation)

घाव अल्सर

चमड़ी पर सफेद दाग होना (Vitiligo)

त्वचा रोग चिकित्सा :– इन स्थानों पर Electric current/electrotherapy एवं मालिश, वाईब्रेटर कम्पन्न या लेजर एवं अल्ट्रासाउण्ड़ द्वारा उपचार किया जाता है। जिससे की चमड़ी में रक्त संचार एवं लिम्फनोड्स (लसिका तंत्र) में संचार बढ़ता है परिणामस्वरूप वह रोग ठीक होने लगता है।

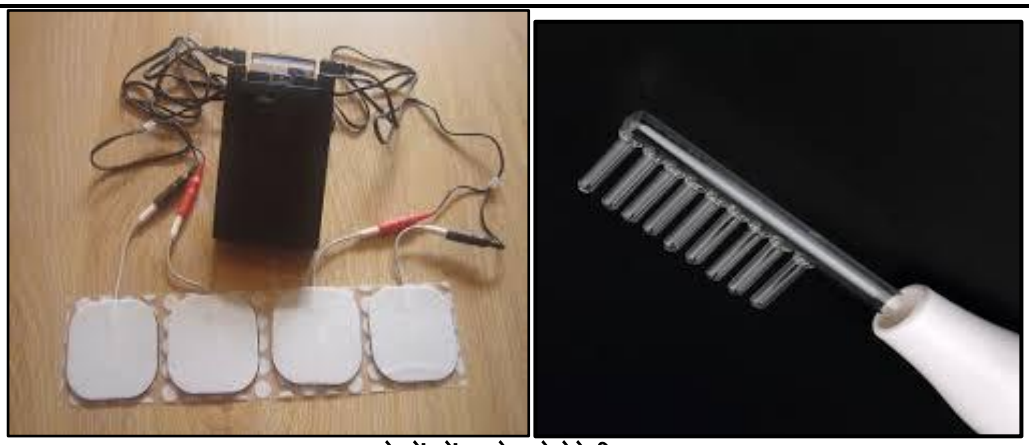

त्वचा रोगों में इलेक्ट्रोथेरेपी उपकरण

सावधानियाँ एवं अन्य उपचार :–

- ✚ कब्ज बिलकुल न रहने दें।
- ✚ नाइलोन के वस्त्र, जुराबें व प्लास्टिक की चप्पल आदि न पहनें। सूती वस्त्र ही उपयुक्त है।
- ✚ शरीर की बाहरी स्वच्छता का ध्यान रखें। तौलिये से शरीर को स्नान के बाद खूब रगड़े व पोंछें।
- ✚ उगते हुए सूर्य के समय सिर ढ़क कर नंगे बदन सूर्य–स्नान करें। उस समय ढीले व कम वस्त्र ही पहनें।
- ✚ आम के मौसम में आम खाने के बाद ठंडा दूध या पानी अवश्य पीना चाहिए।
- ✚ गुड़ आदि मिठाई व खटाई का परहेज अवश्य करें।
- ✚ कुछ दिन दूध और गाजर का सेवन करें तो पुराने दाद, खुजली व एक्जिमा से पीछा छुड़ाया जा सकता है। गाजर चर्म रोग की अचूक दवा है।

16.6 मोटापा :–

शरीर के वजन में अस्वाभाविक ढ़ंग से बढ़ोत्तरी व चर्बी का बढ़ना मोटापा कहलाता है। मोटापे से शरीर कुरूप, बेडौल और भारी हो जाता है।

मोटापे के हानिकारक परिणाम :–

मोटापे के कारण हृदय पर दबाव सा बना रहता है। श्वास गति बढ़ जाती है। कार्यक्षमता घट जाती है। कॉलेस्ट्रॉल नाड़ियों में जम जाता है। मोटापे के परिणामस्वरूप गैस, कब्ज, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, जोड़ों में दर्द, अपेंडिक्स, हृदय, रोग, दमा, गुर्दे व रीढ़ आदि के दर्दों से मनुष्य पीड़ित हो जाता है।

मोटापे के कारण :–

1. कार्बोहाइड्रेट (रोटी, चावल, आलू आदि) का अधिक मात्रा में खाना, तली–भुनी और चिकनी (पूड़ी, पकौड़ी, चाट, समोसे, पराठे आदि) चीजें अधिक खाना, पाचन शक्ति से अधिक भोजन करना, बिना भूख लगे और बार–बार भोजन करना आदि।
2. थायराइड ग्रंथि जिसका कार्य हमारे शरीर के चयापचय (मेटाबोलिज्म) में सहायता करना है, उसका ठीक तरह से कार्य न करना।

3. उचित व्यायाम न करना, थोड़ा चलने से भी कतराना, अधिक समय तक बैठे रहने से भोजन नहीं पचता तब चर्बी बढ़ने लगती है।
4. आवश्यकता से अधिक विश्राम करना या सोना भी मोटापे का एक कारण है।

मोटापे की अन्य चिकित्सा :–

- कुंजल, एनिमा, नौलि तथा कपालभाति की शुद्धि–क्रियाओं का नियमित अभ्यास।
- सभी प्रकार के आसन उपयोगी हैं।
- भस्त्रिका प्राणायाम व बाह्य कुंभक के अभ्यास से पेट शीघ्र ही अन्दर चला जाता है।
- आहार की दृष्टि से परिवर्तन होना बड़े महत्व का है। प्रातः नींबू–पानी, नाश्ते में अंकुरित अन्न (चना, मूंग, मोठ) ले सकते हैं या सब्जियों का सूप/गाजर या मूली का रस।

भोजन क्षारीय और तरल हो। क्षारीय आहार में हरी सब्जियां, खासकर पत्तेदार–पालक, चौलाई, बथुआ, तुरई, टिण्डा आदि। सभी प्रकार के रसदार फल संतरा, अनानास, अनार, तरबूज, खरबूजा आदि।

दिन में कॉफी, चाय आदि न लें। केवल दो बार भोजन करें। एक बार मौसम का फल लें। केला, चीकू, आलू, चावल, शकरकंद व कंदमूल में कार्बोहाइड्रेट अधिक होता है। अतः इनका सेवन न करें।गर्म मसाले, नमक व चीनी कम ही लें। चर्बीयुक्त पदार्थों को छोड़ दें।

अतिशीतल व अति गर्म पदार्थों का सेवन न करें। शाम का भोजन सूर्यास्त से पहले करना। शाम के भोजन के बाद दो–तीन किलोमीटर तक घूमें यह बहुत उपयोगी हैं।

वजन कम करने हेतु फिजियोथेरेपी के अनुप्रयोग

Weight loss exercises :- मोटापा आजकल एक समस्या महिलाओं, पुरूषों, बालकों एवं बालिकाओं में बन चुका है। कम परिश्रम एवं अधिक खाने की जीवनशैली की वजह से मोटापे की समस्या घर–घर में हो रही है।

3500 कैलोरी = 450 ग्राम वजन

भोजन में 500 कैलोरी कम करके 7 दिन तक में 450 ग्राम वजन कम किया जा सकता है। फिजियोथेरेपिस्ट को व्यायाम के साथ मरीज की ड़ाईट/भोजन की भी सामान्य जानकारी होना आवश्यक है। मोटापा कम करने की फिजियोथेंरेपी में निम्न तथ्य आते है :–

एरोबिक व्यायाम :– संगीत की धुन पर सांस लेने की गति को नियंत्रित करते हुए नृत्य करने जैसा व्यायाम ताकि ज्यादा थकान भी नहीं हो एवं कैलोरी भी कम हो । इसके अलावा एरोबिक्स में निम्न व्यायाम आतें है :–

एरोबिक व्यायाम

→ साइकलिंग = 500 – 1000 CAL/प्रति घण्टा खपत ।

→ तैरना = 800 CAL/प्रति घण्टा खपत ।

→ Step Aerobics = GYM में 8000 CAL/प्रति घण्टा खपत ।

→ रेकेट बॉल व्यायाम = 8000 CAL/प्रति घण्टा खपत ।

→ Jumping - रस्सी कूदना = 700 CAL/प्रति घण्टा खपत ।

→ Dancing = 600 CAL/प्रति घण्टा खपत ।

→ JOGGING = 550 CAL/प्रति घण्टा खपत ।

JOGGING

→ Walking – 360 CAL / प्रति घण्टा खपत ।

इसके अलावा Strength (शरीर मजबूती करण) हेतु व्यायाम भी निम्नानुसार जरूरी है।

→ उठक–बैठक
→ दण्ड बैठक
→ अन्य सामान्य शारिरिक व्यायाम
→ Mountain Climbing
→ शरीर को मोड़ने के व्यायाम
→ पैर उपर उठा कर रखना
→ हलासन
→ वज्रासन
→ नाक को घुटने के स्पर्श करने के व्यायाम
→ कमर एवं कूल्हें की चर्बी कम करने के व्यायाम

जांघो का मोटापा कम करने के लिए इलेक्ट्रो थेरेपी

इस तरह शरीर के विभिन्न अंगों एवं जोड़ों के व्यायाम करनें वं भोजन नियंत्रित रखनें से मोटापा कम होता है।

कुछ अन्य व्यायाम निम्नलिखित हैः–

- → सीधा खडे होकर हाथों से पैरों के पंजों से छूना
- → चक्रासननुमा व्यायाम
- → गोल थाली (धुरी वाली) पर खड़ें होकर कमर के हिस्सों को Clock Wise Anti Clock wise घूमने के व्यायाम
- → पैर चौड़े करके बारी–बार से विपरीत हाथ पैर स्पर्श करना
- → सीधा लेटकर दोनों पैर उपर उठाकर रखना
- → कमर को Fix रखते हुये शरीर को आगे झुकाना , पीछे झुकाना, दाएं–बाएं झुकाना इत्यादि व्यायाम।

इकाई 16.7 हाइड्रोथेरेपी के अनुप्रयोग

Hydrotheropy Exercises :-

इसमें पानी के अन्दर तैरना, पानी की सतह पर तैरते हुए हाथ पैरों की कसरत, पानी में चलना (Walking) इत्यादि आते हैं।

पानी के अन्दर रह कर व्यायाम करके ज्यादा थकान और तनाव नहीं होता एवं दर्द भी कम होता है। साथ ही शरीर का लचीलापन मेंन्टेन रखने एवं रक्त संचरण सही रखने में मदद मिलती है।

यह स्पोर्ट में घायल (चोटिल) हुये रोगियों के लिए बहुत लाभदायक होती है।

पानी में रहने से पसीना भी निकलता है एवं अन्य उत्सर्जी विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर निकलते हैं तो भी फायदा होता है।

हाइड्रोथेरेपी के व्यायाम

लाभ :– दर्द कम होना
Joint में Mobility ठीक होना
मांसपेशीय /ऐंठन जकडन कम होना
शरीर सन्तुलन की मांसपेशियाँ मजबूत होना
शरीर का Co-ordination सही होना
आत्मविश्वास बढना
रक्त संचरण मे लाभ होना

Hydrotherapy द्वारा पानी में रहकर Cardio work out भी किया जाता है। जिससें हृदय मजबूत बनता है।

कमर की हाइड्रोथेरेपी

Warm up Exercise :- भारी व्यायाम से पहलें 5–10 मिनट पानी में रहकर हल्का–हल्का व्यायाम करनें से शरीर warm-up (व्यायाम हेतु तैयार) हो जाता है।
गर्म एवं ठण्ड़े पानी से हाइड्रोथेरेपी की जा सकती है।
गर्म पानी से – शरीर/जोड़ो की सूजन/जकडन/ऐंठन Sprain इत्यादि में आराम मिलता है।

कंधों की हाइड्रोथेरेपी

→ दर्द में आराम मिलता है।
→ शारीरिक थकान मिटती है।
→ शरीर में सब जगह रक्त संचार सुचारू होता है।
→ ठण्डें पानी से सूजन, इन्फेक्शन इत्यादि कम होते है।
→ शरीर का तापमान ठीक रहता है।
→ बुखार इत्यादि ठीक होते हैं।

इकाई 16.8 वृद्ध लोगों हेतु फिजियोथेरेपी अनुप्रयोग

वुद्ध लोगों हेतु फिजियोथेरेपी **(Physiotherapy for old people) :-**

जिरियाट्रिक्स उपकरणों द्वारा व्यायाम 1

जिरियाट्रिक्स उपकरणों द्वारा व्यायाम 2

जिरियाट्रिक्स उपकरणों द्वारा व्यायाम 3

जिरियाट्रिक्स उपकरणों द्वारा व्यायाम 4

जीरियाट्रिक्स :– 60 साल के बाद बुढ़ापे एवं बुढ़ापे में होने वाली सामान्य समस्याओं एवं शरीरिक परिवर्तनों एवं रोगों के अध्ययन को ''जिरीयाट्रिक्स'' विज्ञान कहते हैं।

बुढ़ापें में निम्न बदलाव आते है। :–

- मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती है।
- हड्डिया कमजोर हो जाती है।
- शरीर के चलतें फिरतें समय बेलेन्स कम बनता है।
- चलने मे दिक्कत होती है।
- खाना पचाने में दिक्कत होती है।
- Joints कमजोर हो जाते हैं।
- थोड़ा सा हल्के से गिरने पर भी फैक्चर हो जाता है। (Osteoporosis)
- कमर दर्द हो जाता है।
- हृदय रोग, उच्च रक्तचाप इत्यादि हो जाता है।
- पार्किनसन्स की बीमारी।
- अनिन्द्रा।
- शरीर में कम्पन।
- कान सें ऊँचा सुनना (बहरापन)।
- वाचाल होना, एक बात को बार–बार कहना आदि।
- एल्जाइमर (भूलने की बीमारी) ।
- खून की कमी (एनीमिया)।
- विटामिन्स की कमी।
- आंख से कम दिखता है।

इसलिए बुढ़ापे में Physiotherapy को बहुत सावधानी से देनी चाहिए।

व्यायाम भी प्रोढ़ावस्थाजन्य रूची कर होनी चाहिये ।

Physiotherapy के साथ भोजन (Diet) का भी ध्यान रखना पड़ता है। हल्का सुपाच्य (सुपथ्य) भोजन लेना चाहिये ।

जो व्यायाम हृदय एव ंबी.पी. पर गलत प्रभाव ड़ालतें है उन्हें नहीं करवाना चाहिए।

हड्डियाँ एवं मांसपेशियाँ मजबूत रखनें के सामान्य आराम दायक व्यायाम उपकरणों की सहायता से करवाने चाहिए।

चलने फिरनें में Walker, छड़ी एवं अन्य Brace की सहायता से शरीर का Balance बनाते हुए चलना सिखाना चाहिए।

मूत्राशय एवं मलाशय को मजबूत करनें की कसरत /तरीके की ट्रेनिंग देनी चाहियें।

16.9 सारांश

इस इकाई में हमने बच्चो, महिलाओं, वृद्धजनों के विभिन्न रोगों एवं उनमे फिजियो थेरेपी की उपयोगिता के बारे में अध्ययन किया।

वजन कम करने हेतु भी फिजिकल थेरेपी की अहम भूमिका होती है क्यूकि मोटापा आजकल आम समस्या होती जा रही है। हाइड्रोथेरेपी यानि पानी के अन्दर फिजिकल थेरेपी देने के बारे के तथ्यों का अवलोकन किया। दबच्चों व वृद्धजनो को फिजिकल थेरेपी देना बहुत मुश्किल होता है, फिर भी फिजिकलथेरेपी विज्ञान में आसानी से उनके रोगों का उपचार किया जा सकता है।

इकाई 16.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- → फिजिकल थेरेपी फोर चिल्ड्रन – सूजान के. केम्पबेल, रोबर्ट–जे. पेलिसानो
- → नेशनल फिजिकल थेरेपी एक्जाम – KAPLAN
- → EFFECTIVE DOCUMENTATION FOR PHYSICAL THERAPY-ERIC SHAMUS & DEBRA STERN
- → GERIATRIC PHYSICAL THERAPY
- → ANDREW A. GUCCIONE 3rd EDITION
- → PEDIATRIC PHYSICAL THERAPY APTA
- → PHYSICAL REHABILITATION BY SUSAN B., 'O' SULLIVAN
- → PHYSIOTERAPY IN OBSTETRICS & GYNAECOLOGY BY MANTLE, HASLAN, BARTON
- → DIFFERENTIAL DIAGNOSIS IN PHYSICAL THERAPY
- → PHYSIOTHERAPY EXERCISES BY CHANDRA SHEKHAR BELLUDI
- → WWW.PHYSIOTHERAPY JOURNAL.COM
- → PHYSIO THERAPY REFERENCE BOOK SCERT, KERALA-2016
- → PHYSICAL REHABILITATION, BY SUSAN SULLIVAN, T SCHMITZ

- → PRINCIPALS OF EXERCISE THERAPY, BY DENA GARDINER
- → PRACTICAL EXERCISE THERAPY, BY MARGARET HOLLIS, PHYL COOK
- → THERAPEUTIC EXERCISE: FOUNDATION & TECHNIQUES, BY CAROLYN KISNER, LYN ALLEN COLBY
- → CLAYTON'S ELECTROTHERAPY, BY FORSTER & PALASTANGA
- → TIDYS PHYSIOTHERAPY, BY STUART POTER
- → CASH'S TEXTBOOK OF ORTHOPEDICS & RHEUMATOLOGY OF CARDIOVASCULAR & RESPIRATORY CONDITIONS
- → NEUROLOGY OF GENERAL MEDICAL & SURGICAL CONDITIONS FOR PHYSIOTHERAPISTS
- → DR. ANIL SONI - MEDICAL COLLEGE, KOTA
- → DR. HARSH, M.RAJDEEP - PHYSIOTHEYPIST-KOTA
- → DR. ANJANA SHARMA - OESTOPATH & PANCHKARMA-KOTA
- → DR. NITYANAND SHARMA - YOGA& AYURVEDA-KOTA (RAJ.)

इकाई 16.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. बच्चों की फिजिकल थेरेपी की क्या आवश्यकता है एवं बच्चों के सामान्य रोगो एवं उपचार मे फिजिकल थेरेपी की भूमिका बताइये ?
2. पिडियाट्रिक फिजियोथेरेपी के सिस्टम के नाम लिखिये ?
3. महिलाओं में किन रोगो मे फिजियोथेरेपी की जा सकती है एवं उपयोगिता समझाये ?
4. चर्म रोगो मे फिजिकल थेरेपी कैसे दी जाती है ?
5. वजन कम करने हेतु फिजिकल थेरेपी के बारे में विस्तार से निबंध लिखिये ?
6. हाइड्रोथेरेपी के बारे में बताइये। इसकी क्या उपयोगिता है ?
7. पिडियाट्रिक्स/वृद्ध जनों की फिजियोथेरेपी की क्या आवश्यकता है व यह कैसे दी जाती है ?